प्रकाशक
डॅा भोगीलाल ज साडेसरा,
अध्यक्ष, गुजराती विभाग,
म स विश्वविद्यालय,
वडोदरा

आवृत्ति पहेली
प्रत ५००

वि सं २००९
ई स १९५३

मूल्य पाच रूपिया

प्राप्तिस्थान
प्राच्य विद्यामन्दिर,
वडोदरा-

मुद्रक
रमणलाल जी पटेल, व्यवस्थापक
साधना प्रेस, रावपुरा, वडोदरा

आमुख

प्राच्य विद्यामंदिर तरफथी मुख्यत्वे संस्कृत हस्तलिखित पोथीओ मेळवी एमांथी योग्य पोथीनुं प्रकाशन वर्षोथी चाली रह्युं छे. 'गायकवाड ओरियेन्टल सिरीझ' मां एवां सो उपरांत पुस्तको प्रसिद्ध थयां छे. जूना गुजराती साहित्यनो हस्तलिखित भंडार पण विपुल छे. एमांथी योग्य साहित्यनुं प्रकाशन पण इच्छवा योग्य छे. आ हेतु लक्षमां राखी, वडोदरा विश्वविद्यालयना गुजराती विभाग द्वारा प्राचीन गुर्जर ग्रन्थमालानी योजना तैयार करवामां आवी छे. ए योजना अनुसार आ प्रथम पुस्तक बहार पडे छे, अने एवुं एक पुस्तक दर वर्षे बहार पाडवानी आशा रखाय छे.

आ प्रकारना संशोधननो उपयोग एकदम पहेली नजरे चढे नहि ए स्वाभाविक छे. परंतु भाषानी दृष्टिए तेम ज सामाजिक इतिहासनी दृष्टिए आ प्रकारनां संशोधनो पुष्कळ प्रकाश पाडे छे अने माटे ज उपयोगी छे. आ पुस्तकना निवेदनमां डॉ. सांडेसरा लखे छे के:– "आ ग्रन्थमालामां प्रसिद्ध थती कृतिओ तथा एना शब्दकोशो ऐतिहासिक गुजराती शब्दकोश माटे सामग्री पूरी पाडशे तथा अन्य भगिनीभाषाओना प्राचीनतर युगोना अध्ययनमां पण उपयोगी थशे एवी आशा छे." पुस्तक पाछळ जे शब्दकोश आप्यो छे ते भाषानी दृष्टिए अतिशय उपयोगी थई पडशे एमां तो जरा पण शंका नथी. आशा छे के आ प्रकाशनने गुजरातना विद्वानो तेम ज अन्य भाषाशास्त्रीओ योग्य सत्कार करे.

ता. १४-२-'६३. हंसा महेता

अनुक्रम

मुखपृष्ठ–उपयोगमां लेवायेली हस्तप्रतोमांथी त्रणना फोटा

शुद्धिपत्रक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	९	दीक्षादि वरावी	दीक्षा दिवरावी
८०	१८	नाणनी	जाणनी
८९	१६	आगी गमइं	आंगीगमइं
९५	४	आज्ञारहितहूइं	आज्ञारहितहूइं
१७५	१७	आगीगमई	आगीगमइं
,,	,,	ए. व.	व व.

निवेदन

वडोदराना म. स. विश्वविद्यालयनी कार्यवाहक सभाए (सीन्डिकेटे) मंजूर करेली योजना अनुसार, आ 'प्राचीन गुर्जर ग्रन्थमाला' शरू थाय छे. प्राचीन गुजराती साहित्यनी अप्रसिद्ध कृतिओनी समीक्षित वाचनाओनुं प्रकाशन सामान्य रीते एमां थशे, परन्तु आ पहेलां छपाई गयेली छतां जेनां शास्त्रीय संपादनो न थयां होय एवी विशिष्ट रचनाओनी समीक्षित वाचनाओने तथा प्रसिद्ध के अप्रसिद्ध रचनाओमांथी अभ्यासनी दृष्टिए करेला समुच्चयोने पण एमां स्थान रहेशे. प्रत्येक संपादन साथे प्रस्तावना उपरांत ते ते कृतिमां प्रयोजायेला नोंधपात्र शब्दोनो एक कोश आपवामां आवशे, जेमां ए शब्दो उपर व्युत्पत्ति तेम ज अर्थविकासनी दृष्टिए संक्षिप्त टांचणो अपाशे. जूना गुजराती भाषासाहित्यना तुलनात्मक अध्ययनमां उपयोगी थाय ए प्रकारना स्वाध्यायग्रन्थोने पण प्रसंगोपात्त आ ग्रन्थमालामां अवकाश रहेशे.

विक्रमना बारमा शतकमां थयेला, अपभ्रंश व्याकरणकार आचार्य हेमचन्द्रना समयथी मांडी ओगणीसमा शतक सुधी जूना गुजराती साहित्यमां रचायेला सैंकडो ग्रन्थो हजी अप्रसिद्ध छे. ए विपुल साहित्यभंडारमांथी पसंद करेली, जुदा जुदा साहित्यप्रकारोनी प्रतिनिधिरूप गद्यपद्यात्मक कृतिओनुं प्रकाशन ते ते कृतिरूपे अगत्यनुं होवा उपरांत ते ते साहित्यप्रकारना विकासना अध्ययनमां घणुं उपयोगी छे.

शक सं. ६९९ (वि. सं. ८३४)मां 'कुवलयमाला' नामे सुप्रसिद्ध प्राकृत कथा रचनार दाक्षिण्यांक उद्योतनसूरिए गुर्जरोनी भाषानो एक नानो नमूनो टांक्यो छे, पण छेल्लां लगभग साडा आठसो वर्ष थयां तो

प्राचीन गुर्जर साहित्य वहोळा प्रमाणमां उपलब्ध छे. काळना प्रवाहमां घणुं नाश पाम्युं हशे, परन्तु जे बच्युं छे ते पण विपुल छे. विक्रमना बारमा शतकथी आ तरफ आवता एक पण शताब्दी एवी नथी, जेमां जूना गुजराती साहित्यमां निरूपेला विविध साहित्यप्रकारोना प्रतिनिधिरूप नमूना मळता न होय. गुजराती भाषानो शताब्दीवार सिलसिलाबंध इतिहास उकेलवा माटे, जगतनी कोई पण भाषाने ईर्ष्या आवे एवी वैविध्यपूर्ण अने सुसगोपित पुष्कळ साधनसामग्री बहुसख्य हस्तप्रतोरूपे विद्यमान छे एने एक सद्भाग्य गणवुं जोईए. गुजराती भाषा माटे ऐतिहासिक सिद्धान्तानुसार रचायेला बृहद् कोशनी जरूरियात घणा समयथी ऊभेली छे—एवो कोश, जेमा वहोळो शब्दसचय के क्रमिक व्युत्पत्ति आपी होय एटलुं ज नहि, पण साहित्यिक प्रमाणो अने अवतरणोने आधारे कालानुक्रमिक अर्थविकास बतावेलो होय. पण एवा कोशना व्यवस्थित कार्यनो आरंभ थाय त्यार पहेला केटलांक भूमिकारूप कामो—जूना ग्रन्थोनी शास्त्रीय वाचनाओ अथवा ते ते ग्रन्थना अने विशिष्ट युगोना शब्दकोशनी रचनानां तथा विशिष्ट शब्दो के शब्दसमूहोना कालानुक्रमिक अध्ययननां कामो—थवा जोईए. आ ग्रन्थमालाना प्रकाशनमा आ रीतनुं भूमिकारूप अध्ययन रजू करवानो ख्याल पण रहेलो छे. आ ग्रन्थमालामा प्रसिद्ध थती कृतिओ तथा एना शब्दकोशो* ऐतिहासिक गुजराती शब्दकोश माटे सामग्री पूरी

* छेवटना केटलाक वर्षोमा आ देशमा तेम ज परदेशमा थयेला नव्य भारतीय आर्यभाषाना जूना ग्रन्थोनां सपादनोमा सपादित कृतिना प्रत्येक शब्दनी सूचि अपाती घणी वार जोवामा आवे छे ज्यारे छूटक छूटक रूपे एकाद कृतिनुं सपादन थतु होय त्यारे आ प्रकारनी सपूर्ण शब्दसूचिनी उपयोगिता खरी, पण एक ग्रन्थमालाना प्रत्येक ग्रन्थ माटे जो एम करवामां आवे तो बीजा ज प्रकाशनथी एमां बिनजरूरी पुनरावृत्तिनो दोष अनिवार्य रीते आवे अने सपादकना समयनो अने मुद्रणना नाणांनो निरर्थक व्यय थधे. आथी पसद करेला शब्दोनो कोश

पाडशे तथा अन्य भगिनीभाषाओना प्राचीनतर युगोना अध्ययनमां पण उपयोगी थशे एवी आशा छे.

आम साहित्य तेम ज भाषाना तुलनात्मक अने ऐतिहासिक अभ्यासनो द्विविध उद्देश आ ग्रन्थमालाना प्रकाशनमां छे. आ विषयना विद्यार्थीओ अने अभ्यासीओने आ रीते जुदा जुदा दृष्टिकोणथी उपयोगी थाय एवां प्रकाशनो आपवा माटे अमे सतत प्रयत्नशील रहीशुं. योग्य सूचनो द्वारा तथा प्रकाशनोनां विवेचनो द्वारा आ कार्यमां सहकार आपवा तज्ज्ञोने विनंती छे.

‘अध्यापकनिवास,’
वडोदरा.
कार्तिकी पूर्णिमा, सं. २००९.

भोगीलाल जयचंदभाई सांडेसरा
सामान्य संपादक.

आपवानी पद्धति सामान्य रीते आ संपादनोमां रहेशे. जो के टूंकी तेम ज कोई एक अपेक्षाए विशिष्ट कृतिना संपादनमां, जरूर जणाये, सर्व शब्दोनो कोश न आपी शकाय एवुं नथी.

प्रस्तावना

जूनुं गुजराती गद्य

जूना गुजराती साहित्यमां गद्य लखाणो अणछतां के विरल हतां एवो एक सामान्य ख्याल प्रवर्ते छे, पण जूना साहित्यनी शोध थती जाय छे तेम तेम ए ख्याल प्रमाणपुरःसर नथी ए निश्चित थाय छे. ठेठ विक्रमना चौदमा शतकथी मांडी जूनी गुजरातीमां (अथवा डॉ. टेसीटरीए प्रचलित करेलो शब्द वापरीए तो जूनी पश्चिम राजस्थानीमां)* गद्यसाहित्य मळे छे अने उत्तरोत्तर एनुं वैपुल्य वधतुं जाय छे. अर्वाचीन काळमां गद्य साहित्यना घणाखरा प्रकारोनुं वाहन बन्युं छे

---

* सोळमा सैकामा तथा त्यार पहेलाना समयमा 'जूनी गुजराती' अने 'जूनी पश्चिम राजस्थानी' ए बन्ने शब्दप्रयोगो वडे एक ज वस्तुनो बोध थाय छे. संभवित बोलीभेदोवाळी एक ज सामान्य भाषा गुजरात अने राजस्थानमां—खास करीने पश्चिम राजस्थानमां—बोलाती हती. आ भाषाकीय एकताना कारणमां पूर्वकाळनो राजकीय तेम ज सांस्कृतिक इतिहास रहेलो छे, जेनी वीगतमां ऊतरवुं अहीं प्रस्तुत नथी. पण गुजरातनुं एक वारनुं पाटनगर श्रीमाल अत्यारे राजस्थानमां गणाय छे अने गुजरातनी अनेक ब्राह्मण, वणिक अने कारीगर ज्ञातिओनां नामो सूचित करे छे के एक काळे ए बधो प्रजासमूह अत्यारे जेने पश्चिम राजस्थान कहेवामा आवे छे ए प्रदेशमांथी अत्यारना गुजरातमां आवीने वस्यो हतो, एवी केटलीक हकीकत लक्षमां राखवा जेवी छे. आ ऐतिहासिक पार्श्वभूमिका जो ख्यालमा न होय तो 'जूनी गुजराती' अने 'जूनी पश्चिम राजस्थानी' जेवा प्रयोगो वास्तविक अर्थबोधमां थोडो संभ्रम ऊभो करे खरा. एथी आपणी भाषानी ए प्राचीन भूमिका माटे श्री. उमाशंकर जोशीए 'मारु-गुर्जर' एवो शब्द सूचव्यो हतो. आजे पण राजस्थाननी भाषा एना बंधारणनी दृष्टिए हिन्दी करता गुजरातीने वधारे मळती छे ए वस्तु आ ऐतिहासिक परिस्थितिना प्रत्यक्ष समर्थनरूप छे. आ 'प्राचीन गुर्जर ग्रन्थमाळा'मां आपणी भाषाना आ 'मारु गुर्जर' युगनी पण केटलीक कृतिओ प्रसिद्ध थशे—अने आ प्रथम पुष्प तो ए युगनुं ज छे—ए कारणे आटलुं स्पष्टीकरण के विषयान्तर जरूरी गण्युं छे

एवुं जो के ए समयमां नहोतुं, गद्यनुं प्रयोगक्षेत्र सीमित हतुं, तो पण ए सीमित क्षेत्रमां ये थोडाक अलग अलग प्रकारो मळे छे. संस्कृत के प्राकृत ग्रन्थोना अनुवाद के टीकारूप बालावबोधो; अक्षरना रूपना मात्राना अने लयना बंधनथी मुक्त छतां पद्यमां लेवानी बधी छूट भोगवता प्रासयुक्त गद्य–' बोली 'मां रचायेलां ' पृथ्वीचंद्रचरित्र ' (सं. १४७८) जेवां गद्यकाव्यो के ' सभाशृंगार ' जेवा वर्णकसंग्रहो; अज्ञातकर्तृक ' कालकाचार्य कथा ' (सं. १५५० आसपास)* जेवी, क्वचित् अलंकार-प्रचुर अने क्वचित् सहेला रसळता गद्यमां रचायेली कथाओ अने ' कादंबरी कथानक ' (वि.ना १८मा शतकनो पूर्वार्ध)+ जेवा कथासंक्षेपो; दार्शनिक चर्चाओ, वादविवादो अने प्रश्नोत्तरीओ; ' औक्तिक ' तरीके ओळखाता, गुजराती द्वारा संस्कृत शीखवा माटेना संख्याबंध व्याकरण-ग्रन्थो—जेमां संग्रामसिंहकृत ' बालशिक्षा ' (सं. १३३६) अने कुलमंडनगणिकृत ' मुग्धावबोध औक्तिक ' (सं. १४५०) जेवां भाषाना इतिहासनां सीमाचिह्नोनो समावेश थाय छे—ए जूना गद्य-साहित्यना प्राप्त विविध प्रकारो छे. अत्यारे उपलब्ध थतुं जूनुं गद्य पण एटलुं विपुल छे के एनुं प्रकाशन करवामां आवे तो ' बृहत्काव्य-दोहन 'ना सुप्रसिद्ध ग्रन्थो जेवडा ओछामां ओछा सो ग्रन्थो तो सहेजे भराय. जो के जुदा जुदा प्राचीन ग्रन्थभंडारो अने संग्रहोमां जे गद्य-साहित्य मारा जोवामां आव्युं छे ए विचारतां मने लागे छे के आ विधानमां संभव अत्युक्तिनो नहि पण अल्पोक्तिनो छे.

आ गद्यसाहित्यनो मात्र एक अल्प अंश अत्यार सुधीमां बहार आव्यो छे. गायकवाड्झ ओरियेन्टल सिरीझमां ए ग्रन्थमालाना आद्य संपादक श्री. चिमनलाल डाह्याभाई दलाले छपावेल ' प्राचीन गुर्जर

---

* प्रसिद्ध, मारा वडे संपादित, ' प्रस्थान, ' फागण-चैत्र, सं. १९८८

+ प्रसिद्ध, सं. आचार्य जिनविजयजी, ' पुरातत्त्व, ' पुस्तक ५, अंक ४.

काव्यसग्रह'मा तथा आचार्य जिनविजयजी-संपादित 'प्राचीन गुजराती गद्यसन्दर्भ'मा उपलब्ध प्राचीनतम गद्यसाहित्यनी उत्तम वानगी छे डॉ टी एन दवेए लंडन युनिवर्सिटी समक्ष रजू करेला पोताना बृहद् निबधमा (A Study of the Gujarati Language in the 16th Century V S) स १५४२मा रचायेला 'उपदेशमाला'ना बालावबोधनु सपादन करेलु छे त्यार पछी बृहन्निबधरूपे आवा एकबे सपादनो थया छे, पण ते हजी प्रकाशित थया नथी गुजरात तथा राजस्थानमाथी बहार पडता सामयिकोमा केटलीक नानीमोटी प्राचीन गद्यकृतिओ प्रसगोपात्त प्रसिद्ध थई छे प्राचीन गद्यना प्रेरक बळो अर्वाचीन गद्यना प्रेरक बळोथी विभिन्न छे, अने परिणामे ए बन्ने युगमा विकसेला गद्य-साहित्यप्रकारो पण विभिन्न छे वळी अर्वाचीन युगमा साहित्यनु मुख्य वाहन गद्य बन्यु छे अने ए रीते एनु महत्त्व वध्यु छे पण जूनामा जूनी उपलब्ध गद्यकृतिओथी माडी प्राचीन युगना छेल्ला प्रतिनिधि दयारामकृत 'सतसैया' उपरनी स्वरचित गुजराती टीका तथा स्वामीनारायणना 'वचनामृतो' सुधीनी गद्यरचनाओ उपरथी जूना गुजराती गद्यना बधारण अने शैलीनो ऐतिहासिक दृष्टिए कालानुक्रमिक अभ्यास थाय त्यारे विचारोनी स्पष्ट अने रुचिर अभिव्यक्ति माटे जूना गद्यनु सातत्य अर्वाचीन गद्यमा केटले अशे रहेलु छे तथा कई अने केवी नवी लढणो भाषामा विकसी छे ए चोकस स्वरूपे समजी शकाय वळी पद्य करता गद्य ए बोलाती भाषानु विशेष निकटवर्ती होय, ए कारणे पण अभ्यास माटे एनु एक खास महत्त्व छे आ दृष्टिए नेमिचन्द्र कृत प्राकृत 'षष्टिशतक प्रकरण' उपरना—अनुक्रमे सोमसुन्दरसूरि, जिनसागरसूरि अने मेरुसुन्दर उपाध्यायकृत—त्रण प्राचीन गुजराती बालावबोधोना सपादननु आ ग्रन्थमालाना प्रथम पुष्परूपे थतु प्रकाशन अभ्यासीओने उपयोगी थशे एवी आशा छे

'बालावबोध' एटले शुं ?

आ प्रस्तावनाना प्रारंभमां कह्युं छे के बालावबोध ए मूळ संस्कृत के प्राकृत ग्रन्थना अनुवाद के टीकारूपे होय छे. 'बाल' एटले वयमां नहि, पण समज के ज्ञानमां बाल. एना 'अवबोध' माटे थयेली रचनाओ ते 'बालावबोध'. गुजरातीनुं जूनामां जूनुं गद्यसाहित्य जैन शास्त्रग्रन्थोना बालावबोधरूपे छे. बालावबोध आम जो के जैन साहित्यनो शब्द छे, पण एनो अर्थ सहेज विस्तारीने 'भागवत,' 'भगवद्गीता,' 'गीतगोविन्द,' 'चाणक्य नीतिशास्त्र,' 'योगवासिष्ठ,' 'सिंहासनबत्रीसी,' 'पंचाख्यान,' 'गणितसार' आदि जे बीजी अनुवादरूप रचनाओ मळे छे ते माटे पण साहित्यना इतिहासमां ए शब्द प्रयोजी शकाय, केम के आ बधा गद्यानुवादोनो उद्देश एक ज छे. बालावबोधमां केटलीक वार मूळ ग्रन्थोनुं भाषान्तर होय छे, तो केटलीक वार दृष्टान्तकथाओ के अवान्तर चर्चाओ द्वारा मूळनो अनेकगणो विस्तार करेलो होय छे. पण 'बालावबोध'नो जे एक उत्तरकालीन प्रकार 'स्तबक' अथवा 'टबा'रूपे ओळखाय छे एमां मात्र शब्दशः भाषान्तर ज होय छे. एमां 'स्तबक'नी पोथीओनी लेखनपद्धति कारणभूत छे. बालावबोधना वाचको करतां पण जेमनुं शास्त्रज्ञान मर्यादित होय एवा वाचकोने ध्यानमां राखीने 'स्तबक'नी रचना थयेली छे. एमां पोथीना प्रत्येक पृष्ठ उपर त्रण के चार पंक्ति मोटा अक्षरोमां मूळ शास्त्रग्रन्थनी लखवामां आवती अने प्रत्येक पंक्तिनी नीचे झीणा अक्षरोमां एनो अर्थ लखवामां आवतो, जेथी वाचकने प्रत्येक शब्दनो भाव समजवामां सरळता थाय. आ प्रकारनी लेखनपद्धतिने कारणे प्रत्येक पृष्ठ उपर नाना अने मोटा अक्षरोमां लखायेली पंक्तिओनां जाणे के 'स्तबक'—झूमखां रचायां होय एम जणातुं. ए उपरथी आ प्रकारना अनुवादो माटे 'स्तबक' शब्द वपरायो, जेमांथी गुजराती 'टबो' व्युत्पन्न थयो.

बालावबोधना कर्ताओ पोताना विषयना जाणकार विद्वानो हता; ए कारणे एमना अनुवादो शिष्ट होय छे अने शब्दोनी पसंदगी मूळने अनुसरती तेम ज समुचित अर्थनी वाहक होय छे. एमनो प्रथम उद्देश साहित्यिक आनंद आपवानो नहि, पण वाचकने मूळ वस्तुनुं ज्ञान करावबानो छे, छतां तरुणप्रभसूरिकृत 'षडावश्यक बालावबोध' (सं. १४११) जेवी केटलीक रचनाओनां कथानकोमां वर्णकशैलीना अलंकार-प्रचुर गद्यना आगमननी एंधाणीओ वरताय छे खरी. परन्तु मूळ ग्रन्थने सादी भाषामां समजाववानो 'बालावबोध'ना साहित्यप्रकारनो प्रथम उद्देश छे ते तो भाग्ये ज कोई बालावबोधमां असफल रहेलो जणाशे. जूना गुजराती साहित्यमां बालावबोध पांच-पचीस नहि पण कुडीबंध छे; अने संस्कृत-प्राकृत भाषाओमां संघरायेला शास्त्रज्ञानने लोकभाषाओ द्वारा बहुजनसमाज समक्ष सरल स्वरूपमां मूकवानी जे प्रवृत्ति मध्यकाळमां समस्त भारतवर्षमां नजरे पडे छे ए ज आ बालावबोधोनी वहोळी अनुवादप्रवृत्तिमां पण एक चालक बळरूपे छे एम कहेवामां भाग्ये ज अतिशयोक्ति गणाशे.

एक ज मूल ग्रन्थना एक करतां वधु बालावबोधो जेमां साथोसाथ प्रसिद्ध थता होय एवुं, मने ख्याल छे त्यां सुधी, आ पहेलुं ज प्रकाशन छे. एक ज मूल 'षष्टिशतक प्रकरण'नो त्रण जुदा जुदा विद्वानोए करेलो अनुवाद एमां एक साथे जोई शकाशे. ए त्रणे विद्वानो लगभग एक ज समयमां थयेला छे, सोमसुन्दरसूरिनो बालावबोध विक्रमना पंदरमा शतकना अंतमां रचायेल छे, ज्यारे जिनसागरसूरि अने मेरुसुन्दर उपाध्यायना बालावबोधो विक्रमना सोळमा शतकना प्रारंभमां रचाया छे. रचना उपरथी जणाय छे के त्रणेनो आशय मूळनी अनुवादरूप समजूती आपवानो छे; जो के कोई कोई स्थळे त्रणेए थोडोक विस्तार करी दीधो छे. मूळ प्राकृत गाथा तथा ते उपरना त्रणे य बालावबोधो एक साथे छापेला

होवाथी आवां स्थानो अनायासे जोई शकाशे. केटलाक विस्तृत बालावबोधोमां आवे छे एवी अवान्तर चर्चाओ के दृष्टान्तो प्रस्तुत अनुवादोमां नथी. त्रण समसामयिक विद्वानोए एक ज मूल ग्रन्थना करेला त्रण जुदा जुदा गद्यानुवादो मूलना त्रिविध भाषान्तर उपरांत एक ज भावना वाचक विविध शब्दो तेम ज एक मूल शब्दनी तत्कालीन जुदी जुदी अर्थच्छायाओ तथा एना रूपभेदो—जेमां तत्कालीन बोलीभेदोनुं प्रतिबिंब पण पड्युं होय एवो पूरो संभव छे—जाणवामां उपयोगी थशे.

'षष्टिशतक प्रकरण' अने तेनो कर्ता

धर्म के तत्त्वज्ञानने लगता कोई एक विषय उपर प्राकृत पद्यमां रचायेली संक्षिप्त कृतिओने जैन साहित्यमां 'प्रकरण' कहे छे. 'षष्टिशतक' आवुं एक प्रकरण छे, अने एमां १६० गाथाओ छे (१६१मी गाथा केवल पुष्पिका रूप छे), ते उपरथी एने 'षष्टिशतक' नाम आपवामां आवेलुं छे.* एना कर्ता नेमिचन्द्र भंडारी नामे श्रावक गृहस्थ छे. आ कृतिनुं चोकस रचनावर्ष मळ्युं नथी, पण विक्रमना तेरमा शतकमां नेमिचन्द्र विद्यमान हता ए निश्चित छे. जैन श्वेतांबर संप्रदायना खरतर गच्छनी विविध पट्टावलीओमां तेम ज मेरुसुन्दर उपाध्यायकृत बालावबोध (पृ. २)मां उल्लेख छे ते प्रमाणे, तेओ मारवाडमां मरोट

* मूल 'षष्टिशतक' ते उपरनी तपोरत्न अने गुणरत्ननी टीका (सं. १५०१) सहित जैन सत्यविजय ग्रन्थमाळाना छठ्ठा पुष्प तरीके अमदावादथी ई. स. १९२४मां प्रसिद्ध थयेल छे. गुजराती अनुवाद साथे 'षष्टिशतक' मूल सं. १९७६मां जामनगरवाळा पं. हीरालाल हंसराजे छपावेल छे, वळी मोहनलालजी जैन ग्रन्थमाळाना बीजा पुष्प तरीके ई. स. १९१७मां बनारसथी एनो मूळ पाठ बहार पडेल छे. उपर नोंधेली, तपोरत्न अने गुणरत्ननी संस्कृत टीका उपरांत 'षष्टिशतक' उपर सहजमंडनकृत व्याख्यान, धर्ममंडनगणिकृत टीका तथा कोई अज्ञात कर्तारचित अवचूरि जाणवामां आवेल छे (जुओ प्रो. वेलणकरकृत 'जिनरत्नकोश', पृ. ४०४).

गामना वतनी हता ए काळे जैन सम्प्रदायमा चैत्यवासी यतिओनु प्राबल्य हतु अने महावीरे प्रबोधेला आकरा संयममार्गनी अपेक्षाए एमनामा ठीक ठीक शिथिलाचार प्रवर्ततो हतो आथी 'द्रव्य, क्षेत्र, काल अने भावना मेळवी' सद्गुरुनी शोध करता नेमिचन्द्र पाटणमा आव्या तथा त्या खरतर गच्छना आचार्य जिनपतिसूरि (स १२१० १२७७)नी चर्या जोई, परम सयमी गुरु तरीके एमना आचारोनु अवलोकन करी, एमनो उपदेश साभळीने व्रतो स्वीकार्यां पछी पोताने वतन पाछा आवीने पोताना पुत्र आवडने नेमिचन्द्र जिनपतिसूरि पासे लई गया, अने तेमनी पासे पुत्रने महोत्सवपूर्वक दीक्षा अपावी नेमिचन्द्रना आ पुत्र दीक्षित थया पछी आचार्य जिनेश्वरसूरि (स १२४५ १३३१) तरीके प्रसिद्ध थया आ जिनेश्वरसूरिनी दीक्षानु वर्णन विक्रमना चौदमा शतकमा थयेला कवि सोममूर्तिकृत 'जिनेश्वरसूरि सयमश्री विवाहवर्णन' ए नामना ३३ कडीना सक्षिप्त काव्यमा छे (प्रसिद्ध श्री जिनविजयजी सपादित 'जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्यसचय'मा तथा श्री अगरचद नाहटा सपादित 'ऐतिहासिक जैन काव्यसग्रह'मा)

'षष्टिशतक'नी गाथाओमा शुद्ध धर्म, मिथ्यात्व, सदाचार, सद्गुरु, कुगुरु आदिनु स्वरूप कताए मुखपाठे करी शकाय एवी गाथाओमा संक्षेपमा समजाव्यु छे निरूपणमा जे अभिनिवेश अने शिथिलाचार सामेनो प्रकोप जणाय छे एनु कारण उपर सूचवी छे तेवी ए समयनी धार्मिक-सामाजिक परिस्थितिमा रहेलु छे

वळी आ प्रकरणनी रचनामा नेमिचन्द्रथी थोडा ज समय पूर्वे थई गयेला आचार्य जिनवल्लभसूरि (स्वर्गवास स ११६७)कृत 'पिंड विशुद्धि प्रकरण'नु वाचन पण एक प्रेरक कारण हतु जिनवल्लभसूरि पहेला कूर्चपुरगच्छीय चैत्यवासी जिनेश्वरसूरिना शिष्य हता पण एक

वार 'दशवैकालिक सूत्र' वांचतां, सावद्य औषध आदि करता पोताना अति प्रमादी गुरुने जोई तेओ उद्वेग पाम्या, अने पछी शुद्ध क्रियाविधि, नवांगी वृत्तिकार—जैन आगमसाहित्यनां नव अंगो उपर प्रमाणभूत संस्कृत टीकाओ रचनार—अभयदेवसूरि (विक्रमना बारमा शतकनो पूर्वार्ध) पासे जई शास्त्राध्ययन कर्युं अने एमना शिष्य थया, तथा 'पिंडविशुद्धि प्रकरण', 'सार्ध शतक' आदि संख्याबंध ग्रन्थो रच्या.* जिनवल्लभसूरिए जे चैत्यो बंधाव्यां एने 'विधिचैत्य' नाम आपी एमां शास्त्रविरुद्ध कार्य थाय नहि ए प्रकारना श्लोको तेमणे कोतराव्या.+ नेमिचन्द्रने पोताना अनुभव अने अवलोकनने परिणामे जे कहेवानुं हतुं एने आ

---

* 'खरतर गच्छ पट्टावली संग्रह' (सं. जिनविजयजी), पृ. १०-२४.

+ सामाजिक इतिहासनी दृष्टिए रसप्रद एवा, एमांना बे श्लोक नीचे प्रमाणे छे—

अत्रोत्सूत्रजनक्रमो न च न च स्नात्रं रजन्यां सदा
साधूनां ममताश्रयो न च न च स्त्रीणां प्रवेशो निशि ।
जातिज्ञातिकदाग्रहो न च न च श्राद्धेषु ताम्बूलमि-
त्याज्ञाऽत्रेयमनिश्रिते विधिकृते श्रीजैनचैत्यालये ॥

(अर्थात् अनिश्राए विधिपूर्वक थयेला आ जैन चैत्यमां एवी आज्ञा छे के एमां उत्सूत्र जनोनो संचार नथी, एमां रात्रे स्नात्र-स्नान नथी, साधुओए एमां ममतापूर्वक रहेवानुं नथी, एमां रात्रे स्त्रीओने प्रवेश नथी, एमां जाति अने ज्ञातिनो कदाग्रह नथी, अने एमां श्रावकोए तांबूल खावानुं नथी.)

इह न खलु निषेधः कस्यचिद् वन्दनादौ
श्रुतविधिबहुमानी त्वत्र सर्वोऽधिकारी ।
त्रिचतुरजनदृष्ट्या चात्र चैत्यार्थवृद्धि-
व्ययविनिमयरक्षाचैत्यकृत्यादि कार्यम् ॥

(अर्थात् अहीं कोईने पण वंदनादिनो निषेध नथी, शास्त्रविधिने मान आपनार सौ कोईनो अहीं अधिकार छे, आ चैत्यना धननी वृद्धि व्यय विनिमय रक्षा तथा धार्मिक कार्यो त्रणचार जणनी नजर नीचे करवानां छे.)

'षष्टिशतक'नी १६१मी गाथामां 'विधिमार्गरत भव्य' जनो माटे पोते ए रचना करी होवानुं नेमिचन्द्रे कह्युं छे ते आ साथे सरखाववा जेवुं छे.

पूर्वकालीन आचार्यना जीवनकार्य अने ग्रन्थरचनाओमांथी अनुमोदन मळ्युं अने परिणामे तेणे 'षष्टिशतक'नी गाथा १०७-८मां तथा १२९मां जिनवल्लभसूरिने बहुमानपूर्वक बिरदाव्या छे अने 'प्रभु जिनवल्लभ जेवा तो मात्र जिनवल्लभ छे' (पहु जिणवल्लहसरिसो पुणो वि जिणवल्लहो चेव) एम कहीने एमना प्रत्येनो पोतानो अनन्य भक्तिभाव दर्शाव्यो छे. गाथा १२९ स्पष्ट रीते पुरवार करे छे के नेमिचन्द्र जिनवल्लभसूरिने प्रत्यक्ष मळ्या नहोता, पण जिनवल्लभना ग्रन्थोए ज नेमिचन्द्रना हृदय उपर ऊंडी असर करी हती.* विक्रमना तेरमा शतकनी उत्तरकालीन अपभ्रंशमां नेमिचन्द्रे रचेलुं 'जिनवल्लभसूरि गुरुगुणवर्णन' नामे ३५ कडीनुं काव्य पण ए ज वस्तु पुरवार करे छे (जुओ परिशिष्ट १). नेमिचन्द्रनी बीजी एक रचना पण उपलब्ध छे, अने ते नव गाथाओनुं प्राकृत 'पार्श्वनाथ स्तोत्र'. आ ग्रन्थना परिशिष्ट २ मां ते पहेली ज वार प्रकाशित थाय छे.

एक पूर्वकालीन प्रकरणग्रन्थ, धर्मदासगणिकृत प्राकृत 'उपदेशमाला'नो+ मानभेर उल्लेख नेमिचन्द्रे 'षष्टिशतक'नी ९६मी गाथामां

---

* 'उपमितिभव प्रपंच कथा' (सं. ९६२)ना कर्ता सिद्धर्षिए पोताथी घोडा ज समय पूर्वे थई गयेला हरिभद्रसूरिनो उल्लेख पोताना 'धर्मबोधकर गुरु' तरीके कर्यो छे अने तेमणे 'ललितविस्तरा' वृत्ति अनागतनो विचार करीने पोताने माटे ज निर्मी होवानुं बहुमानपूर्वक नोंध्युं छे. एक पूर्वकालीन विद्वाने पोतानी आध्यात्मिक दृष्टिने बराबर रुचे एवी कृति लखी ए माटे सिद्धर्षिना ए प्रशंसाना उद्गारो छे. नेमिचन्द्रनो जिनवल्लभसूरि साथेनो आध्यात्मिक संबंध लगभग ए प्रकारनो ज गणी शकाय.

+ जैन अनुश्रुति प्रमाणे, धर्मदासगणि महावीरना शिष्य हता. परन्तु 'उपदेशमाला'नी भाषा तो उत्तरकालीन जैन महाराष्ट्री छे ए जोतां आ अनुश्रुतिने केटले अंशे प्रमाणभूत गणवी ए प्रश्न छे. विक्रमना दशमा सैका करतां तो ए प्राचीनतर छे ज, केम के ए समये थयेला सिद्धर्षिए 'उपदेशमाला' उपर टीका रचेली छे.

कर्यो छे. 'षष्टिशतक'नी सामान्य उपदेशात्मक गाथाओ उपर 'उपदेश-माला'नी असर छे, अने 'षष्टिशतक'ना बालावबोधकारो पण एमांथी वखतोवखत अवतरणो टांके छे (पृ. १५, २२, ५१, ६१, ७०, ९६, ९७, ११६, १२५, १३०, १४१, १५४, १५५).

'षष्टिशतक'ना बालावबोधकारो–(१) सोमसुन्दरसूरि

सोमसुन्दरसूरि (सं. १४३०-१४९९) ए तपागच्छना सुप्रसिद्ध आचार्य छे. प्रकांड पंडित होवा साथे तेओ एक शिष्ट ग्रंथकार छे, अने संस्कृत तेम ज गुजरातीमां पद्यात्मक तेम ज गद्यात्मक एमनी संख्याबंध रचनाओ जाणवामां आवेली छे. 'भाष्यत्रयचूर्णि,' 'कल्याणक स्तव,' 'रत्नकोश,' 'नवस्तवी' आदि एमनी संस्कृत धार्मिक कृतिओ छे. गुजराती पद्यमां 'आराधना रास' अने 'नेमिनाथ नवरसफाग' तथा गद्यमां 'उपदेशमाला' (सं. १४८५), 'योगशास्त्र,' 'षडावश्यक,' 'आराधना पताका,' 'नवतत्त्व,' 'भक्तामर स्तोत्र' आदि उपर तेमणे बालावबोधो रच्या छे.* एमनो 'षष्टिशतक' बालावबोध, एना अंतमां उल्लेख छे ते प्रमाणे, सं. १४९६मां रचायेलो छे. आ प्रतिष्ठित आचार्ये तत्कालीन धार्मिक प्रवृत्तिओमां हंमेशां आगेवानी लीधी हती अने पाटण तथा खंभातना सुप्रसिद्ध प्राचीन पुस्तकभंडारोनी सुव्यवस्था करी हती अने ताडपत्र उपर लखायेला प्राचीनतर ग्रन्थोनुं कागळ उपर संस्करण देवसुन्दरसूरि अने सोमसुन्दरसूरिना मंडळे कर्युं हतुं. सोमसुन्दरसूरिना बहोळा शिष्यमंडळनी साहित्यसेवा पण अनेक दृष्टिए नोंधपात्र छे. एमना केटला ये शिष्यो प्रसिद्ध वादीओ, उपदेशको

---

* 'उपदेशमाला' अने 'योगशास्त्र'ना बालावबोधोमांथी कथाओ आचार्य जिनविजयजी-संपादित 'प्राचीन गुजराती गद्यसन्दर्भ'मां लेवामां आवी छे.

अने ग्रन्थकारो हतां. एमना एक शिष्य प्रतिष्ठासोमे रचेला संस्कृत 'सोमसौभाग्य' महाकाव्यमां एमनुं जीवनचरित गूंथेलुं छे.*

(२) जिनसागरसूरि

बीजा बालावबोधकार जिनसागरसूरि खरतर गच्छनी पिप्पलक शाखाना आचार्य छे. तेमणे सं. १५०१मां 'षष्टिशतक' उपर बालावबोध रच्यो हतो.+ गुजरात अने राजस्थानमां जुदे जुदे स्थळे एमणे करावेली मूर्तिओनी प्रतिष्ठाविधिना संख्याबंध लेखो सं. १४९१थी सं. १५१० सुधीनां जुदां जुदां वर्षना मळे छे.§ 'षष्टिशतक'ना बालावबोध उपरात तेमणे संस्कृतमां केटलीक ग्रन्थरचना करेली छे. पंडित उदयशील गणिना आग्रहथी तेमणे 'हैमलघुवृत्ति'ना चार अध्यायनी दीपिका रची हती. वळी एमणे 'कर्पूरप्रकरण' उपर अवचूरि रचेली छे, जेनो प्रथमादर्श एमना विद्वान शिष्य तथा राजशेखरकृत 'कर्पूरमंजरी' अने सोमप्रभाचार्यकृत 'सिन्दूरप्रकर'ना टीकाकार धर्मचन्द्रे लख्यो हतो.‡ जिनसागरसूरिना हस्ते विद्याविस्तारनी केटलीक प्रवृत्ति थयाना उल्लेख पण मळे छे. उदाहरण तरीके, एमना उपदेशथी सं. १४९२मा मेवाडना देवकुलपाटकपुरमां (अर्थात् देलवाडा गाममा) एक ऊकेशवंशीय श्रावके 'आवश्यक बृहद्वृत्ति' लखावी होवानो निर्देश मळे छे. वळी एमना

* आ प्रभावशाली आचार्य अने एमना शिष्यमंडळनी प्रवृत्तिओ माटे जुओ श्री. मोहनलाल द. देसाईकृत 'जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास,' पृ. ४५१-७१.

+ ए ज, पृ. ४८६ उपर श्री देसाईए एनुं रचनावर्ष सं १४९१ नोंध्युं छे, पण में उपयोगमां लीधेली हाथप्रतमां सं. १५०१नो स्पष्ट उल्लेख छे.

§ 'जैन गुर्जर कविओ,' भाग २, पृ. ६९४.

‡ 'जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास,' पृ ४७५, ५१५

उपदेशथी सं. १४९५मां लखायेली 'धर्मोपदेशमाला वृत्ति'नी प्रति लींबडीना ग्रन्थभंडारमां सचवायेली छे.*

(३) मेरुसुन्दर उपाध्याय

जूना गुजराती साहित्यमां मेरुसुन्दर उपाध्याय बालावबोधकार तरीके सुप्रसिद्ध छे. तेओ विक्रमना सोळमा शतकना पूर्वार्धमां थई गया. तेओ खरतर गच्छना आचार्य पांचमा जिनचन्द्रसूरि (सं. १४८७-१५३०)ना शिष्य हता, अने 'षष्टिशतक'नो बालावबोध एमना पोताना ज कथन प्रमाणे (पृ. ३), एमणे गुरुनी आज्ञाथी वनारसमां रच्यो हतो. मेरुसुन्दरे 'शत्रुंजय स्तवन'नो बालावबोध सं. १५१८मां तथा तरुणप्रभसूरिकृत 'षडावश्यक बालावबोध'ने अनुसरीने ए ज ग्रन्थ उपरनो नवो बालावबोध सं. १५२५मां मांडवगढ (मांडु)मां रच्यो हतो. वळी 'शीलोपदेशमाला,' 'पुष्पमाला प्रकरण,' 'भक्तामर-स्तोत्र,' 'वृत्तरत्नाकर,' 'भावारिवारण,' 'कल्पप्रकरण,' 'कर्पूरप्रकर', 'योगशास्त्र,' 'पंचनिर्ग्रन्थी' आदि ग्रन्थो उपरना एमना बालावबोधनी प्रतो आ पहेलां जाणवामां आवेली छे.+ 'षष्टिशतक'ना बालावबोधमां रचनावर्ष नथी, पण उपरनी वीगतो जोतां विक्रमना सोळमा शतकना पूर्वार्धमां एनी रचना थया विषे शंका नथी. मूळ ग्रन्थना भावने सरल गुजराती गद्यमां, संक्षेपमां रजु करवानी मेरुसुन्दरनी हथोटी प्रशंसापात्र छे, अने एमनी 'उपाध्याय' पदवी उपरथी अनुमान थाय छे के तेओ शिष्योने भणाववानुं कार्य करता हशे अने ए कार्य करतां करतां शिष्य-हितार्थे आटला बधा मूळ ग्रन्थोने गुजरातीमां उतारवानुं एमने सूझ्युं हशे.

---

* 'जैन गुर्जर कविओ,' भाग ३, पृ. ६६४.

+ ए ज, भाग १, पृ. ६०१-२; भाग ३, पृ. १५८२-८५; 'जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास,' पृ. ५२२.

उपर जणावेली रचनाओ उपरांत नेमिचन्द्रकृत एवा बे बालावबोधो जाणवामां आव्या छे, जेनी नोंध आ पहेलां कोई विद्वाने करी नथी. एक छे गुजराती आलंकारिक सोमपुत्र वाग्भटकृत 'वाग्भटालंकार' (विक्रमना १२मा शतकनो उत्तरार्ध)नो बालावबोध तथा बीजो बौद्ध विद्वान धर्मदासगणिकृत अलंकारग्रन्थ 'विदग्धमुखमंडन'नो बालावबोध. आ बन्ने कृतिओ खास नोंधपात्र एटला माटे छे के संस्कृत अलंकारग्रन्थोना बालावबोधो जवल्ले ज मळे छे. 'वाग्भटालंकार'नो बालावबोध मेरुसुन्दरे सं. १५३५मां रचेलो छे; ए ज वर्षमां लखेली एनी २७ पत्रनी शुद्ध प्रति में लगभग अढी वर्ष पहेलां जोधपुरना महाराजाना पुस्तकालयमां जोई हती अने एमांथी थोडी जरूरी नोंध करी लीधी हती. 'विदग्धमुखमंडन'ना बालावबोधनी जोधपुरना जैन भंडारनी एक अपूर्ण हस्तलिखित पोथी उपाध्याय विनयसागरजीए उपयोग माटे मोकली हती. ए प्रति लिपि उपरथी सत्तरमा शतकमां लखायेली जणाय छे. आ बन्ने कृतिओ, उपर कह्युं ते प्रकारे, महत्त्वनी होवाथी एमांथी केटलांक नमूनारूप अवतरण अहीं आपुं छुं. पहेलां **वाग्भटालंकार बालावबोधनो** आदि-अंत जोईए—

आदि—

॥ र्द० ॥ ॐ नमः श्रीश्रुतदेवतायै ॥

सिद्धं सिद्धिदमीश्वरं मघवता संस्तूयमानं परं
स्फूर्जत्संसृतिदुस्तराब्धितरणे चञ्चत्तरीसुन्दरम् ।
आनन्दामलवल्लरीप्रविलसत्प्रत्यग्रधाराधरं
वन्दे नाभिनरेन्द्रनन्दनमहं श्रीमद्युगादीश्वरम् ॥ १ ॥
अनेकसाधुसाध्वीभिः श्रावकश्राविकादिभिः ।
पूरितोऽस्ति धराख्यातो गच्छः खरतराभिधः ॥ २ ॥

तस्मिन् बभूवुरमी नानालब्धिसमाश्रिताः ।
सौभाग्यभाग्यनिलयाः श्रीजिनभद्रसूरयः ॥ ३ ॥

तेषां गुरूणामुदिते सुपट्टे नानागुणालंकृतचारुवर्ष्मणः ।
प्रसन्नचित्ता जयिनस्तु सन्ति भट्टारकाः श्रीजिनचन्द्रसूरयः ॥ ४ ॥

आसाद्य तत्प्रसादं करोति सरलं स्फुटार्थवररचितम् ।
इह **मेरुसुन्दरगणिर्वाग्भटबालावबोधनं** चारु ॥ ५ ॥

इहादौ सकलकल्याणमालाललितवल्लरीसजलजलधरसंनिभं विविधार्थसिद्धिवितरणकुशलममलगुणचक्रवालकलितकलेवरं श्रीयुगादीश्वरं स्तुवन्नाह ।

श्रियं दिशतु वो देवः श्रीनाभेयजिनः सदा ।
मोक्षमार्गं सतां ब्रूते यदागमपदावली ॥ १ ॥

श्रीनाभेयजिनो देवः श्रीआदिनाथः । वो युष्मभ्यं सदा श्रियं दिशतु ददातु । श्रीनाभेयजिनदेव श्रीआदिनाथ तम्ह रहइं सदा श्री लक्ष्मी दिउ । यदागमपदावली सतां सत्पुरुषाणां मोक्षमार्गं ब्रूते । जेह जिनना आगम सिद्धांतना पद वाक्यनी आवली श्रेणि सत्पुरुष रहइं मोक्षमार्ग बोलइ । अन्यस्य कस्यचित् पदानां पङ्क्तिर्दृष्टा सती सतां सत्पुरुषाणां मार्गं प्रकाशयति । अनेराइ कहि पुरुषना पद चरणनी श्रेणि दीठी हूती सत्पुरुषनइ मार्ग प्रकासइ । इसिउ उक्तिलेश जाणिवउ ॥ छ ॥

साधुशब्दार्थसन्दर्भं गुणालङ्कारभूषितम् ।
स्फुटरीतिरसोपेतं काव्यं कुर्वीत कीर्त्तये ॥ २ ॥

कविः काव्यं कुर्वीत । कवीश्वर काव्य करइ । किमर्थं । कीर्तये । कीर्त्तिनइ अर्थे । किंविशिष्टं काव्यम् । साधुशब्दार्थसन्दर्भम् । साधु दोषरहित शोभन छइं जे शब्द नइ अर्थ तेह तणु सन्दर्भ रचनाविशेष छइं । पुनः किंविशिष्टं काव्यम् । गुणालङ्कारभूषितम् । गुण सौंदर्यादिक अलंकार उपमादिक तेहिं भूषित अलंकृत छइ । पुनः किंविशिष्टं काव्यम् । स्फुटरीतिरसोपेतम् । स्फुट प्रकट छइ जे रीति पांचाल्यादिक अनइ

रस शृंगारादिक तेहिं उपेत संयुक्त छइ। तत्र रीतिनामुद्देशः कथ्यते। उक्तं च।

> द्वित्रिपदा पाञ्चाली लाटीया पञ्च सप्त वा यावत्।
> शब्दा. समासवंतो भवति यथाशक्ति गौडीया॥
> असमस्तपदा वैदर्भी रीतिः। इति रीतिचतुष्कम्॥

द्वित्रीणि वा पदानि यस्यां रीतौ सा पाञ्चाली। बि त्रिणि वा पद हुइं जेणइं रीतिइं ते पांचाली रीति जाणिवी। पंचभिः सप्तभिः पदैः लाटीया रीतिर्ज्ञातव्या। पांचि अथवा साति पदि लाटीया रीति जाणिवी। यथाशक्ति समासवंतः शब्दा गौडीया रीतिर्भवति। यथाशक्तिइं समास-संयुक्त शब्द हुइ ते गौडीया रीति जाणिवी। असमस्तपदा पृथक्पदा वैदर्भी रीतिर्ज्ञातव्या। समस्त पदि जूइ जूइ पदि वैदर्भी रीति जाणिवी। ईणइ परिइं रीति च्यारिइ जाणिवी। एहिं रीतिसंयुक्त काव्य कीर्त्तिनइ अर्थि हुइ। एतद्विपरीतं तु काव्य विपरीतफलमेव स्यादिति तात्पर्यार्थः। एह तु विपरीतकाव्य विपरीतफल हुइ इसु तात्पर्यार्थ जाणिवु॥ छ॥

अंत—

अथ बीभत्समाह॥

> बीभत्स स्यात् जुगुप्सातः सोऽहृद्यश्रवणेक्षणात्।
> निष्ठीवनास्यभङ्गादेः स्यादत्र महतां न च॥ ३०॥

जुगुप्सात बीभत्सरसः स्यात्। जुगुप्सा कुत्सित वस्तुनु बीभत्स रस हुइ। विभावादिनस्योपदिशति। स बीभत्स अहृद्यश्रवणेक्षणात्। निष्ठीवनास्यभङ्गादिः स्यात्। ते बीभत्स रस अहृद्य सूगामणो सांभलिवानु अनइ जोइवानु। निष्ठीवन थूंकिवूं, आस्यभंग मुख मोडवूं इत्येवमादिक हुइ। च अन्यत् अत्र महतां निष्ठीवनास्यभंगादयः प्रायो न वक्तव्या इति॥ च अनइ महांत गुरूआनइं निष्ठीवन आस्यभंगादिक प्राय सहाजिइ न हुइं॥ छ॥

शांतरसमाह ॥

सम्यग्ज्ञानसमुत्थानः शान्तो निःस्पृहनायकः ।
रागद्वेषपरित्यागात् सम्यग्ज्ञानस्य चोद्भवः ॥ ३१ ॥

सम्यग्ज्ञानसमुत्थानः शान्तो रसः स्यात् । सम्यक् ज्ञाननु ऊपनु शांत रस हुइ । कीदृशः । निःस्पृहनायकः । निःस्पृह निराकांक्षी नायक छइ । च अन्यत् रागद्वेषपरित्यागात् सम्यक् ज्ञानस्य उद्भवो भवेत् । रागद्वेषना परित्याग छांडिवातु सम्यक् ज्ञाननु उद्भव उत्पत्ति हुइ ॥ छ ॥

उपसंहरन्नाह ॥

दोषैरुज्झितमाश्रितं गुणगणैश्चेतश्चमत्कारिणं
नानालङ्कृतिभिः परीतमभितो रीत्या स्फुरन्त्या सताम् ।
तैस्तैस्तन्मयतां गतं नवरसैराकल्पकालं कवि-
स्रष्टारो रचयन्तु काव्यपुरुषं सारस्वतध्यायिनः ॥ ३२ ॥

कविस्रष्टार आकल्पकालं कल्पान्तं यावत् काव्यपुरुषं रचयन्तु निष्पादयन्तु । कविस्रष्टा आकल्प कल्पांत जाण काव्यपुरुष रचउ नींपजावउ । कीदृशं । दोषैः श्रुतिकट्वादिभिः उज्झितम् । दोष श्रुतिकट्वादिके उज्झित त्यक्त छइ । तथा गुणगणैः औदार्यादिभिः आश्रितम् । तथा गुणना समूहे औदार्यादिके आश्रित छइ । तथा चेतः चमत्कारिणं । चित्तनइं चमत्कार करतु छइ । नानालङ्कृतिभिः परीतम् । नानाविध अलंकारे परीत युक्त छइ । तथा सतां सत्पुरुषाणां विदुषां वा अभितः स्फुरन्त्या रीत्या तैस्तैः नवरसैः तन्मयतां गतम् । तथा संत विद्वांसनी सविहुं प्रकारि स्फुरंती उल्लसंती रीतिइं करी तेह तेह नवरसि करी तन्मयतागत प्राप्त छइ । किंलक्षणाः कवयः । सारस्वतध्यायिनः । सारस्वतमंत्रनू ध्यान करता छइ ।

श्रीमत् खरतरगच्छे श्रीमजिनभद्रसूरींद्राः
तत्पट्टे विजयंते जिनचंद्रजितीश्वरा गुरवः ॥

तेषामंतेवासी वाचकवरमेरुसुंदरः शुचिवाक् ।
चक्रे वाग्भटविहितालंकारस्य प्रवरविवृतिम् ॥
बाणाग्निबाणशशिधरसंख्ये वर्षे विशुद्धतरदिवसे ।
ग्रन्थः समर्थितोऽयं नंदतु यावज्जगति मेरुः ॥

संवत् १५३५ वर्षे श्रीखरतरगच्छे* श्रीमेरुसुंदरोपाध्यायैः वाग्भटालंकार-बालावबोध' कृतोऽयं चिरं नंदता[त्] ॥ छ ॥ छ ॥ कल्याणमस्तु ॥ आ० कालासुत श्रीवत्सलखितं ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥ श्री ॥ छ ॥ संवत् १५३५ वर्षे द्वितीय श्रावणे सुदि पंचमी गुरुवासरे इंद्रीग्रामे ऊकेशगच्छे श्रीसिद्धाचार्य-संताने भ. श्रीसिद्धसूरिविजयराज्ये पं० जयरत्नानामुपदेशेन लिखापितोऽयं वाग्भटालंकारबालावबोधः ॥ दे० ॥ ओसवालज्ञातीय मं० तारा भा० रमाई पु० मं. जगाकेन पु० पहिराजयुतेन मा० रंगूश्रेयसे ॥ शुभं भूयात् दायिकवाचकयोः ॥ श्रीरस्तु ॥

' विदग्धमुखमंडन 'ना बालावबोधनी जे एक मात्र प्रति जाणवामां आवेली छे एमां ३५ पत्र मळे छे, पण प्रति अधूरी छे. जो के छेवटना मात्र छ श्लोकनो ज बालावबोध एमां न होई प्रतिने अखंडितकल्प गणी शकाय. अर्थात् मूळ प्रतिनुं छेल्लुं एकाद पत्र गूम थयेलुं होवुं जोईए. आथी **विदग्धमुखमंडन बालावबोध**ना प्रारंभमांथी थोडो नमूनो जोईए—

....

....

तस्मिन् वराः श्रीजिनभद्रसूरयः सिद्धान्तवारांनिधिपूर्णचन्द्राः ।
सरोषकन्दर्पविमुक्ततीक्ष्णबाणावलीगर्वहरा बभूवुः ॥ ३ ॥
तेषां महानन्दजुषां गुरूणां विशिष्टपट्टे जयिनस्तु सन्ति ।
सरस्वतीदत्तवरा अनेकशिष्याश्रिताः श्रीजिनचन्द्रसूरयः ॥ ४ ॥

* मूळ प्रतमां आ अर्धी पंक्ति उपर कोईए हरताळ फांचेली छे

संप्राप्य सिद्धिकारणमादेशं मेरुसुन्दरस्तेषाम्।
कुर्वे बालकबोधं विदग्धमुखमंडनस्य ॥ ५ ॥

शास्त्रारम्भे शास्त्रकारो विशिष्टेष्टदेवतानमस्काररलक्षणं मङ्गलाचरणं करोति। इह तु धर्मदासगणिः विशिष्टेष्टदेवं शौद्धोदनिं स्तुवन् वक्ति। तस्यायमादिश्लोकः।

सिद्धौषधानि भवदुःखमहागदानां
पुण्यात्मनां परमकर्णरसायनानि।
प्रक्षालनैकसलिलानि मनोमलानां
शौद्धोदनेः प्रवचनानि चिरं जयन्ति ॥ १ ॥

शौद्धोदनेर्बौद्धस्य प्रवचनानि चिरं चिरकालं यावत् जयन्ति सर्वोत्कर्षेण वर्तन्ते। शौद्धोदनि बौद्धनां वचन चिरकाल सीम जयवंत वर्त्तइं। किंविशिष्टानि प्रवचनानि। भवदुःखमहागदानां सिद्धौषधानि। भव संसार तणां छइ जे दुःख तेह जि भणित रोग तेह टालिवानइ अर्थि सिद्ध औषध छइ। छ। पुनः किंलक्षणानि वचनानि। पुण्यात्मनां परमकर्णरसायनानि। पुण्यवंतना कर्णनइ विषयि रसायन समान छइ। तथा मनोमलानां प्रक्षालनैकसलिलानि। मनोमल मनना तापक पषालवानइ अर्थि एक सलिल पाणी छइ। छ।

जयन्ति सन्तः सुकृतैकभाजनं परार्थसम्पादनसद्व्रतस्थिताः।
करस्थनीरोपमविश्वदर्शिनो जयन्ति वैदग्ध्यभुवः कवेर्गिरः ॥ २ ॥

संत साधु जयवंत वर्त्तइं। किंविशिष्टाः संतः। सुकृतैकभाजनं। सुकृत पुण्यनूं एक भाजन पात्र छइं। किंविशिष्टाः संतः। परार्थसम्पादनसद्व्रतस्थिताः। पर अनेरानां अर्थसंपादन कार्यकरण तेह जि भणित सद्व्रत तेहनइ विषयि स्थित रह्यां छइं। तथा करस्थनीरोपमविश्वदर्शिनः। कर हस्तनइ विषयि स्थिर रह्यूं छइ जे नीर पाणी तेहनी परिइं अनित्य विश्व देषता छइं। तथा कवेर्गिरः जयन्ति। कवीश्वरनी वाणी जयवंत वर्त्तइं। कथंभूता गिरः। वैदग्ध्यभुवः। वैदग्ध्य चतुरमानी भू उत्पत्तिस्थानक छइ। छ।

आक्रान्तेव महोपलेन मुनिना शप्तेव दुर्वाससा
सातत्यं बत मुद्रितेव जतुना नीतेव मूर्च्छां विषे ।
बद्धेवातनुरज्जुभि परगुणान् वक्तु न शक्ता सती
जिह्वा लोहशलाकया खलमुखे विद्धेव सलक्ष्यते ॥ ३ ॥

जिह्वा परगुणान् वक्तु अशक्ता सती खलमुखे एवंविधा सलक्ष्यते। जीभ पर अनेराना गुण बोलिवा अशक्त हूती दुर्जननइ मुखि एहवी दीसइ। उत्प्रेक्ष्यते। महोपलेन महाद्दपदा आक्रान्ता इव। जाणीइ महात मोटइ पाषाणिइ चापी हुइ जिसी। उत्प्रेक्ष्यते। दुर्वाससा मुनिना शप्ता इव। जाणीइ किरि दुर्वासा ऋषीश्वरिइ शापी हुइ जिसी। बत इति खेदे। सातत्य निरतर जतुना मुद्रिता इव। अनइ बत इसिइ खेदिं। सदाइ लापइ मूद्री हुइ जिसी। तथा विषे मूर्च्छां नीता इव। विषि हालाहलि मूर्च्छा पमाडी हुइ जिसी। उत्प्रेक्ष्यते। अतनुरज्जुभिर्बद्धा इव। जाणीइ निरि मोटे दोरे वाधी हुइ जिसी। उत्प्रेक्ष्यते। लाइशलाकया विद्धा इव। जाणाइ किरि लाहनी शिलाकाइ वाधी हुइ जिसी। छ।

आ बे बालावबोधोमा मूळना श्लोको समजावतां सस्कृत अने गुजरातीनु जे मिश्रण करवामा आव्यु छे ते ए समये शिष्योने आ प्रकारना ग्रन्थो भणाववानी पद्धतिमा सामान्य होवु जोईए जैन आगम ग्रन्थो उपरनी चूर्णिओना गद्यमा केटलीक वार प्राकृत साथे संस्कृतनो सकर जोवा मळे छे ते आ साथे सरखावी शकाय जो के उपर्युक्त बालावबोधोमां सस्कृत अने गुजराती वाक्यो साथोसाथ आवता होवा छता परस्परथी तद्दन अलग छे, कोई पण वाक्य एमा मिश्रभाषामय (Macaronic) भाग्ये ज जोवा मळशे

'षष्टिशतक'ना अन्य बालावबोधो

उपर्युक्त त्रण लेखको-सोमसुन्दरसूरि, जिनसागरसूरि अने मेरुसुन्दर उपाध्याय-कृत बालावबोधो उपरांत 'षष्टिशतक'ना बीजा केटलाक बालावबोध जाणवामा आव्या छे सने १९५०मा मारा विद्यागुरु पू

मुनिजी पुण्यविजयजीना सौजन्यथी मने जेसलमेरनी ज्ञानयात्रा करवानो अवसर मळ्यो त्यारे त्यांना किल्लाना भंडारमां 'षष्टिशतक'ना एक बालावबोधनी २४ पत्रनी पोथी जोवामां आवी हती. एमां कर्तानुं नाम नथी, पण आ ग्रन्थमां समावेला उपर्युक्त त्रणे बालावबोधोथी ते भिन्न छे. षष्ठीना मारु-गुर्जर अनुग 'रहइं' अने 'हूइं'ने स्थाने अहीं मारवाडी प्रत्यय 'रउ' (अर्वाचीन 'रो'), 'री' मळे छे, अने ए त्रणे बालावबोध करतां आती रचना केटलाक दसका पछीथी थई होवानो तर्क थाय छे. लिपि उपरथी पोथी विक्रमना सत्तरमा सैकामां नकल करायेली जणाय छे. आ पुस्तकमां प्रकाशित थयेला बालावबोधो साथे तुलना माटे एनो आदि-अंत अहीं उतारुं छुं.

आदि—

प्रणम्य मारुदेवाह्वं जिनं निर्जितमन्मथम् ।
करोमि षष्टिशतके वार्तां सौख्यावबोधिनीम् ॥
अरिहं देवो सुगुरु सुद्धं धम्मं च पंचनवकारो ।
धन्नाण कयत्थाणं निरंतरं वसइ हिययम्मि ॥ १ ॥

इये गाथानइ विषइ च्यार बोल सारभूत छइ ते कहीइ । किहा ते च्यार बोल । **अरिहं देवो** कहतां अरिहंत देव । **सुगुरु** क० तीर्थंकररी आज्ञाइं करी सहित जे गुरू २ । **सुद्धं धम्मं च** क० सूधउ वीतरागनउ भाष्यउ धर्मइ, **पंचनवकारो** क० पांच परमेष्टिनमस्कार । ए च्यारेइ बोल **धन्नाण** क० जे धन्य भाग्यवंत, **कयत्थाणं** क० कीध्या छइ साध्या छइ जीए अर्थ एहवा जे जीव तियांरइ हीयानइ विषइ **निरंतरं** क० निरंतर सदा सर्वदा ए च्यारेइ बाना **वसइ** क० वसइ ।

हिव त्रि गाहाइ आपणा आत्मानइ सीख कहइ छइ ।

अंत—

इणइ प्रकारइ **भंडारी नेमिचंद** क० नेमिचंद्र भंडारीयइ साजण तणइ पुत्रइ श्रीजिनेश्वरसूरि तणइ पिताइ **रइयाउ** क० नवी जोडी केतली-

एक गाहाउ क० गाथा १६१ प्रमाण। जि के विहिमग्गरया क० वीतराग देवरउ भाष्यउ मार्ग तीयइ मार्गिइ चालिवा सावधानइ हुवा भव्वा क० भव्यजीव ते पढंतु क० भणंतु। जाणंतु क० अर्थ जाणउ जिम सम्यक् प्रकारइ भणतां थकां गुणतां थकां वली मनमाहिं अर्थ भावतां थकां अहो जीवो तुम्हे जंतु सिवं शाश्वता अनंतो मोष्यरा सुख पामउ ॥ १६१ ॥

इति श्रीनेमिचन्द्रभंडारिकविरचितषष्टिशतकप्रकरणस्य बालावबोध समाप्त ॥ शुभं भवतु ॥

आ उपरांत जेसल्मेर अने बीकानेरना प्राचीन ग्रन्थभंडारोमां 'षष्टिशतक' उपरना केटलाक स्तबक (टबा) पण जोवामां आवे छे. क्षमारत्नना शिष्य धर्मदेवे सं. १५१५मां रचेला बालावबोधनी तथा जयसोमकृत स्तबकनी नोंध मळे छे,* पण ए कृतिओनी हाथप्रतो मारा जोवामां आवी नथी. प्रायः विक्रमना १९मा शतकमां थयेला मोहनकृत 'षष्टिशतक'नो दूहामय अनुवाद जैन सत्यविजय ग्रन्थमाळाना 'षष्टिशतक'ना संस्करण साथे बहार पडेलो छे.

हाथप्रतो अने संपादन

आ ग्रन्थना संपादनमां कुल चार हस्तलिखित प्रतोनो उपयोग करवामां आव्यो छे. एमां सोमसुन्दरसूरिना बालावबोधनी प्रतो बे छे, ज्यारे जिनसागरसूरि तथा मेरुसुन्दरना बालावबोधनी एक-एक प्रत छे. प्रत्येक प्रतमां बालावबोध उपरांत मूल प्राकृत 'षष्टिशतक'नो पण ते

* 'जिनरत्नकोश,' पृ. ४०४. 'मंत्रीकर्मचन्द्रवंशावलीप्रबन्ध'ना कर्ता खरतरगच्छीय जयसोम विक्रमना १७मा शतकमां थई गया तथा छ कर्मग्रन्थो उपर बालावबोध (सं. १७१६) रचनार तपागच्छीय जयसोम-शिष्य जयसोम १८मा शतकमां थई गया. परन्तु ए बेमांथी कया जयसोमे आ स्तबक रच्यो छे ते 'जिनरत्नकोश'मां जे टूंकी नोंध छे ते उपरथी कही शकाय नहि.

ते बालावबोधकारने संमत एवो पाठ आपेलो छे. आ चारे हस्तलिखित प्रतो पाटणना प्रसिद्ध श्रीहेमचन्द्राचार्य ज्ञानमन्दिरमां राखवामां आवेला संघना भंडारनी छे. बधी ज प्रतो जैन धाटीनी देवनागरी लिपिमां लखायेल छे.

(१) सोमसुन्दरसूरिना बालावबोधनी बे प्रतो पैकी पहेली प्रतनो अनुक्रमांक १३४९ छे. एनुं कद १०॥"×४॥" छे अने पत्र २५ छे. प्रत्येक पृष्ठ उपर नियमित रीते १५ पंक्तिओ लखायेली छे. आ प्रतिनी नकल सं. १५१३मां थयेली छे.

(२) सोमसुन्दरसूरिना बालावबोधनी बीजी प्रतनो अनुक्रमांक १३५० छे. एनुं कद १०॥"×४॥" छे अने पत्र ४२ छे. जो के एनुं १२मुं पत्र मळतुं नथी. प्रत्येक पृष्ठ उपर ११ पंक्ति लखेली छे. आ प्रतिमां नकल कर्यानुं वर्ष नथी, पण लिपि उपरथी ते सोळमा सैकानी लागे छे. आ प्रत पहेलीनी तुलनाए अशुद्ध छे. मूळ प्रतीक वांचीने लखवामां पण लहियानी घणी भूलो थयेली छे. जेम के—चतुर्थी अने छठ्ठी विभक्तिनो अर्थ व्यक्त करता '°हूइ'ने स्थाने तेणे सर्वत्र 'हुइं' लख्युं छे. केटलीक वार तो आखी पंक्तिओ लहियाना प्रमादने लीधे पडी गयेली छे, जेनो यथास्थान निर्देश कर्यो छे.

(३) जिनसागरसूरिना बालावबोधनी प्रतनो अनुक्रमांक १०१५ छे. एनुं कद १२"×४॥" छे अने पत्र १४ छे. मात्र पहेला पृष्ठ उपर १० पंक्ति लखेली छे, बाकीनां बधां पृष्ठ उपर १९ पंक्तिओ छे. 'षष्टिशतक'नो बालावबोध आ पोथीमां १२मा पत्रना पहेला पृष्ठ उपर पहेली पंक्तिमां पूरो थाय छे; ए पछी पोथीना अंतभाग सुधी 'गौतमपृच्छा'नो बालावबोध लखायेलो छे, जेमां कर्तानुं नाम नथी. आ प्रतिमां लिपिनो मरोड घणो सुन्दर छे.

लेखनवर्ष नथी, पण लिपि उपरथी प्रति सोळमा शतकमां लखायेली जणाय छे.

(४) मेरुसुन्दर उपाध्यायना बालावबोधनी प्रतनो अनुक्रमांक ३८८२ छे. एनुं कद १०॥"×४॥" अने पत्र १६ छे. प्रत्येक पृष्ठ उपर १५ पंक्तिओ लखेली छे. प्रति शुद्ध छे. लेखनवर्ष नथी, परन्तु लिपि उपरथी ते पण सोळमा सैकामां लखायेली जणाय छे.

आम सोमसुन्दरसूरिकृत बालावबोधनी ज बे प्रतो होवाथी ए ज बालावबोधनां पाठान्तरो नोंधी शकायां छे. एमां सं. १५१३ वाळी प्रतने मुख्य प्रत तरीके स्वीकारी छे अने बीजी प्रतना पाठभेदो टिप्पणमां टांक्या छे. पण 'धरीइ-धरीइं,' 'अनइ-अनइं,' 'तीणइ-तीणइं,' 'विषइ-विषइं,' ए प्रकारना पाठभेदो के जे जूनी गुजरातीमां बहु विपुल छे ते नोंध्या नथी.

'षष्टिशतक'नी मूल प्राकृत गाथानी बालावबोधकारोए करेली प्रस्तावना, पछी मूळ गाथा तथा ते पछी अनुक्रमे त्रण बालावबोधो ए प्रमाणेनो क्रम मुद्रणमां राखेलो छे. एमां **[सो.]**, **[जि.]** अने **[मे.]** ए संक्षेपो वडे अनुक्रमे सोमसुन्दर, जिनसागर अने मेरुसुन्दर ए त्रण बालावबोधकारो समजवाना छे.

'षष्टिशतक'नी मूल गाथाओनो पाठ पण सं. १५१३ वाळी प्रत प्रमाणे स्वीकारीने बीजी प्रतमां क्वचित् मळता अन्य पाठो नोंध्या छे. एमां पण 'एअं-एयं,' 'सअल-सयल,' जेवा पाठो जेमां उद्वृत्त स्वरनो लघुप्रयत्न 'य'कार थई जाय छे ए नोंध्या नथी. सोमसुन्दरसूरिना *बालावबोधनी आ बीजी प्रतनो निर्देश क्यां तो बीगतथी अथवा* **'सो.'** एम संक्षेपथी टिप्पणमां कर्यो छे. मूळ गाथाओनां पाठान्तरो जिनसागरसूरि अने मेरुसुन्दरमां क्वचित् मळे छे त्यां एमनो उल्लेख **'जि.'**

तथा '**मे.**' ए प्रमाणेना संक्षेपना निर्देशपूर्वक कर्यो छे. बालावबोधकारोए आपेलां अवतरणोनां मूळ स्थानो ज्यां खोळी शकायां छे त्यां तेमनो निर्देश कौंसमां कर्यो छे.

श्रीहेमचन्द्राचार्य ज्ञानमन्दिरनी आ बधी हाथप्रतो उपयोग माटे मेळवी आपवा माटे पू. मुनिश्री पुण्यविजयजीनो तथा ज्ञानमन्दिरना व्यवस्थापकोनो हुं उपकार मानुं छुं.

परिशिष्टो—अगाउ कह्युं छे ते प्रमाणे, नेमिचन्द्र भंडारीनी बे कृतिओ आ ग्रन्थना परिशिष्ट तरीके लेवामां आवी छे—एक छे उत्तरकालीन अपभ्रंशमां रचायेलुं 'जिनवल्लभसूरि गुरुगुणवर्णन' अने बीजी छे प्राकृत 'पार्श्वनाथ स्तोत्र.'

(१) 'जिनवल्लभसूरि गुरुगुणवर्णन' जेसलमेरना बडा भंडारमांनी बे पानानी प्रतमांथी मळ्युं छे. ए बे पत्र उपर पत्रांक ८९-९० लख्या छे, तेथी अनुमान थाय छे के ते कोई सळंग मोटी हाथप्रतनो अंश छे. ९० अंकवाळा पत्रना बीजा पृष्ठनो अर्धा करतां वधारे भाग कोरो छे, तेथी लागे छे के मूळ सळंग पोथीनुं आ छेल्लुं पत्र हशे. लिपि उपरथी प्रति पंदरमा सैकामां लखायेली जणाय छे. एनी पुष्पिकामां खरतरगच्छना जे आचार्योनां नाम आप्यां छे एमां छेल्लुं नाम सागरचन्द्रसूरिनुं छे, तेथी ए आचार्यना जीवनकाळमां एनी नकल थई हशे एवो स्वाभाविक तर्क थाय छे. सागरचन्द्रसूरिनुं अवसान सं. १४६१मां थयुं हतुं ('खरतरगच्छ पट्टावलीसंग्रह,' पृ. ३२), एटले एनाथी थोडां वर्ष पहेलां प्रति लखाई हशे.

श्री. अगरचंद नाहटासंपादित 'ऐतिहासिक जैन काव्यसंग्रह' (पृ. ३६९-७२)मां आ काव्य छपायुं छे. जो के एमां उपयोगमां लेवायेली प्रति करतां जेसलमेरवाळी प्रति निःशंकपणे जूनी छे. श्री. नाहटानी वाचनानां पाठान्तरो टिप्पणमां नोंध्यां छे.

(२) नेमिचन्द्र भंडारीकृत 'पार्श्वनाथ स्तोत्र' अहीं प्रथम वा प्रसिद्ध थाय छे. गुजरात विद्यासभा (अमदावाद)ना हस्तलिखि पुस्तकसग्रहमां एक प्राचीन जैन सग्रहपोथीनां ३६१ थी ३९४ सुधीनां पत्र छे, जेमा प्रकीर्ण संस्कृत प्राकृत स्तोत्रादि लखेलां छे. एमां पत्र ३७८-७९ उपर आ 'पार्श्वनाथ स्तोत्र' छे.

आ पोथीना पत्र ३९४ उपर 'महावीर स्तुति'नी नकल पूरी थाय छे तेने अते नीचे प्रमाणे पुष्पिका छे—

श्रीमहावीरस्तुतिः। कृतिरियं श्रीदेवमूर्त्युपाध्यायाना सवत् १३८७ वर्षे कार्तिक शुदि १० सोमवारे....मसापुरे श्रीजिनप्रबोधसूरिशिष्येण आनन्द-मूर्त्तिना लिखित ॥

'पार्श्वनाथ स्तोत्र' तो आनी पहेलां, पत्र ३७८-७९ उपर, लखायेलुं छे, एटले एनी नकल पण स. १३८७ना कारतक सुद १० पहेलां क्यारेक थयेली होनी जोईए.

त्रणे बालावबोधो तथा 'जिनवल्लभसूरि गुरुगुणवर्णन'मांना नोंध-पात्र शब्दोनो कोश पुस्तकने अते उमेर्यो छे. वडोदरा विश्वविद्यालयना गुजराती विभागना श्री. इन्द्रवदन अबालाल दवे, एम. ए. एमणे शब्दकोश तैयार करवामा केटलीक सहाय करी हती ए वस्तुनी अहीं साभार नोंध लेवामा आवे छे.

अनुलेख

प्रस्तावनानां पृ. २०-२२ना बीबां गोठवाई गया पछी, उंझाना महाजनना हस्तलिखित पुस्तकभंडारमांथी, पू. मुनिश्री पुण्यविजयजीना सौजन्यथी 'विदग्धमुखमंडन'ना मेरुसुन्दर उपाध्यायकृत बालावबोधनी सं. १६७२ मां नकल थयेली एक संपूर्ण प्रति मळी छे. जोधपुरवाळी

प्रति अपूर्ण होवाथी एमांथी आ कृतिनो अंतभाग मळतो नहोतो, ते आमांथी मळे छे. ऊंझानी प्रति अनुसार, आ बालावबोधनो अंतभाग नीचे प्रमाणे छे—

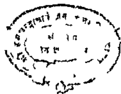
सदागतीत्यादि* । अयं दीनः अस्तं एष्यति । ए दीप अस्त पामिसिइ । कीदृशः । सदागतिहतोच्छ्रायः सदा नित्यमेव गति गमनि करी हत हणिउ उच्छ्राय उद्यम छइ । तमसः वश्यता । तमहूइं वश्यपणूं छइ । विधुरेकः शिवस्थितः । विधुर विह्वल तां कुण शिवस्थित कल्याणवंत ते । अपि तु नही को । द्वि० । अयं दीपः अस्तं एष्यति । ए दीप अस्त पामिसिइ । कीदृशः । सदागतिहतोच्छ्रायः । सदागति वायुइ हत हणिउ उच्छ्राय छइ । तमसो वश्यतां गतः । तम अंधारहूइं वश्यतां पामिउ छइ । एको विधुः शिवस्थितः । एक विधु चंद्रमा शिव श्रीमहादेवनइ विषयि स्थित छइ ॥ छ ॥ ६९ ॥

पूर्णचन्द्रेत्यादि । निर्मलांबरा कामिनी कस्य स्वांतं मनः एकान्तमदनोत्तरं न करोति । अपि तु सर्वस्यापि करोति । निर्मल अंबर वस्त्र इसीं कामिनी स्त्री काहिंनूं स्वांत मन एकांति मदनोत्तर मदनाधिक्य न करइ । अपि तु सविहुनूं करइ । कीदृशी । पूर्णचंद्रमुखी । पूर्णिमाना चंद्रमावत् मुख छइ । रम्या मनोहरा द्वि० यामिनी रात्रिः कस्य स्वान्तं एकान्तमदनोत्तरं न करोति । अपि तु सर्वस्यापि करोति । कीदृशी । पूर्णचन्द्रमुखी । संपूर्णचंद्र जि भणित मुख छइ । रम्या रमणीया निर्मलांबरा । निर्मल अंबर आकाश छइ ॥ छ ॥ ७० च्युतदत्ताक्षरजाति ॥ छ ॥

इति श्रीधर्मदासविरचितविदग्धमुखमंडनकाव्यस्य वृत्तिरियं समाप्ता । ग्रंथाग्रं १४९४ संवत् १६७२ वर्षे ।

---

* ऊंझानी हाथप्रतमां मूलना आखा श्लोको नहि आपतां आ प्रमाणे केवळ मूलनां प्रतीको ग्रंथ्यां छे.



सोमसुन्दरसूरिकृत [illegible] सं. १५१३मां लखायेली हस्तप्रतनुं अंतिम पत्र

तथा हि। **श्रीखरतरगच्छि श्रीजिनेश्वरसूरिनइ** पिताः **श्रीनेमिचन्द्र भंडारी** श्रावकि विधिपक्षस्थापक ए साठिमउ ग्रन्थ कीधउ। तिहा धुरि सर्व विघ्नोपशान्त्यर्थं इष्टदेवतानमस्काररूप नाम ग्रहणपूर्वक सम्यक्त्वस्थापक ग्रन्थकार प्रथम गाथा कहइ छइ ॥

[मे.] सयलसुरासुरनमियं पासजिणं पणमिऊण भावेणं ।
बालाण बोहणत्थं पयडं विवरेमि **सट्ठिसयं** ॥ १ ॥

इहां **श्रीखरतरगच्छि** निरुपमगुणनिधान **श्रीजिनवल्लभसूरि**नइ पाटि **श्रीजिनदत्तसूरि**। तेहनइ पाटि **श्रीजिनचन्द्रसूरि**। तत्पट्टालंकार **श्रीजिनपत्तिसूरि श्रीपत्तन**नगरमाहि विजयवंत वर्त्तइं। इसइ प्रस्तावि **मरुदेशमंडन मरोटि** नगरि **श्रीनेमिचन्द्र भंडारी** भार्या **रूपमिणि** पुत्र **आंबड** सहित सुखिइं वसइं। अन्यदा प्रस्तावि गाथा १ **नेमिचन्द्र भंडारीइ** व्याख्यान माहि साभलि। ति किसी।

अक्खंडियचारित्तो वयगहणाउ जो भवे निच्चं ।
तस्स सगासे दंसण वयगहणं सोहिगहणं च ॥ १ ॥

ए गाथा सामलीनइ आलोअणनी इच्छाइ बार वरस सीम-सुगुरुनी परीक्षा जोअतउ २ **पत्तन** नगरि आव्यउ। सगली पोसालइं द्रव्य क्षेत्र काल भावनइ मेलि सुगुरु अणलहतउ मनमाहि चिन्ता धरतउ हाट एकनइ थडइ वइठउ छइ। इसइ प्रस्तावि श्रावक पाच-सात **श्रीजिनपत्तिसूरि**ना गुण वर्णवता सामली पूछ्या। तुम्हे केहना गुण कहउ छउ ? तेहे **श्रीजिनपत्तिसूरि**ना गुण कह्या। पछइ तींह श्रावकां सघाति पोसालइं आवी गुरुनी देसना सामली। गुरुना लक्षण ईर्यासमिति प्रमुख जोअतउ रात्रिइं पोसालनइ खूणइ सूतउ २ चींतवइ। एतां दिवसमाहि प्रमादनउं कारणु न दीठउं। रात्रि तउ पउंजना जइणाइं दीइइं छइं। सिध्याइं ध्यान करइं छइं। वणि वार २ महातमा हूंढीमाहि

जाइ। तिहां कांइ कारण संभावीइ। पछइ पाछिली रात्रिनी पोरसिइं तेहमाहि पइसी राप वेल्ह तेल देषी। थोडी थोडी वस्तु गांठि बांधी सूतउ। प्रभाति पोसाल बाहिरि जई जउ जोअइ तउ वेल्ह राप तेल दीठा। विस्मय ऊपनइ भोलउ चेलउ पूछिउ। ए सिइ काजि आवइ? चेलइ सर्व वात कही। वेल्ह वर्त्तिवानइ काजि। रक्षा जीवजइणानइ काजि। तेल लेपनइ काजि। इम संदेह भागउ। पच्छइ प्रगट हुइं सिद्धांततत्त्व सांभली श्रीसम्यक्त्वमूल बार व्रत पडिवजी **मरोठि** पाछउ आवी जान करी **आंचड** पुत्रनइं साथि लेई गुरु समीपि आवी महामहोत्सवपूर्वक पुत्रनइं दीक्षादि वरावी। ते क्रमिइं २ भणतां गुणतां चारित्र पालतां **श्रीजिनेश्वरसूरि** हूया। पछइ **नेमिचन्द्र भंडारीइं श्रीजिनपत्तिसूरि**नी रीति देषी। **श्रीजिनवल्लभसूरि**ना कीधा **पिंडविशुद्धि**प्रमुख ग्रन्थ सांभली ते गुरुनां वचन सर्व सिद्धान्तनइं मिलतां जाणी आस्था ऊपनी। सम्यक्त्वनी दृढतानइ काजि परोपकार भणी साठिसउ गाथारूप ग्रन्थु कीधउ। हिव ते गाथा लोकनइं समझाविवा भणी **श्रीजिनचन्द्रसूरि**नइ आदेसि **वणारीसि मेरुसुन्दर**गणिइं वार्त्ता बालावबोध संक्षेपिं कीजइ। तिहां धुरि च्यारि बोल सारभूत कहीइं॥

अरिहं देवो सुगुरु सुद्धं धम्मं च पंचनवकारो।
धन्नाण कयत्थाणं निरंतरं वसइ हिययम्मि॥ १॥

[सो.] एक श्रीअरिहंत वीतरागदेव[1] बीजा सुगुरु शुद्ध चारित्रिया शुद्धमार्गप्ररूपक गुरु[2] त्रीजउ शुद्ध धर्म जीवदयामूल कर्मक्षयहेतु धर्म चउथउ पंचपरमेष्ठिनमस्कार सर्व सिद्धांतमाहि सार सर्वपापक्षयंकर महामंत्र नउकार। ए च्यारि बोल सर्व जगत्[3] अनइ सर्व धर्ममाहि सार कुणह एक धन्य उत्तम भव्य अनइ कृतार्थ भाग्यवंत

१ °देवा. २ गरु. ३ जग.

आसन्नसिद्धि कइजिनइ हियइ निरंतर सदैव वसइ । अभागीआ अभव्य दूरभव्य जीव ए एकइ बोल न प्रामइं ॥ १ ॥

[जि.] समस्त धर्ममाहे मूलिगउ सम्यक्त्व धर्म तिणि कारणि सम्यक्त्व जाणावइ । अरिहंत देव ते किसु । राग द्वेष मोह मद मत्सर अहंकार प्रमुख दोष जेह माहे न हुइं । अंतरंग वइरी जिणि जीता हण्या ते अरहंत कहीइ । अनइ सुगुरु सुसाधु गुरु जे नीराग निःस्पृह क्षमावंत शान्त दान्त जितेंद्रिय निःकाम तपि करी दुर्बल । सम तृण मणि लोष्टु कांचन । सम शत्रु मित्र । साचउ धर्माक्षरनउ कहणहार । चातुर्गतिक संसार हूंतउ अहर्निश संजम चारित्र अभिग्रह पालइ । ते सुगुरु कहीइ । तथा चोक्तं ।

अक्खरु अक्खइ कंपि न ईहइ । चउगइ भवसंसारह बीहइ ।
संजम नियमह खणि नवि चूकइ । ए साधम्मिय सुहगुरु वुचइ ॥ १ ॥

सुद्धं धम्मं । जीवदयामूल धर्म । तथा चोक्तं ।

दुःखं पापात् सुखं धर्मात् सर्वदर्शनसंमतम् ।
न कर्त्तव्यमतः पापं कर्त्तव्यो धर्मसङ्ग्रहः ॥ २ ॥

ए त्रिहुं मिली सम्यक्त्व कहीइ । अनइ वली नउकारहूइं मोटाइ देखालिवा भणी **पंच नवकारो** पंचपरमेष्ठिनमस्कार चउद पूर्वनउं सार कहीइ । ए च्यारइ अरहंत सुसाधु गुरु जिनप्रणीत धर्मरूप सम्यक्त्व अनइ नउकार । **कयत्थाणं** कृतार्थ कृतकृत्य **धन्नाणं** धन्य भाग्यवंत पुरुषने हिय वसइ । **निरंतर** सदैव ॥ १ ॥

[मे.] अरिहंत देव सुसाधु गुरु अनइ सूधउं वीतरागनउं भाषिउं धर्म पंचपरमेष्टि नवकार ए च्यारि बोल धन्य भाग्यवंत कृतार्थ कीधा अर्थ संसार संबंधीया जेहे तींहनइ हीइ सदाइ वसइ । पणि बहुल संसारी जीवनइ हीइ कांई वसइ नहीं ॥ १ ॥

[सो.] हिव जे जीव घणु धर्म्म करी न सकइं तेहनइ तत्त्व कहीइ[1] छइ।

[जि.] सम्यक्त्वनइं सुखाराध्यपणउं कहइ।

[मे.] हिव आत्मानइं सीष कहइ।

जइ न कुणसि तवचरणं न पढसि न गुणेसि देसि नो दाणं।
ता इत्तियं न सक्कसि जं देवो इक्क[2] अरिहंतो[3] ॥२॥

[सो.] रे जीव! जिम आगइ वरसी छमासी मासक्षपण आचाम्लादिक तप करता। केई हवडाइं करइं छइं। ते तउं करी न सकइं तउ म करेसि। जिम एकि अनेक आंग पूर्व प्रमुख सिद्धांत पठता गुणता हिवडाइं पढइ छइ। ते जउ पढी न सकअं[4] तउ म पढेसि। जिम आगइ चउद पूर्व प्रमुख अग्यार आंग[5] बिहु घडी-माहि पाधरां उपराठां गुणता हवडाइं अनेकि कोडि लाख आखा गणइं छइं। तिम[6] जउ गुणी न सकअं तउ म गुणेसि। जिम आगइ सांवत्सरिक[7] दान साढवार कोडि सुवर्णादिकनां दान देता हवडाइ[8] शक्तिमानिइं दिइं छइं तिम जउ दान देई न सकअं तउ म देसि। **ता इत्तियं॰** पुण तउं एतलउं करी न सकइं?[9]। **जं देवो॰** जं देव एक अरिहंत वीतराग इति[10] बीजउ नहीं[11] ॥ २ ॥

[जि.] अहो पुरुष! जइ **तवचरणं** तपश्चरण न करइं। नवउ काई भणइ नहीं। आगिलउं भणिउं गुणइ नहीं। दानईं न दिइं। *एतलां तपश्चरण भणिवउं गुणिवउं दान देवउं दुःसाध्य छइ।* ता तउ

१ कही. २ मे. इक्कु. ३ जि. अरहंतो. ४ सकइं. ५ आंगु. ६ तेम. ७ संवच्छरिक. ८ हेवडाइं. ९ सकअं. १० नीतरागइ जि. ११ बीजी प्रतमां आटलुं वधारे छे—जउ एतलउ देवत्वइनउ मनि निश्चउ आणअं तउ ताहरउं काज सरइ। ए सम्यक्त्वनउं मूल बीज दसिउ भाव।

इत्तियं एतलउं न सघइं जउ माहरउ एकु जि अरहंत देव। बीजउ नही। इणि कारणि सम्यक्त्व पाल्नां सुहेलउं ॥ २ ॥

[मे.] अहो जीव! जउ तउं वरसी छमासी प्रमुख तपु करी न सकइं। काल्नइ अनुसारि सूधउं चारित्र पाली न सकइं। सिद्धात-प्रकरणप्रमुख पाठ जउ पढी न सकइं। जइ तउं आगम गुणी न सकइं। दान सुपात्र विषइ देइ न सकइं। तउ तउं एतूंअइ करी न सकइ जि देवु तउ एक अरिहंतइ जि। बीजा हरिहरादिक नही ॥ २ ॥

[सो.] को कहिसिइ इहलोकना सुखनइ काजि बीजा देव आराधीइं छइं। तेह आश्री कहइ छइ।

[जि.] इसुं कही जिनधर्मना करणहारहूई गुण कहइ छइ।

[मे.] काइ ते कहइ।

रे जीव! भवदुहाइं इक्कं चिअ हरइ जिणमयं धम्मं।
इयराणं पणमंतो सुहकज्जे मूढ! मुसिओ सि ॥ ३ ॥

[सो.] रे जीव! जिन वीतरागनउ धर्म्म एकलउ जि एकाग्र-मनि आराधीतउ हुतउ भवसंसारना दुःख फेडइ। सर्व सुख करइं निश्चइं। **इयराणं** इहलोकना सुखनइं काजिइं इतर देव रागद्वेषाद्याक्रान्त[1] क्षेत्रपाल वाराही प्रमुखहूई नमतउ अनेक उपायना[2] मानतउ **रे मूढ!** मूर्ख! मुसीअं छअ[3]। तेहे कर्म ऊपहरउं काई कराइ नही। मुहिया धर्म चूकअ[4] छअं ॥ ३ ॥

[जि.] रे जीव! एकु जि जिनमत जिनभाषित धर्म्म **भव-दुहाइं** ससारना दुःख **हरइ** स्फेडइ! तिणि कारणि हे **मूढ!**

---

१ रागद्वेषाद्याक्रान्ता. २ अनेक मउयाना ३ छअ मुहिआ ४ चूकउ.

मूर्ष ! अनेरा देवहूइं प्रणमतउ हूंतउ मुसिउ छइं। सम्यक्त्वरूपिउ धन तेहना हारवइतउ ॥ ३॥

[मे.] रे जीव ! एकल्लु अ जि जिनमत जिनभाषित धर्म्म आराधतां हूंतां **भव** संसारना दुक्खनइं फेडइ। अनइ इतर हरिहरादिकनइं प्रणमतां थोडा सुखनइ काजि **मूढ !** मूर्ख ! मुसाणउ छइ। धर्म्म हूंतउ चूकइ छइ ॥ ३ ॥

[जि.] जिनधर्मनउ प्रभाव कही सम्यक्त्ववंतहूइं मोक्षपद-प्राप्ति बोलइ छइ।

देवेहिं दाणवेहिं य खुओ न[1] मरणाओ रक्खिओ कोइ।
दढकयजिणसंमत्ता बहुअ वि अयरामरं पत्ता ॥ ४ ॥

[सो.] देवदानवे जाप शेष क्षेत्रपाल आसपाल गोगा विणायग चामुंडादिके को मरणतउ राखिउ किहांइं न सांभलिउ। तेहे को मरणतउ न रखाइं[2]। निकाचित कर्म कुणइं टाली न सकीइं[3]। जउ एहे की मरणतउ[4] राखिउ हुइ तउ को[5] किहांइं जीवतउ देखीइ। पुण नथी। घणाइ देवदेवता आराधी जमारउ सघलउ मिथ्यात्वनां सइ[6] करीनइ मूआइ जि। आघाइं घणा संसारना जन्ममरण जि उपार्जियां। **दढकय०** दृढ वीतरागनउं सम्यक्त्व पालीनइ **बहु०** घणाइ अनंता[7] जीव अजरामरपणइ पहुता। मोक्ष पाम्या[8]। जन्मजरामरणरहित[9] हूया ॥ ४ ॥

[जि.] देवे दानवे पुण कोई लोक मरण हूंतउ राखिउ सांभलिउ ? अपि तु कोई न सांभलिउ। कोई अमर हूतउ सांभलिउ ? दृष्टीकृत

---

१ बीजी प्रतोमां नथी. २ रक्खइं. ३ सकाइं. ४ मरतउ. ५ कोहि. ६ सइं. ७ अनंता ज. ८ प्राम्या. ९ °मरणा°.

जिनसम्यक्त्व हुइं ते घणाई अजरामरपद पाम्या। एतलइ सम्यक्त्व-धारक सघलाई अमर हुइं ॥ ४ ॥

[मे.] देव दानव गोत्रज क्षेत्रपालप्रमुखे किहांई सांमलिउ जे मरणतउ कोई रापिउ ? अपि तु को रापिउ नहीं। पणि दृढ कीधउं जिन ऊपरि सूधउं मन, सम्यक्त्व खरउं जे जीवे पालिउं ते जीव घणा अजरामरपदि मोक्षपदि पहुता ॥ ४ ॥

[जि.] हिव सम्यक्त्वनउं प्रमाण कही मिथ्यात्वनउं प्रमाण कहइ छइ।

जह कुवि वेसारत्तो मुसिज्जमाणो वि मन्नए हरिसं।
तह मिच्छवेसमुसिया गयं पि न मुणंति धम्मनिहिं ॥५॥

[सो.] जिम कोएक मूर्ख वेश्या अधम निस्नेह स्त्री तेहनइ व्यसनि वाहिउ तेहहूइं आपणी लक्ष्मी पूरतउ पोतउ[1] हारतउइ मुसितउइ तुच्छ सुखनइं लोभिइं हर्ष मानइं तिम ए अजाणी[2] जीव कूडउ धर्म मिथ्यात्व तेह[3] वेश्या तुच्छ मोहनइं कीधइं इहलोकना चमत्कारमात्रना वाहिया हुंता धर्मरूपिउं निधान गिउं जाणइ नहीं। मूर्ख इसिउं न जाणइ ईणइ मिथ्यात्वे[4] करी अम्हारउ सघलउ धर्म जाइ छइ। परलोकि अम्हे दुखिया थासिउं[5] ॥ ५ ॥

[जि.] जिम कोई वेश्यासक्त पुरुष वेश्याइं मुसीतई हूंतउ हर्ष मानइ तिम मिथ्यात्वरूप वेश्याइं मुस्या हूंता धर्मरूपिउं निधान गिउंई न जाणइं ॥ ५ ॥

[मे.] जिम कोई वेश्यानइ विषइ अनुरक्त रातउ थोडास्या

---

१ पोतउई. २ अजाण. ३ तेहरूपिणी. ४ मिथ्यात्विं. ५ थासिउं.

विषयनइ काजि धनादिक मुसीतउ हर्ष मानइ तिम मिथ्यात्वरूपिणी वेश्याइं मुसीतउ जीव धर्मरूपीउं निधान गयउं न जाणइ ॥५॥

[सो.] को इसिउं कहिसइ[1]। आपणइ वडांनइं कुलाचारि चालीइ। एतलउ[2] धर्म। बीजउ विचार कांई न कीजइ। तेह[3] आश्री कहइ छइ।

[जि.] कुलक्रमागत भावइ तिसु धर्म न करिवउं। ए वात प्रकासइ छइ।

लोअपवाहे सकुलक्कमम्मि जइ होइ मूढ धम्मु त्ति[4]।
ता मिच्छाण वि धम्मो थक्का य अहम्मपरिवाडी ॥६॥

[सो.] रे मूढ! जउ लोकनइ प्रवाहि आपणइ २ कुलाचारि चालतां धर्म हुइ तउ कुणएक धर्मवंत नहीं? सघलाइ खाटकी, माछी, वेश्या, घांची, मोची, ठठार प्रमुख सहू आपणइ २ कुलाचारि चालइं छइं। आगिला वडा पूर्वज जे काम करता ते पाछिला[5] करइं छइं। **ता मिच्छाण वि धम्मो॰** तउ जे पापी हिंसाना करणहार कुमार्गना चालणहार म्लेच्छ तेहहूइं धर्म हूउ। तेहइ धर्मवंत हूआ। **थक्का॰** अधर्म पापनी परिपाटी परंपरानी वातइ नाठी। अधर्म किहांइं छइ नही। सहू धर्मवंतइ जि हूउं। एतलइ इसिउ भाव। कुलाचार जूउ। धर्मनउ मार्ग जूउ। कुलाचार किहनउ केतलउ पुण्यमय हुइ। किहनउ पापमय हुइ। पुण्य धर्मनउ आचार जिहां जीवदया सत्यवचन ब्रह्मचर्यादिक गुण तिहां जि छइ। अनेथि नथी। केती वारइं पूर्वज दालिद्री हुसिइ[6] तउ संतानीइ किसिउं लक्ष्मी आवती न लेवी? अथवा को पूर्वज कूअइ पडी मूउ हुसइ तउ संतानीअइं किसिउं कूअइ पडी

---

१ कहिसिइ. २ एतलइं. ३ ते. ४ जि. धम्म त्ति. ५ पाछिलाइं. ६ हुइ.

मरिवउं [?] एह भणी कुलाचारनउ काइ नहीं। सूधउ धर्म जि जाण हूंतइ लेवउ ॥ ६ ॥

[जि.] लोकनइ प्रवाहि करी आपणइ कुलक्रमि हे मूढ! धर्म इसिउं जइ हुइ तउ पछइ **मिच्छाण वि** म्लेच्छनउ धर्म। **अहम्म-परिवाडी** अधर्मनी परिपाटी श्रेणि थाकी रही ॥ ६ ॥

[मे.] रे मूर्ख! लोकप्रवाहि आपणा २ कुलनइ आचारि चालतां जउ धर्म्मु हुइ तउ म्लेच्छ खाटकी वेश्या ते सहू आपणइ २ कुलाचारि चालइ छइ। तउ तेहनइ धर्म्म होसिइ। एतइ अधर्म्मनी परंपरा नाठी। अधर्म्म किहाइं नथी। सहू धर्म्मवंतइ जि हूउं ॥ ६ ॥

[जि.] दृष्टान्तनइ बलि करी धर्म्महूइं मोटाई देखालइ।

लोयम्मि रायनीईनायं न कुलक्कमम्मि कइया वि।
किं पुण तिलोअपहुणो जिणंद[1]धम्माहिगारम्मि[2] ॥७॥

[सो.] लोकइ माहि राजनीतिनउ न्याय कुलक्रम माहि नावइं। राजनीतिनउ मार्ग जूउ। कुलाचार जूउ। तउ पाधरी राजनीति माहि कुलाचार न जोइइं। तिहां राजाज्ञाइ जि जोवी। **किं पुण०** त्रैलोक्य[3] त्रिभुवनना प्रभु ठाकुर[4] श्रीजिनेन्द्र वीतरागना धर्मनइ अधिकारि कुलाचार न[5] जोइइं। तिहां सर्वथा जोवा न आवइं। तिहां खरी वीतरागनी आज्ञाइ जि लेईनइ धर्म करिवउ। इसिउ भाव ॥ ७ ॥

[जि.] लोकइ माहि राजनीति मोटी। **नायं** ज्ञातं दृष्टान्त। कुलक्रमि **कइया वि** किवारइं नीति न्यायमार्ग प्रमाण नहीं। एतलइ राजनीति जिम प्रमाण तिम जिनधर्म जि प्रमाण। जइ लोकइ माहे इसु छइ तउ त्रैलोक्यनउ स्वामी श्रीजिनेन्द्र तेहनउ धर्मनइ अधिकारि

---

१ जिणिंद°. २ मे. °धम्माहियारम्मि. ३ तउ त्रैलोक्य. ४ ठाकुर. ५ किम

किसुं कहिवउं ? जिम राजा ति आगलि सामान्य लोकनउ न्यायमार्ग प्रमाण नहीं तिम जिनधर्म आगलि कुलक्रमागत अनेरा धर्म प्रमाण नहीं ॥ ७ ॥

[मे.] लोकमाहि राजनीतिनउ न्याय कुलक्रम माहि कहीइ नावइ। काइं बेवइ मार्ग्ग जूआ । तउ पछइ त्रैलोक्यनउ प्रभु ठाकुर जिनेन्द्र तेहना धर्मनइ अधिकारि कहिवउं किसउं ? ॥ ७ ॥

[सो.] जीवहूइ संसार ऊपरि वैराग्य आवता दुहिलउ छइ । ए वात कहइ छइ ।

[जि.] वली जिनधर्मनी मोटाई प्रकासइ ।

जिणवयणवियन्नूण वि जीवाणं जं न होइ भवविरई ।
ता कह अवियन्नूणं मिच्छत्तहयाण पासम्मि ॥ ८ ॥

[सो.] जे श्रीजिनवचन सिद्धांत तेहना विज्ञ जाण छइं तेहइ[1] जीवहूइं जउ संसारनी विरति वैराग्य नावइं । **ता कह०** तउ अविज्ञ अजाण जे मिथ्यात्विइं[2] करी हणिया वाहिया[3] छइं ते कन्हलि संसारनी विरति निवृत्ति किम आवइ ? जाणहूइं मिथ्यात्वादिक पापनी निवृत्ति नथी आवती तउ अजाण मिथ्यात्वीहूइं किम आवइं ? विरतिनउं आविवउं गाढउं दुहिलउं छइ । इसिउ भाव ॥ ८ ॥

[जि.] जिनवचन तणा जाणहार जीवईहूइं जइ भवविरति संसार हूंतउं विरमण न हुइं । **अवियन्नूणं** अजाणता अज्ञान अनइ [मिथ्या]त्वहत मिथ्यात्वव्याप्या जीव तेहनइ पासि कन्हइं किमु संसारनउ मेल्हिवउं हुइ ? अपि तु न हुइं । एतलइं जिनधर्म लगी

---

१ तेह. २ मिथ्यात्वि. ३ 'वाहिया' नथी.

जीवहूइं वैराग्य ऊपजइ। मिथ्यात्व लगी सांमुहउ जीव संसार वधारइ ॥ ८॥

[मे.] जे जिनवचननउ जाण मनुष्य तेहनइ जि भव संसार तेहनी विरति नथी आवती तउ कहउ न, अजाणनइं किम विरति आवइ? जे मिथ्यात्वि करी हत हण्या जे जीव छइं तेहनइं पासइ रहइ तेहनइं विरति आवतां गाढी दोहिली छइ। इसउ भाव ॥ ८॥

[जि.] जिनधर्म साचउ इसुं जाणी सम्यग्दृष्टिहूइं मिथ्यात्वी देखी जकाई मनमाहि ऊपजइ तकाई कहइ छइ।

विरयाणं अविरए जीवे दट्ठूण होइ मणतावो।
हा हा कह भवकूवे[1] बुड्डुंता पिच्छ नच्चंति ॥ ९॥

[सो.] जे विरत पापतउ निवर्त्या[2] जीव छइं तेहहूइं अविरत[3] पाप करता देखी मनमाहि[4] संताप थाइ। **हा हा॰** अहा! ए अविरत जीव संसाररूपिआ कूआ माहि बूडता देखि किम नाचइ? ए बापडा पाप करीं नवनवी गतिइं नवनवे प्रकारि रुलिस्यइ, किम थासिइं इम खेद प्रामइं ॥ ९॥

[जि.] विरत सम्यग्दृष्टि जीवहूइं अविरत मिथ्यात्वी जीव **दट्ठूण** देखी करी **मणतावो** मनि संताप हुइ। किसु संताप ए। **हा हा** खेदे! रे जीव! **पिच्छ**। जोइ संसाररूपीउ कूउ तेह माहे बूडता बापडा किसु नाचइं छइं? एतलइ सम्यक्त्वी इसुं जाणइ। जउ संसारमाहे कोई जीव बूडइ नहीं तउ भलउं। तिणि कारणि संसारमाहे बूडता जीव देखी मनि संताप करइं। इसु भाव ॥ ९॥

१ जि. भवकूपे २ निवर्त्या. ३ अविरत जीव. ४ मनमाहि चित्तमाहि.

[मे.] जे विरत पाप हूंता निवर्त्त्या छइं जीव तेही अविरतनउं स्वरूप देषी मनमाहि किम परिताप नाणइं ! काइं होइस्यइ ? खेदि । अविरत जीव संसाररूपीआ कूआमाहि बूडता, देषउ, किम नाचइं छइं ॥ ९ ॥

[सो.] केती वारइं बीजा आरंभ न मूकारइं[1] तउ मिथ्यात्व काईं छांडअ[2] नहीं ? जेह भणी मिथ्यात्वनउ मोटउ अवगुण छइ ते कहइ छइ ।

[जि.] आरंभ लगी जीव दुःखी हुइ इसुं जाणवइ छइ ।

[मे.] किवारइं बीजा आरंभ न मूकइं तउ मिथ्यात्व कांइं न छांडइं ?

आरंभजम्मि पावे जीवा पावंति तिक्खदुक्खाइं ।
जं पुण मिच्छत्तलवं[3] तेणं न लहंति जिणबोहिं ॥ १० ॥

[सो.] वाहण प्रवहण क्षेत्रकरसणादिक आरंभनां जे पाप छइं तेह लगइ जीव आवते भवांतरि तीक्ष्ण गाढां दुक्ख प्रामइ । पुण धर्मनउ अणलहिवउं न हुइं । **जं पुण०** पुण जं जिनधर्म ऊपरि द्वेष करतउ मिथ्यात्वनउ लवलेशइ करइ तीणइ आवतइं भवि जिनधर्मइ जि न लहइं । बोधिबीजइ जि दुःप्राप थाइ । तीणइ घणउ कांइ संसारि रुलइं ॥ १० ॥

[जि.] **आरंभ** षड्विधजीवनिकायविनाशनरूपि पापि कीजतइ हूंतइ जीव अज्ञानी **तिक्खदुक्खाइं** तीक्ष्ण नरकादिकनां दुःख प्रामइं । जे वली जीवहूइं मिथ्यात्वनउ लवलेश छइ तिणि मिथ्यात्वनइ लेशि करी जीव जिनबोधि वीतरागनउं सम्यक्त्व न लहइं । एतलइ

---

१ मूकाई. २ छाडउं. ३ मे. मिच्छत्त'.

जिनधर्मि गाढउ करी आरंभ वर्जिउ छइ । जइ ते आरंभ करइ तउ दुःख लहइ । जिणि कारणि जीव मिथ्यात्व करइ तिणि कारणि जीव सम्यक्त्व न लहइ । जिहां आरंभ तिहां सुख नहीं अनइ जिहां मिथ्यात्व तिहां सम्यक्त्व नहीं । वली धर्म कीजइ तउ अरहंत देवई-नउ । अनेरउ धर्म न करिवउ । यत उक्तं

श्रोतव्यः सौगतो धर्मः कर्त्तव्यः पुनरार्हतः ।
वैदिको व्यवहर्तव्यो ध्यातव्यः परमः शिवः ॥ १० ॥

[मे.] आरंभ क्षेत्रकरसणादिकइंतउ ऊपनउं जे पाप तेहतउ जीव तीव्र दुक्ख पामइं । पणि तिहां धर्मनउं अणलहिवउं न हुइं । पणि वली जे मिथ्यात्वनउ लवलेशमात्र करइं तेह लगी आवतइ भवि जिनबोधि जिनधर्म्म न लहइं ॥ १० ॥

[सो.] हिव जे गाढा तप नियम क्रिया करइं छइं पुण उत्सूत्र प्ररूपइं छइं तेह आश्री कहइं छइं ।

[जि.] सघलाई जीवहूई जिनबोधिनउं अप्राप्तिकारण कहइ छइ ।

[मे.] हिव जे गाढी क्रिया करइ अनइ उत्सूत्र प्ररूपइ तेह आश्रई कहइ ।

जिणवरआणाभंगं[1] उम्मग्ग[2]उस्सुत्तलेसदेसणयं ।
आणाभंगे पावं ता जिणमयदुक्करं धम्मं ॥ ११ ॥

[सो.] उन्मार्ग[3] व्यवहार सामाचारी विरुद्ध उत्सूत्र श्रीसिद्धान्तनी आज्ञा विरुद्ध जे लेशमात्र थोडु[4] उपदेश तेहतउ **जिणवर०** वीतरागनी आज्ञानु भंग हुइ । यत उक्तं श्री**आवश्यके**—

---

१ आ गाथा सो. नी पोथी प्रतमां लखावी रही गयेली छे. २ जि. अमग्ग॰.
३ 'उन्मार्ग...सामाचारी विरुद्ध' ने स्थाने 'जिण.' ४ थोडउ.

उस्सुत्तमायरंतो[1] उस्सुत्तं चेव पन्नवेमाणो ।
एसो अ अहाछंदो इच्छाछंदु त्ति एगट्ठा ॥ १ ॥
(उपदेशमाला, गा. २२१)

उम्मग्गदेसणाए चरणं नासंति जिणवरिंदाणं ।
वावन्नदंसणा खलु न हु लब्भा तारिसा दुट्ठं ॥ २ ॥
(आवश्यक, गा. ११५२) इति वचनात् ।

'पयमवि असद्दहंतो सुत्तत्थं मिच्छदिट्ठीओ' इति सिद्धान्तवचनाच्च । **आणाभंगे॰ जु**[2] आज्ञाभंग कीधइ हूंतइं महापाप । घणीइ क्रिया अनुष्ठानकष्टादिक करतउइ अनाराधिक[3] जि हुइ । **ता जिण॰** तेह भणी श्रीजिनशासननउ धर्म्म आराधतां गाढउ दुक्कर । गाढी क्रियाइ करतां वीतरागनी आज्ञा पाखइ आराधिवउ न हुइ काज न सरई । बीजा पाधरा ठाकुराइनी आज्ञा भागीइं महादोष कहीइं । 'आज्ञाभङ्गो नरेन्द्राणामशस्त्रवधमुच्यते' इति वचनात् । तउ त्रिभुवनस्वामी वीतरागनी आज्ञानइं भांजिवइ दोषनउं सिउं कहीइ ? ॥ ११ ॥

[जि.] अमार्गे कुमार्गे तेहना कहिवातउ उत्सूत्र सिद्धान्तविरुद्ध वचन तेहनउ लवमात्र उपदेसतउ श्रीजिनाज्ञानउ भंगालाप हुइ । आज्ञानइ भंगि हूंतइ **पावं** पाप हुइ । ता तउ पच्छइ पापनइ उदइ हूंतइ जीवहूइं जिनमत जिनभाषित धर्म दुःकर दुःप्राप हुइ ॥ ११ ॥

[मे.] उन्मार्गे सेवतां उत्सूत्र सिद्धान्त विरुद्ध तेहनउ लेशमात्र उपदेश देतां जिनवर वीतरागनी आज्ञानउ भंग हुइ । ते आज्ञाभंग लगी महापाप हुइ । तेह पाप लगी जिनधर्म्म गाढउ दुक्कर हुइ ॥ ११ ॥

---

[1] आ गाथा 'आवश्यक'मां जोवामां आवती नथी, पण 'उपदेशमाला'मां छे. [2] 'जु' नथी. [3] अनाराधक.

[सो.] वली अेह जि वात कहइ छइ।

[जि.] वली प्रकारान्तरिं जिनधर्मनी प्राप्ति दुर्लभ कहइ छइ।

जिणवरआणारहिअं वद्धारंता[1] ति केवि जिणदव्वं।
बुड्डंति भवसमुद्दे मूढा मोहेण अन्नाणी ॥ १२ ॥

[सो.] जिणवर० वीतरागनी आज्ञारहित देवद्रव्य वधारतां हुंतां मूढ मूर्ख केतलाइ मोहिइ धर्मनइं भ्रमि अज्ञानी अजाण संसार-समुद्र माहि बूडइं। एहनउ इसिउ भाव। देवद्रव्य वधारिवानी बुद्धिइं घणइं लाभिइ पाटकी माछी वागुरीप्रमुख अधर्मं[2] रहइं आपइ। अथवा शालि दालि घृत पक्वान्नादिक अथवा देवद्रव्य वस्त्रादिक जइ घणइं मूलिइं आपणइ[3] घरि वावरइ। अनेराइ श्रावकहूइं दिइ। अथ[4] महात्मा दर्शनी थिकु देवद्रव्य वधारी प्रासादादिके वेचइ। अथवा रूडीइ धुरहूई ग्रहणा पापइ व्याजिइ देवद्रव्य आपइं। इत्यादिकि अनेकि प्रकारि करी अविधिइं देवद्रव्य वधारतां संसार-समुद्र माहि बूडइं। जे देवद्रव्य विधिइं सुस्थानकि स्थापइं रक्षा करइं वृद्धि[5] लिइं तेहइं[6] महाफल हुइं। यत उक्तं **दिनकृत्ये—**

जे पुणो जिणदव्वं तु वुड्ढिं निंति सुसावया।
ताण रिद्धि पवड्ढेइ कित्ती सुक्खं बलं तहा ॥ १ ॥
(गा. १३७)

जिणपवयणवुड्ढिकरं पभावगं नाणदंसणगुणाणं।
वड्ढंतो जिणदव्वं तित्थयरत्तं लहइ जीवो ॥ २ ॥
एवं नाऊण जिणदव्वं वुड्ढिं निंति सुसावया।
जरामरणरोगाणं अंतं काहिंत्ति ते पुणो ॥ ३ ॥ (गा. १४४-४५)

---

१ जि. वद्धावरित्ता वि देइ जिणदव्वं. २ अधर्मी. ३ आपइ. ४ अर्थ. ५ वृद्धिइं. ६ तेहहूई

[जि.] जे जीव जिणवरेन्द्रनी आज्ञा पापइ जिनद्रव्य चैत्यद्रव्य व्याजि देई वधारताई हूंता मूढ मूर्ख भवसमुद्र माहे मोहि करी अज्ञानी अजाण हूंता बूडइं । तिणि कारणि तेहांहूइं जिनधर्म दुर्लभ ॥ १२ ॥

[मे.] जिनवरनी आज्ञारहित देवद्रव्य केई वधारता हूंता मूढ मूर्ख अजाण संसारसमुद्र माहि बूडइं ॥ १२ ॥

[सो.] जे 'महारउ देव ! महारउ गुरु !' इसिं कदाग्रहि वाह्या छइं ।

[जि.] अथ अयोग्यहूइं जे धर्मोपदेस दिइ तेह उपदेसता उद्देसी कहइ ।

[मे.] सूधा धर्मनां अभिलाषीआ न हुइं तेहनइं उपदेसु न देवउ । ते आगिली गाहइं कहइ ।

कुग्गहगहगहियाणं मूढो[1] जो देइ धम्मउवएसं ।
सो चम्मासीकुक्कुरवयणम्मि खिवेइ कप्पूरं ॥ १३ ॥

[सो.] **कुग्गह०** जे कदाग्रहरूपीउ ग्रह कहीइ भूतप्रेतादिकनउ छल तीणं करी[2] ग्रहिया गहिला[3] कीधा छइं तेहहूइं **मूढो जो०** मूढ अजाण जे धर्मनउ उपदेश दिइं, शुद्ध देवगुरुधर्मनां स्वरूप कहइं **सो चम्मासी०** ते चांबडाना खाण्हार कूकर शुंडीउ तेहनइ वयणि गूहडइ कपूर घातइं । रूडी वस्तु कुस्थानकि घातइं । सोनानी झाल कादवमाहि लांपइं । एतलइं इस्यउ भाव[4] ॥ १३ ॥

[जि.] 'ए माहरउ देव ! ए माहरउ गुरु !' इसिउ देव-कुगुरु ऊपरि कदाग्रह तिणि करी ग्रहीत व्यास पुरुषहूइं जे पुरुष मुग्ध

---

१ जि. मुद्धो. २ करी जे. ३ ग्रहिया. ४ आ पछी सो. नी बीजी प्रतमां 'कदाग्रहीहूई उपदेश न देवउ' एटलुं वधारे छे.

भोलउ सरल स्वभावि हूंतउ शुद्ध धर्मोपदेश दिइ ते पुरुष **चम्मासी** चर्मभक्षक कुकुरनइ वदनि मुखि कपूर क्षिपइ घालइ। जिम कुतिरानइ मुहि कपूर घालिउं हूंतउं नि:फल थाइ तिम अयोग्यहूइं धर्मोपदेस दीधउ हूंतउ नि:फल। एतावता अयोग्यहूइं धर्मोपदेस न देवउ ॥१३॥

[**मे.**] जे कदाग्रहरूपीउ ग्रइ तीणइं करी जे ग्रह्या छल्या छइं तेहनइं जे मूढ अजाण धर्मनउ उपदेश दिइं, सूधउं देवगुरुधर्मनउं स्वरूप कहइं ते चर्मासी चांबडानउ खाणहार कूतिरउ तेहनइ मुखि कपूर घातइं। रूडी वस्त कुथानकि घातइं। एतइ कदाग्रहीनइं उपदेश न देवउ ॥१३॥

[**सो.**] सुद्ध-प्ररूपकनी रीसइ रूडी। उत्सूत्रभापकनी क्षमाइ विरुई। ए वात कहइ छइ।

[**जि.**] अथ गुरुनउ कोपई भलउ। केहीएकनी क्षमाई भली नही। इसुं जणावइ छइ।

[**मे.**] सूधा कहणहारनी रीसइं रूडी, पणि उत्सूत्रभापीनी क्षमाई पाइइ। ए वात कहइ।

रोसो वि खमाकोसो सुत्तं भासंतयस्स धन्नस्स।
उस्सुत्तेण खमा वि य दोसमहामोहआवासो ॥१४॥

[**सो.**] **रोसो वि०** जे धन्य उत्तम सूत्र श्रीसर्वज्ञभापित सिद्धांत तेह **भासंत** बोलतां आपणा खरपणइं[1] वलि साचउ विचार करतां केती वारं[2] रोस ऊपजइ। ते रोसइं[3] क्षमानउ कोश भंडार जाणिवउ। ते रीस रूडी इसिउ भाव। **उस्सुत्तेण०** अनइ उत्सूत्र सिद्धान्त विरुद्ध जे बोलइं तेहनी क्षमाइ दोषइ जि कहीइ, विरूईइ जि

---

१ खरपणवइं. २ वार. ३ रोस.

कहीइ, जेह भणी महामोह महाअजाणिवउं तेहनउ आवास स्थानक छइ। **चंडरुद्र** आचार्य सरीषा सुद्ध प्ररूपकनी रीसइ रूडी। **जमालि** सरीषा उत्सूत्रप्ररूपकनी क्षमाइ विरूई इसिउ भाव। यत उक्तं **गच्छाचारप्रकीर्णके—**

जीहाए वि लिहंतो न भद्दओ जत्थ सारणा नत्थि।
दंडेण वि ताडंतो स भद्दओ सारणा जत्थ ॥ १४॥ (गा. १७)

[जि.] सूत्र भाषता उपदेश देता भणावता गुरुनी **रोसो वि** रोषई **धन्नस्स** धन्य पुरुषहूइं क्षमानउ भंडार हुइ। जिम क्षमा भली तिम गुरुनी रीसई परमार्थवृत्तिइं हितकारिक हूंती भली क्षमारूप जाणिवी। जिम **चंडरुद्राचार्यनी** रीस नवदीक्षित महात्माहूइं केवल ज्ञान भणी हुइ। उत्सूत्रि करी क्षमाई कीधी हूंती दोष महाअज्ञान तेहनउ आवास स्थानक हुइ ॥ १४॥

[मे.] तेहनउ रोसु क्षमानउ कोसु जाणिवउ, जे सूत्र सिद्धान्त खरउं बोलइ, धन्य भाग्यवंत हूंतउ। अनइ उत्सूत्र सिद्धान्त विरुद्ध जे बोलइ तेहनी क्षमाइ दोषइ जि हेतु कहीइ, जेह भणी ते उत्सूत्र-प्ररूपक महामोह अजाणिवउं तेहनउ आवास स्थानक छइ। **चंद्ररुद्राचार्य** सरीषा सुद्ध प्ररूपकनी रीसइ रूडइ। **जमालि** सरीषा उत्सूत्रप्ररूपकनी क्षमाइ विरुई ॥ १४॥

[सो.] हिव[1] जिनधर्मनउं दुर्लभपणउं कहइ छइ।

[जि.] 'मोक्षि सुख छइ कि नथी?' ए वातनउ निश्चय कहइ छइ।

[मे.] हिव जिनधर्मनउं दुर्लभपणउं कहइ।

---

१ हेव.

**इक्को वि न संदेहो जं जिणधम्मेण अत्थि मुक्खसुहं।
तं पुण दुव्विण्णेयं अइउक्कडपुण्णरहियाणं ॥ १५ ॥**

[सो.] इक्को वि॰ एकइ थोडउ लगारइ ए वातनउ संदेह नथी, जं जिनधर्मिइं करी मोक्षसुख छइ। जीवदयामूल जिनधर्म आराधतां मोक्षसुख लाभइ जि। ए वातनउ वरांसउ नथीइ जि। **तं पुण॰** ते जिनधर्म **दुविण्णे॰** जाणतां दोहिलउ। कहिहूइ [?] **अइउक्क॰** अतिउत्कट गाढा मोटा पुण्य भाग्यरहित कदाग्रही उन्मार्ग वांकी बुद्धिना धणी जीवहूइं। अति गाढा भाग्यवंत जीवहूइं मार्गानुसारिणी बुद्धिना धणीहूइं जाणतां सोहिलउ जि छइ ॥ १५ ॥

[जि.] जउ जिनधम्मि करी मोक्षनउ सुख छइ। अथ नथी इसु सदेह एकई नही। किंतु निसंदेह मोक्षसुख छइ। नैयायिक-वैशेषिकादिकने मते मोक्षि सुख नथी। आत्यन्तिकी दुःखनिवृत्तिर्मोक्षः। इस्या मोक्षलक्षणना कहिवातउ दुःखानुषंगिपणातउ सुखई दुःख। तेह दुःखस्वरूपनउ उच्छेद अत्यंत अभाव मोक्ष। इस्या सांभलवइ सदेह। पुण संदेह न करिवउ। किसु। जउ मोक्षसुख न हुइं तउ कोई जाण वांछइ नही। जिम करणंक। तिणि कारणि मोक्ष सहू वांछइ। तउ सही मोक्षि सुख छइ। इसिइ अनुमानि करी मोक्षसुख छइ। तथागमे प्रोक्तं—

न जरा जन्म नो यत्र न मृत्युर्न च बन्धनम्।
न देहो नैव च स्नेहो नास्ति कर्मलवोऽपि च ॥
केवलं केवलं यत्र यत्र दर्शनमक्षयम्।
अक्षयं च सुखं यत्र वीर्यं सम्यक्त्वमक्षयम् ॥

तं पुण॰ तें पुण मोक्षसुख अतिउत्कृष्ट पुण्यरहित पुरुषे **दुविण्णेयं** दुर्ज्ञेय जाणीतां दुहिलउं ॥ १५ ॥

[मे.] एकइ थोडउइ ए वातनउ संदेह नथी जे जिनधर्म आराधतां मोक्षनां सुख छइ जि । पणि ए वात जाणी न सकीइं जे अति उत्कट पुण्यरहित जीव मोक्ष पामिस्यइं ॥ १५ ॥

[सो.] जिनधर्मना दुर्लभपणाइजिनी वात कहइ छइ ।

[जि.] मोक्षसुख स्थापी जिनमतइं जि जाणीतां दुहिलउं इसुं प्रकटइ छइ ।

[मे.] जिनधर्मना दुर्लभपणानी[1] वात कहइ[2] ।

सव्वं[3] पि वियाणिज्जइ लब्भइ तह चउरिमाइ जणमज्झे।
इक्कं पि भाय दुलहं जिणमयविहिरयणसुविआणं ॥१६॥

[सो.] **सव्वं पि०** बीजउं सहू जाणतां सोहिलउं । संसारनां विज्ञान कला गीत नृत्यादिक । तथा वली लोकमाहि चतुरपणउं बोलवइ व्यवसाय वाणिज्यनइ विषइ डाहपण ते सहू सोहिलउं[4] । **इक्कं पि०** हे भ्रात ! बांधव ! एकइ जि जगमाहि दुर्लभ **जिणमय०** श्रीजिनमत श्रीवीतरागना शासननी विधि आचार तेह रूपीआ रत्ननुं सम्यक् जाणिवउं । धर्मनी कुशलाई दुर्लभ । यत उक्तं—

धन्नाणं विहिजोगो विहिपक्खाराहगा सया धन्ना ।
विहिबहुमाणी धन्ना विहिपक्खअदूसगा धन्ना ॥

वली श्रीजिनवचन उत्सर्गापवादबहुल छइ । तेह भणी लाभच्छेहनउं[5] जाणिवउं दोहिलउं । जिम श्रीधर्मनी वृद्धि हुइ तिमइ जि कीधउं जोईइ । यत उक्तं श्रीउपदेशमालायां—

---

१ दुर्लभपणाइजिनी. २ कहइ छइ. ३ आ आखी गाथा सो. नी बीजी प्रतमांथी पडी गई छे. जो के ते उपरनो बालावबोध एमां छे. ४ सोहिलुं. ५ छेहानउं.

तम्हा सव्वाणुन्ना सव्वनिसेहो अ पवयणे नत्थि ।
आयं वयं तु लिज्जा लहाकंखि व्व वाणियओ ॥ (गा. ३९२)

[जि.] सघलउंइ विज्ञान जाणीइ । लोकमाहे तेह तथा च वली **चउरिमा** चतुरिमा पंडिताई **लब्भइ** लहीइ । पुण हे **भाय!** भ्रात बांधव संबोधने । एकइ जु जिनमत विधिरूपीउं रत्न तेहनउं सुविज्ञान सम्यग् प्रकारि साचउं जाणिवउं दुहेलउं । भाग्य हुइ तउ जिनधर्म जाणीइ ॥ १६ ॥

[मे.] 'सघलंइ जाणीइ परीछीइ' तिम लोकमाहि **चउरिमाइं** बोलिवउंइ सोहिलउं । पणि हे भाई ! एक जि दोहिलउं जे श्रीजिनमत वीतरागना शासननी विधि आचाररूप रत्न तेहनउं साचउं जाणिवउं ॥ १६ ॥

[सो.] सूधा धर्मनउं जाणिवउं परहूं छउ । कहिणहारहूंई सांप्रत कालि कहिवुंइ दुहिलउं । ए वात कहि छइ ।

[जि.] अथ साचउं सम्यक्त्व कहिवउं दृष्टांति करी दुःप्राप कहइ छइ ।

मिच्छत्तबहुलयाए विसुद्धसम्मत्तकहणमवि दुलहं ।
जह वरनरवइचरिअं पावनरिंदस्स उदयम्मि ॥ १७ ॥

[सो.] मिथ्यात्वनी बहुलता घणा जीव प्राहिइं भला भला तेहइ मिथ्यात्वी जि तीणइं करी **विसुद्ध०** खरा सम्यक्त्वना स्वरूपनउ कहिवउइ दुर्लभ । साचा सम्यक्त्वनी वात कही न सकइं । **जह वर०** जिम वारू न्यायी धर्मवंत आगिला रायनुं चरित्र **पावनरिंद०** पापी अन्यायी[३] अधर्मी रायनइ उदइ[४] वर्त्ततइ कही न सकीइं । थीइता

१ कहइ. २ 'कहणमिव. ३ 'अन्यायी' नथी. ४ उदय.

भणी ते राय अगमता भणी कुपिउ अनर्थ करइ। तिम खरा सम्यक्त्वनुं[1] कहिवूं[2] लोकनउं[3] अगमतुं थाइं। तेह भणी कहिवुं दुर्घट। इसिउ भाव॥ १७॥

[जि.] मिथ्यात्वनी बहुलता प्रचुरता तिणि करी विशुद्ध सम्यक्त्वनउं कथनई कहिवउं दोहिलउं। जिम पापी नरेन्द्रनइ उदइ **वरनरवरचरियं** प्रधान राजेन्द्र श्री**रामा**दिक तेहनुं न्यायरूप चरित्र कहिताई दोहिलउं हुइ॥ १७॥

[मे.] मिथ्यात्वनी बहुलता लगी भलाइ जीवनइं सूधा सम्यक्त्वनउं कहिवउं दोहिलउं। साचा सम्यक्त्वनी वातइ कही न सकीइं। केहनी परिइं। जिम न्याई राजानउं चरित्र पापी राजानइ उदयि तेहनी ठकुराई कही न सकीइं। कांइ। ते अणगमती वातइं कोप धरइ। तिम मिथ्यात्वी आगलि सूधा सम्यक्त्वनउं कहिवउं अरुचि रूपजावइ॥ १७॥

[सो.] केती वारइं को गुरुइ उत्सूत्रभापी हुइ। तउ सिउं करिवुं, ते कहइ छइ।

[जि.] अथ विद्यावंतई कूडाबोलउ मेल्हिवउ। इसुं दृष्टांति करी स्थापइ छइ।

बहुगुणविज्जानिलओ उस्सुत्तभासी तहा विमुत्तव्वो।
जह वरमणिजुत्तो वि हु विग्घकरो विसहरो लोए॥१८॥

[सो.] बहु॰ घणा गुण अनइ विद्यानउ निलय घर स्थानक गुरु छइ। गाढउ विद्यावंत गाढउ गुणवंतु[4] छइ। पुण उत्सूत्रभापी

---

१ ॰ना स्वरूपनउं. २ कहिवउंइ दुर्लभ साचा सम्यक्त्व नीवाहिवुंइ. ३ लोकनइ. ४ गुणवंत.

श्रीसर्वज्ञनउं वचन न मानइ ऊथापइ। **तह्वा विमुत्तव्वो०** ते गुरुइ तिम मूकिवउ[1] छांडिवउ, जिम विषधर साप **वरमणि०** माथइ वारू विषापहार मणि करी सहित हुइ तेऊ विघ्न मरणकरणहार भणी दूरि मेल्हीइ तिम ते गुरुइ उत्सूत्रभाषी अनंत संसारनां मरण देन्हार भणी दूरि त्यजवउ[2] परहउ छांडिवउ ॥ १८ ॥

[जि.] बहु घणा गुण जिहां छइ इसी विद्या तेहनउ निलय गृह एहवउंइ उत्सूत्रभाषी हूंतउ **तह्वा वि** तथापिहिं मूकिवउ। जिम लोकमाहि प्रधान मणिसंजुत्तई हूंतउ **हु** निश्चइं विघ्नकर मृत्युकारक विषधर मेल्हीइ ॥ १८ ॥

[मे.] बहु घणा गुण विद्या तेहनउ निलय स्थानक गुरु छइ, पणि उत्सूत्र वचननउ भाषणहार बोल्णहार तथापि मूंकिवउ। कहिनी परइं। जिम वर प्रधान मणि सहितइ साप विघ्नकारक मरणदायक लोकमाहि हुइ तिम उत्सूत्रभाषी गुरु पणि मोक्षनइं विघ्नकारक हुइ ॥१८॥

[सो.] लोक प्राहइं सगपण अनइ लक्ष्मीइजिनइं लोभिइं लीजइ। धर्मनउं प्राहइं काई न गणइ। ए वात कहइ छइ।

[जि.] अथ मोहनु प्रभाव कहइ छइ।

सयणाणं वा मोहे लोआ घिप्पंति अत्थलोहेण।
नो घिप्पंति सुधम्मे रम्मे हा मोहमाहप्पं ॥ १९ ॥

[सो.] सयणाणं० लोआ० ए[3] लोक सगानइ मोहिइं अथवा लक्ष्मीनइ लोभिइं लीजइ। तेन्हा देव-गुरु मानइं तेह सिउ नात्रा[4] संबंध करइं। धर्म काईं न जोअइं। **नो घिप्पंति०** सुधर्म खरउ धर्म जे रूडउ ते न लिइं, तिहां न राचइं। **ह्वा** कहीइ अहो!

---

१ मूंकवउ. २ त्यजिवउ. ३ 'ए' नथी. ४ नातां.

मोहमाहप्पं॰ संसारनउ मोह अजाणिवउं तेहनउं ए माहात्म्य महिमा छइ। कुणइ काई[1] थाइं ? ॥ १९ ॥

[जि.] स्वजन सगा तेहनइ मोहि **चा** वली अथवा द्रव्यनइ लोभि लोक लीजइ। पण रम्य प्रधान सुधर्म जिनधर्म तिहां **नो घिप्पंति** न लीजइं। **हा** खेदे मोहनउं माहात्म्य प्रमाण ॥ १९ ॥

[मे.] स्वजनादिकनइ अर्थना लोभ लगी लोक संसारनइ व्यापारि घातइं। हाट पाटणि वणिजव्यापार सीपवइं। पणि सूधा स्वामीना भाष्या धर्मनइ मार्गि न घातइं। जे धर्म रम्य प्रधान छइ। **हा** इसइ खेदे। ते मोहनउं माहात्म्य जाणिवउं ॥ १९ ॥

[सो.] अधर्मी अनइ धर्मी जीव रहइं बेई ज वीसामानां स्थानक छइ। ए वात कहइ छइ।

[जि.] अथ गृहस्थहूइं वीसामानउं स्थानक कहइ।

गिहवावारपरिस्समखिन्नाण नराण वीसमणठाणं।
एगाण होइ रमणी अन्नेसिं जिणिंदवरवाणी[2] ॥ २० ॥

[सो.] गिहवावार॰ दिन सघलउ जे गृहस्थनउ व्यापार व्यवसाय वाणिज्य काजकाम तेहनइं श्रमिइं करी जे पुरुष खिन्न ऊसना छइ, तेहहूइं[3] **वीसमण॰** वीसामानां स्थानक बेइ जि छइ। **एगाण॰** एक जे अधर्मी संसाराभिलाखी[4] जीव तेहहूइं रमणी स्त्री वीसामानउं स्थानक। तेह आगलि आपणउं काजकाम मंत्र गूझ कही समाधि पामइं। उक्तं च श्री**उपदेशमालायां**—'गुरु गुरुतरो अइगुरु पियमाइयअवच्चपियजणसिणेहो॰'। **अन्नेसिं** बीजा विवेकीआ

---

[1] कांई न थाइ. [2] जि. जिणिंदवरधम्मो, मे. जिणेंदवरधम्मो. [3] तेहूइं. [4] संसाराभिलापी.

धर्मवंतहइं जिनेन्द्र श्रीवीतरागनी वर प्रधान वाणी[1] श्रीसिद्धांत[2] धर्ममय वचन तेह जि विश्रामनउं स्थानक हुइ। सिद्धांतना अर्थ विचारतां[3] जोतां तेहनउं मन महासमाधि लहइ। इसिउ भाव।

[जि.] गृहव्यापार घरनउ व्यापार तेहनउ परिश्रम करिवउं तिणि करी खिन्न थाका तेह नर मनुष्यहइं वीसामानुं स्थानक हुइं। एक संसारी जीवहूइं रमणी स्त्री विश्रामस्थानक हुइं। अनेरा कोई भव्य श्रावकहइं श्रीसर्वज्ञोक्त वरधर्म वीसामास्थानक हुइ ॥ २० ॥

[मे.] गृहनउ व्यापार व्यवसायादिक तेहनइं श्रमिं जि नर ऊसना छइं, तींह रहइं वीसामानां स्थानक विह जि। एकनइं रमणी स्त्री वीसामानउं स्थानक। कांइं ते आगलि आपणां काजकाम वात कही समाधि पामइ। ए संसारी जीवनी स्थिति। अनइ अनेरा विवेकी जीवनइ सामायक पडिक्रमणा जिनपूजा प्रमुख धर्मकार्य तेहइ जि वीसामाना स्थानक हुइ ॥ २० ॥

[सो.] धर्मवंतनइं अनइ अधर्मवंतनइं ससारना काज करतांइं वडउ विहरउ पडइ छइ। ए वात कहइ[4] छइ।

[जि.] अजाण अनइं जाण ते विहुंनइ पेट भरवानउं फल कहइ।

तुल्ले वि उअरभरणे मूढ-अमूढाण पिच्छसु विवागं।
एगाण नरय-दुक्खं अन्नेसिं सासयं सुक्खं ॥ २१ ॥

[सो.] जे जगमाहि मूढ[5] मूर्ख अविवेक अधर्म अनइ जे अमूढ धर्मवंत विवेकिया ते विहु रहइं[6] उदरनउं भरिवउं, आपणा

---

१ प्रधान जे २ श्रीसिद्धांतोक्त. ३ विचार. ४ कहै ५ बीजी प्रतमां नथी. ६ रहइ.

कुटुंबनउं[१] भरणपोषण[२] करिवउं तुल्यइ[३] जि छइ, सरिखउइ[४] जि छइ। पुण **पिच्छसु०** आगलि फलनउ केवडउ वहिरउ[५] आंतरउ[६] पडइ छइ। देखि। **एगाण०** एक जे मूढ पापी खाटकी माछी कुलाल घांची[७] प्रमुख बीजाइ अधर्मी पेटनइ कारणि अनेक जीवहिंसादिक पापकर्तव्य कुवाणिज्य कुव्यवसाय करी मरी नरकनउं दुःख प्रामइं छइं। **अन्नेसिं०** बीजा जे धर्मवंत तेहनइ[८] कांई मूर्ष्या रहिता नथी, पुण रूडा जीवदया सत्य वचन सहित शुद्धा व्यवसाय वाणिज्य करी लक्ष्मी उपार्जी उदरभरण[९] कुटुंबनां भरणपोषण करइं छइं। अनइ धर्मइ आराधइं छइं। ते आगलि शाश्वत सुख प्रामइं छइं। अजाण नइं जाणहूइं एवडउ आंतरउ छइ ॥ २१ ॥

[जि.] पेटि भरिवइ सरीषइ जि हूंतइ कर्मविपाक जोउ, मूढ मूर्ष, अमूढ पंडित ज्ञाततत्त्व तेह बिहुं तणउ। **एगाण०** एक मूढहूइं नरकदुःख जोइ। **अन्नेसिं०** अनेरा अमूढहूइं शाश्वत सौख्य जोइ ॥२१॥

[मे.] पेटनउं भरिवउं मूर्ख पंडित बिहुनइं सरीषउं। पणि फलनउ विपाक जोउ। किसउ। एक जे स्त्रीपुत्रादिक कन्हइ जइ वीसामउ लिइं तेहनइं नरकनां दुक्ख। अनेरा जे वीतरागनइ धर्मि वीसामउ लिइं तेहनइं शाश्वतां सुख ॥ २१ ॥

[सो.] सांभलिवाइ[१०] थिकु[११] धर्म लाभइ। ए वात कहइ छइ। बिहुं गाहे करी।

[जि] अथ जिणि अनुक्रमि सम्यक्त्व हुइ।

१ कुडुंबनउ. २ °नउं. ३ तुलिइ. ४ सरिखउंइ. ५ विहुरउ. ६ अंतरउ. ७ घाची. ८ तेहइ. ९ उदरभरणपोषण. १० सांभलवाइ. ११ थकउ.

जिणमयकहापबंधो संवेगकरो जिआण सव्वो वि।
संवेगो सम्मत्ते सम्मत्तं सुद्धदेसणया ॥ २२ ॥
ता जिणआणपरेणं धम्मो सोअव्व सुगुरुपासम्मि।
अह उचिअं सड्ढाओ तस्सुवएसस्स कहगाओ ॥ २३ ॥

[सो.] जिणमय० जिनमत श्रीसर्वज्ञना शासननी कथानउ प्रबंध विस्तार सघलउइ[1] भव्य जीवहूइं[2] संवेगकारी वैराग्यहेतु छइ। अनेरे दर्शन[3] एह्वउ नथी। तिहां राग शृंगारयुद्धादि दोषमय जि छइं। तेहे सांभले संविगो कांई न ऊपजइं। **संवेगो०** ते संवेग वैराग्य ज्ञानगर्भ साचउं सम्यक्त्व इछतइ हुइ। मिथ्यात्वी रहइं जे वैराग्य ते कलत्रपुत्रादिकना विगोग थकउ ऊपनउ[4] दुःखमोहगर्भ जि[5] हुइ। ते सम्यक्त्व पुण शुद्ध देशना साचा जिनवचननइं[6] सांभलिवइं जि लाभइं। ते जिनवचन सुगुरुइ[7] जि कन्हइ लाभइ। **ता जिण आण०** तेह भणी धर्म गुरु[8] कन्हइ सांभलिवउं। अथवा उचित योग्य जिम हु[9] तिम **सड्ढाओ** श्रावक[10] कन्हलि[11] **तस्सुवएसस्स** जिननउ सिद्धांतनउ जे उपदेश तेहनउ कहणहारु सम्यग् जिनमार्गप्ररूपक जे **सड्ढा** श्रावक ते कन्हलि सांभलिवउ। मिथ्यात्वी अथवा उत्सूत्रप्ररूपक तेह कन्हलि न सांभलिवउ ॥ २२-२३ ॥

[जि.] जिनमतनउ कथाप्रबंध सघलउई जीवहूइं संवेग वैराग्यकारक हुइ। शुद्धी देसनाइं करी सम्यक्त्व हुइ। **ता०** तउ जिनाज्ञापरि श्रीवीतरागनी आज्ञाप्रतिपालकि पुरुषिइं **सुगुरुपासम्मि**

१ सघलइ. २ °रहूइं. ३ दर्शने ४ ऊपनुं. ५ 'जि' नथी. ६ °प्रवचनइं ७ सुगुरु. ८ आ पछी बीजी प्रतमां आटलुं वधारे छे—'इसी जे जिननी आज्ञा तेहनइ विषयइ तत्परिपालतइ जाणि सुगुरु सुसाधु पासि धर्म सांभलिवउ.' ९ हुइ. १० तेह श्रावक. ११ 'कन्हलि...सांभलिवउ'ने स्थाने बीजी प्रतमां 'कन्हलि धर्म सांभलिवउ' एटलुं ज छे.

सद्गुरु समीपि धर्म **सोअव्व** सांभलिवउ। **अह** अथवा **उचिअं** उचित योग्य जिम हुइ तिम **सड्ढाओ** श्रावकसमीपि श्रीजिनधर्म सांभलिवउ। किसु छइ श्रावक। **तस्सुवएसस्स कहगाओ** तेह जिननउ सिद्धांत तणउ उपदेस. तेहनउ. कहणहार जिनमार्गप्ररूपक ॥ २२-२३ ॥

[मे.] जिनमतनउ कथाप्रबंध सघलउइ भव्य सघलाइ जीवनइं संवेगकारी वैराग्यहेतु हुइ। अनइ संवेग वैराग्य साचइ सम्यक्त्व थकइ हुइ। तेह भणी सम्यक्त्व सूधी देसनाइं जि लाभइ। अनइ ते शुद्ध-देसना सुगुरइ जि करइ। तेह भणी जिननी आज्ञा तत्पर सावधान जीवि धर्म सुगुरु पासि सांभलिवउ। अथवा उचित योग्य श्रावक कन्हलि सांभलिवउ। पणि ते श्रावक केहवउ। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव सारी सूद्धा उपदेशनउ कथकु हुइ ॥ २२-२३ ॥

[सो.] कहिवउं नइ सांभलिवउं जिम सफल थाइ तिम कहइ छइ।

[जि.] अथ सुगुरु समीपि अथवा शुद्ध श्रावक कन्हइं धर्म सांभलिइ हूंतइ सांभलणहारहूइं जिसउ गुण हुइ।

स कहा सो उवएसो तं नाणं जेण जाणए जीवो।
सम्मत्तमिच्छभावं गुरुअगुरु धम्मलोअठिई ॥ २४ ॥

[सो.] ते कथा कही प्रमाण, ते उपदेश सांभलिवउ[1] प्रमाण, ते जाणिउं प्रमाण, जीणइं करी जीव एतला बोल जाणइ। **सम्मत्त०** आ सम्यक्त्व, आ मिथ्यात्व, आ गुरु, आ कुगुरु, आ धर्मनी स्थिति, आ लोकव्यवहारनी स्थिति कहीइ ए विहरउ जाणइ। जीणइं उपदेशइं

---

1 सांभलिउ.

सांभलिइं सम्यक्त्व-मिथ्यात्व, गुरु-अगुरु, धर्ममार्ग-लोकमार्गनउ विहरउ न जाणइं, तीणइं सांभलिइं सिउं छइ ? कांइ न हुइ ॥ २४ ॥

[जि.] ते जिनकथा प्रमाण, ते जिनोपदेश प्रमाण, ते ज्ञान प्रमाण, **जेण** जिणि वातइं जिणि उपदेसइं, जिणि जाणिवइ करी जीव सम्यक्त्व अनइ मिथ्यात्व जाणइ, गुरु अनइ अगुरु कुगुरु जाणइ, धर्म जाणइ अनइ लोकस्थिति जाणइ ॥ २४ ॥

[मे.] ते कथा कही प्रमाण, ते उपदेस सांभलिउ प्रमाण, ते ज्ञान प्रमाण जीणइं जाणिवइ करी सम्यक्त्व-मिथ्यात्व, गुरु अनइ कुगुरु, धर्ममार्ग-लोकमार्गनी स्थिति जाणइ ॥ २४ ॥

[सो.] केतला[1] अभागिआंहूइ[2] जिनमत जाण्याइ पूठिइ मिथ्यात्व न जाइ[3] । ए वात दृष्टांति करी कहइ छइ ।

[जि.] केई एक अधमहूइं सुगुरु कन्हइं उपदेस सांभलिइ हूंतइ मिथ्यात्व न जाइ । ए वात दृष्टांति करी कहइ छइ ।

जिणगुणरयणमहानिहि लद्धूण वि किं न जाइ मिच्छत्तं ।
अह पत्ते वि निहाणे किवणाणं[4] पुणो वि दारिद्दं ॥ २५ ॥

[सो.] **जिण०** वीतरागना जे गुण, परमेश्वरनउ धर्म तेह-रूपीउं रत्नभरिउं निधान ल्हीइनइ[5] किसिउं केतला अभागीआ जीव रहइं मिथ्यात्वनउ मननउ[6] परिणाम जातउ न देषीइ ? ते काइं न जाइं ? ते अभाग्यजिनउं कारण । तेह ऊपरि दृष्टांत कहइ छइ । **अह पत्ते०** अथवा अभागीइं कृपणि निधान लाधउं हुइ, पुण वेची वावरी न सकइं, तेह भणी थली दारिद्री जि कहीइ । तिम सम्यक्त्व ल्हीइनइ धर्म

१ केतलाइ. २ हुइ. ३ जाइइ. ४ जि. मे. किमिणाण. ५ ल्हीनइ. ६ मनतणउ.

नाराधइ, मिथ्यात्व जि करइ ते तेह सरीषउ जाणिवउ । इसिउ भाव ॥२५॥

[जि.] **जिणगुण०** सर्वज्ञगुण तेहरूपिउं रत्नतउं महानिधान ते लहीइ कदी मिथ्यात्व कांइं न जाइ ? अथ जाणिवउं । निधानि पामिइ हूंतइ कृपणांहूइं **पुणो** वली दारिद्यइ हुइ । तथैवोक्तं—

दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य ।
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति ॥

तिणि कारणि सम्यक्त्वरूपिउं महानिधान लही मिथ्यात्वी जीवरूपिया कृपणहूइं मिथ्यात्वरूप दारिद्य न जाइं ॥ २५॥

[मे.] जिन वीतरागना गुणरूप रत्नभरिउं महानिधान लहीनइ मिथ्यात्व कांइ न जाइं ? जीव मिथ्यात्व कांइं न मूकइं ? अथवा लाधइ निधानि कृपणनइं वली दालिद्र जि हुइ । कांइ वेची वावरी न सकइं तेह भणी दालिद्री कहीइ ॥२५॥

[सो.] जिनशासननां पर्वइ उत्तम । ए वात कहइ छइ ।

[जि.] अथ जिनधर्मपर्व प्ररूपइ ।

सो जयउ जेण विहिया संवच्छरचाउमासिअसुपव्वा ।
निद्धंधसाण जायइ जेसिं पभावओ धम्ममई ॥ २६ ॥

[सो.] **सो जयउ०** ते जिन जयवंतउ वर्त्तउ, जीणइं संवच्छरी वरसी चाउम्मासी प्रमुख सुपर्व रूडां पर्व, अमारिप्रवर्त्तन तपनियम ब्रह्मचर्य पोसह प्रभावनादिक केवल पुण्यमय जि सुपर्व रूडां पर्व कीधां । **निद्धंधसाण०** जेह पर्वना प्रभावतउ जे[1] गाढा निर्द्धंधस अधर्मी तेहइ

---

१ जि.

केतला रहइं धर्मनी मति ऊपजइ। तेहइ केतला तेहे पर्वे उपवास दानादिक करता देखीइं ॥ २६ ॥

[जि.] ते जयवंतु हुइ, जिणि वीतरागि सांवत्सरि चातुर्मासिक सुपर्व मनोहर पर्व **विहिया** कीधां। जिहां जिनोक्त सांवत्सरिकादिक पर्वना प्रभाव हूंतउ **निद्धंधसाण** सर्वदा पापशक्तई जीवहूइं **धम्ममई** धर्म करिवानी बुद्धि **जायइ** हुइ ॥ २६ ॥

[मे.] ते श्रीजिन जयवंत वर्त्तउ, जीणइं ए शोभन भला पर्व कीधां, संवत्सरी चउमासी प्रमुख, जिहां तपनियमप्रभावनादिक पुण्य कीजइं। गाढाइं **निद्धंधस** अधर्मीनइ पणि जेह पर्वना प्रभावइतउ धर्मनी मति ऊपजइ ॥ २६ ॥

[सो.] मिथ्यात्वीनां पर्व आश्री वात कहइ छइ।

[जि.] अथ मिथ्यात्व पर्वना करणहारनउं स्वरूप कहइ छइ।

नामं पि तस्स असुहं जेण निदिट्ठाइं मिच्छपव्वाइं।
जेसिं अणुसंगाओ धम्मीण वि होइ पावमई ॥ २७॥

[सो.] नामं पि तस्स० तेहनउं नामइ अशुभ विरूउं, नामइ तेह पापीनउं न लेवउं, लेवा नावइं, जीणइं ए होली बलेव नवरात्र प्रमुख मिथ्यात्वपर्व कीधां। जेहे पर्वे धूलिनउं ऊडाडिवउं, गालिनउं देवउं, जीवहिंसादिकनउं करिवउं प्रवर्त्तइ। **जेसिं०** जेह पर्वना अनुषंग योगतउ धर्मवंतइनइ मनि पापनी मति आवइ। तेहइ गहिलाई करइं, मन विरूआं थाइ, वचन[1] यथातथा बोलइ ॥ २७ ॥

[जि.] तेहनउं नामई असुभकारिउं अग्राह्य, जिणइं **मिच्छपव्वाइं** मिथ्यात्वपर्व **निदिट्ठाइं** कह्यां। किसा भणी तेहनउं नाम

[1] वचनइ.

असुभ ? **जेसिं अणुसंगाओ** जेहां मिथ्यात्वनां पर्वनां संग लगी **धम्मीण वि** धर्मवंतईहूइं पाप करिवानी बुद्धि हुइ ॥ २७ ॥

[मे.] तेहनउं नामइ अशुभ पाडउं, जीगइं मिथ्यात्वीनां पर्व होली बलेव नवरात्रीप्रमुख उपदेस्यां । जिहां धूलि ऊडाडीइ, हिंसा कीजइ । जे पर्वना अनुषंग योगइतउ धर्मवंतइ मनि पापमति ऊपजइ ॥ २७ ॥

[सो.] संसर्गिइं करी केतलानइ विहरउ पड़इ, केतलानइ न पडइ । ए वात कहइ छइ ।

[जि.] अथ पर्वसंसर्ग कही उत्कृष्ट धर्मवंतहूइं अनइ गाढा पापीहूइं सुसंसर्ग कुसंसर्ग काइं न करइं । ए वार्त्ता प्रकटइ ।

मज्झठिई पुण एसा अणुसंगेणं हवंति गुणदोसा ।
उक्किट्ठपुण्णपावा अणुसंगेणं न घिप्पंति ॥ २८ ॥

[सो.] मज्झ० मध्यम पुरुषनी स्थिति जे तेह रहइं **अणुसंगेणं** संगतिनइ विशेषिइं गुणइ हुइं, दोषइ हुइं । गुणवंतनी संगतिइं गुणवंतइ[1] थाइ। पापनी संगतिइं दोषवंत थाइं । ए मध्यम जीवनां विशेष । **उक्किट्ठ०** उत्कृष्ट जे पुण्यना धणी गाढा उत्तम, अनइ उत्कृष्ट पापना धणी गाढा मिथ्यात्वी ते बे संगति[2] न लीजइं । संगतिनउ विहरउ न पडइं । धर्मी[3] ते धर्मीइ[4] जि । पापी ते पापीइ जि । काच नइ रत्न घरिसना सई एकठा रहइं । साप अनइ सापनउ मणि घणउ काल एकठां रहइ । पुण जे जिसउं ते तिसिइं जि । संगतिनउ विहरउ न पडइं । इसिउ भाव ॥ २८ ॥

---

१ गुणवंत. २ संगतिइं. ३ धम्मी. ४ धम्मीइ.

[**जि.**] पुण वली ए मध्यम स्थिति मध्यम पुरुषनी अवस्थिति जाणिवी। ए किसी जु ? **अणुसंगेणं हवंति गुणदोसा।** संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति। सुसंसर्ग लगी गुण हुइ। कुसंसर्गतउ दूषण हुइं। मनुष्य त्रिविधा। उत्तम मध्यम जघन्यरूप। **उक्किट्ठपुण्णपावा** उत्कृष्ट पुण्यवंत उत्कृष्ट पापवंत सुसंसर्गि कुसंसर्गिइं **न घिप्पंति** न लीजइं ॥ २८॥

[**मे.**] या मध्यम स्थिति। अनुषंग कहतां ससर्ग तेह लगी गुण नइ दोस ऊपजइ। अनइ उत्कृष्ट पुण्य नइ पापना धणी कुणहइनइ संसर्गि छीपइं नहीं। उत्कृष्ट पापीनइं धर्मवंतनउ संसर्ग न लागइं। उत्कृष्ट धर्मवंतनइ पापीनउ संसर्ग न लागइं जि ॥ २८॥

[**सो.**] वली एह जि वात कहइ छइ।

[**जि.**] किम जाणीइ ए वात।

अइसयपावियपावा धम्मिअपव्वेसु तो वि पावरया।
न चलंति सुद्धधम्मा धन्ना किवि पावपव्वेसु ॥ २९॥

[**सो.**] **अइसय०** अतिशयप्रापितपापा गाढा पापी जीव **धम्मि०** धर्ममय पर्व आवइ तउ पापइजिनइं[1] विषइं[2] रत हुइं। पाप जि करइं। धर्म ऊपरि मन नावइं। **न चलंति०** केतलाइ धन्य पापपर्विइं आविइं[3] आपणा **सुद्धधम्म०** चोप्य धर्मतउ चलइं नहीं, क्षुभइं नहीं। तेहना मन लगारइ धर्मतउ डोलइ नहीं। तेह गणी उत्कृष्ट पुण्यवंत जनइ उत्कृष्ट पापवंतहूइ संसर्गिइ कांइं विशेष न हुइं ॥ २९॥

[**जि.**] अतिशयप्रापितपाप। उत्कृष्ट पापवंत पुरुष **धम्मिय-पव्वेसु तो वि** धार्मिक पर्वे सांवत्सरादिकेइ **पावरया** पापरत पापइं

१ पापजिनइं. २ 'विषइं' नथी. ३ 'आविइं' नथी.

तु करइं। **धन्ना किंचि** केई एक धन्य कृतपुण्य पुरुष **पाव-पव्वेसु** पापोत्सविइ आविइ हूंतइ सुद्ध धर्म हूंतउ जीवदयामूल धर्म हूंतउ **न चलंति** न डोलइं। तिणि कारणि उत्तम अनइ जघन्य संसर्गि न लीजइ ॥ २९ ॥

[मे.] उत्कृष्ट पापना धणी धार्मिक पर्युपणाप्रमुख पर्वे आव्ये हूंते पापनइ विषइ रत हुईं। केई एक धन्य कृतार्थ पापपर्वे आव्ये हूंते धर्म हूंता न चालइं न डोलइं ॥ २९ ॥

[सो.] हव लक्ष्मी ऊपरि वात कहइ[1]।

[जि.] लक्ष्मीना बे भेद देखालइ।

लच्छी वि हवइ दुविहा एगा पुरिसाण खवइ[2] गुणरिद्धी।
एगा य उल्लसंती अपुण्णपुण्णाणुभावाओ ॥ ३० ॥

[सो.] लच्छी वि० लक्ष्मीइ संसारमाहि बिहु प्रकारि हुइ। **एगा०** एक लक्ष्मी आवती हुंती पुरुषहूइ[3] गुणरूपिणी ऋद्धि क्षेपइ नीगमइ। लक्ष्मी हुइ, पूठिइं[4] हियानउ धर्म जाइ। अनइ विनय विवेक गांभीर्य[5] दाक्षिण्यादिक पुण[6] जाइं। गर्वांधित थिउ हींडइ। **एगा य०** अनइ एक भाग्यवंतनइ लक्ष्मी हुइ, पूठिइं विनय विवेक दाक्षिण्यादिक गुण उल्लसइं। धर्म ऊपरि मन आवइ। भारेखम[7] गंभीरपणउं आवइं। बिहुं रिद्धिनउं कारण कहइ छइ। **अपुण्ण०** जे अभागीआनइ लक्ष्मी हुइ छइ ते पाछिलइ भवि कांइ पापनउं[8] बंधिउं जीवदयारहित पंचाग्नि माघस्नानादिक अज्ञान कष्टरूप पुण्य[9] तेहनइं प्रभाविइं हुइं। तेह लगी पाप करी आघउ मरी दुर्गतिइं जाइं। संसारि रुलइं। अनइ जे धर्म-

१ कहइ छइ. २ खिवइ. ३ रहइं ४ पूठि. ५ गांभीर्यादि. ६ गुण. ७ भारेखमी. ८ पापानुबंधिउं. ९ पुण्यनइं.

वंतनइ घरि लक्ष्मी हुइ[1] तेह लगइ अनेक[2] तीर्थयात्रा प्रासाद संघभक्ति दानादिक अनेक पुण्य करी मरी परलोकि सुगतिइं जाइं। आघउ संसार तरइ ॥ ३० ॥

[जि.] लक्ष्मी द्विविध **हुवइ** हुइ। **एगा** एक लक्ष्मी पुरुषनी गुणरिद्धि दक्षदाक्षिण्यादिक गुणलक्ष्मी क्षिपावइ नीगमइ। **एगा** एक लक्ष्मी गुणश्रेणि उल्लसावइ। किसातउ ? अपुण्य अनइ पुण्य तेह बिहुंनउ अनुभाव प्रभाव तेहतउ। एतलइ पापानुबंधिनी लक्ष्मी पुरुषनी गुणश्रेणि विणासइ। बीजी पुण्यानुबंधिनी लक्ष्मी गुणश्रेणि वधारइ ॥ ३०॥

[मे.] लक्ष्मी पुणि बिहु प्रकारि हुइं। एक लक्ष्मी आवती हूंती पुरुषनइं औदार्यादिक गुण अनइ ऋद्धि बिहुंनइं क्षपावइ नीगमइ। एक लक्ष्मी आवती हूंती विनयविवेकादिक गुणनइ उल्लसावइ। ते पाप नइ पुण्यनउ अनुभवु जाणिवउ ॥ ३० ॥

[सो.] हेव कुगुरु कुश्रावकनूं[3] स्वरूपु[4] कहइ छइ।

[जि.] अज्ञान गुरु-श्रावकनउं स्वरूप कहइ छइ।

गुरुणो भट्टा जाया सड्ढे थुणिऊण लिंति दाणाइं।
दुन्नि[5] वि अमुणियसारा दूसमसमयम्मि बुड्डंति ॥ ३१ ॥

[सो.] **गुरुणो०** ईणइं दुःषमाकालि[6] संप्रति गुरु भाट थ्या। जिम भाट छंद छप्पया[7] करी लोक रीझवी दान लिइ तिम गुरुइ वंश पूर्वज गोत्र वर्णवी श्रावक रंजवी आहारवस्त्रादिकना दान लिइं। दुन्नि वि बे गुरु अनइ श्रावक **अमुणिय०** 'दुलहा[8] दु

१ हुइ ते पाछिलइ भवि जीवदया सहित जिनधर्म आराधिउ हुइ तेह पुण्यानुबंधिया पुण्यनइ प्रभावि हुइं. २ अनेकि. ३ °नुं. ४ स्वरूप. ५ मि. दोन्नि. ६ दु:षमाकालि. ७ छप्पाया. ८ 'दुलहा...एइयउं' सुधीनो अंश सो. नी पहेली प्रतमांथी पडी गयेलो होइ बीजी प्रतमांथी लीधो छे.

मुहादाई मुहाजीवी वि दुलहा । मुहादाई मुहाजीवी दो वि गच्छंति सुगइं ' । एहवउं जिनवचननउं रहस्य अजाणतां बूडइं । संसारसमुद्रमाहि घणउं रुलइं ॥ ३१ ॥

[जि.] गुरु भाट कीर्त्तिपाठक **जाया** हूया । **सड्ढ** श्रावक स्तवीनइं दानादिक लिइं । **दोन्नि वि॰** ते बेई लेणहार देणहार **अमुणियसारा** अज्ञातजिनवचनरहस्य हूंता **दूसमयम्मि** दुःषमाकालि बूडइं ॥ ३१ ॥

[मे.] जे गुरु श्रावकनइं वपाणी दानादिक लिइ ते गुरु भाट सरीषा जाणिवा । ते बिन्हइ वीतरागना वचनरहस्य अजाणता हूंता दुक्खमाकालमाहि बूडइ ॥ ३१ ॥

[सो.] हिवडां संसारना[1] जाण, धर्मना जाण, सांभलणहार नइ कहिणहार[2] थोडा ए वात कही[3] छइ ।

[जि.] अथ दुःखमाकालस्वरूप कहइ ।

मिच्छपवाहे रत्तो लोओ परमत्थजाणओ थोवो ।
गुरुणो गारवरसिया[4] सुद्धं धम्मं[5] निगूहंति ॥ ३२ ॥

[सो.] **मिच्छपवाहे॰** घणउ लोक जे मिथ्यात्वप्रवाह कूडउ गुणना विचार पाखइ आपणा कुलक्रमागत देव गुरु धर्मनइं प्रवाहि रातउ छइ । **परमत्थ॰** परमार्थ गुण जोई देव गुरुधर्मनउं बोलउं[6] तेहनउ जाण थोडउ । अनइ जे गुरु छइ तेहइ **गारव॰** मान, महत्त्व,[7] प्रतिष्ठा, जिह्वाना रस, सयरनां सुख एहे गारवने रसे वाहिया

१ ' संसारना जाण ' नथी. २ कहणहार जाण. ३ कहइ. ४ गारवरहियं. ५ जि.मे. मग्गं. ६ लेवउं. ७ महुत्व.

सूधउ धर्म खरउ मार्ग **निगूहंति** गोपवइ। सांचउं प्रकासइ नहीं ॥ ३२ ॥

[जि.] मिथ्यात्वप्रवाहि रक्त लोक छइ। परमार्थतत्त्वनउ जाण लोक **थोवो** थोडउ छइ। अनइ गुरु गारवरसिक सुखलंपट हूंता **सुद्धं मग्गं** सुद्धउ मार्ग महाकष्टतप.साध्य मार्ग **निगूहंति** छपावइ। ते दु.षमाकालनउं प्रमाण ॥ ३२ ॥

[मे.] लोक प्रवाहइं मिथ्यात्वनइ प्रवाहि रातउ छइ। पणि परमार्थनउ जाण थोडउ। कांइ देव गुरुना विचार जोई आस्ता आणइं ते थोडा। तेही गुरु ऋद्धिगारव, रसगारव, सातागारव रसे पूरिया हूंता सूधउ मार्ग धर्मनउ प्रकासइं नही ॥ ३२ ॥

[सो.] देव-गुरुनां स्वरूप जाणतां दोहल्या। ए वात कइ[1] छइ।

[जि.] अथ देव-गुरुनउं स्वरूप दुर्ज्ञेय इसुं कहइ छइ।

सव्वो वि अरिहं देवो सुगुरु गुरु भणइ नाममित्तेण।
तेसि सरूवं सुहयं[2] पुण्णविहूणा न पावंति[3] ॥ ३३ ॥

[सो.] **सव्वो वि** ए[4] सघलाइ श्रावक लोक नाममात्रि[5] इम कहइं—'अम्हारइ अरिहंत देव सुसाधु गुरु। अरिहंतो मह देवो जावज्जीवं सुसाहुणो गुरुणो इति वचनात्।' **तेसि सरूवं** पुण ते देवगुरुनउं स्वरूप[6] **सुहयं** शुभहेतु साचउं। पुण भाग्यरहित जीव न पामइं। न ओलखइं[7] ॥ ३३ ॥

---

१ कहइ. २ सुपुण्णविहूणा. ३ मे. पाविंति. ४ 'ए' नथी. ५ नाममात्रइ. ६ सुरूप. ७ न उलखइं.

[जि.] सघलउइ लोक 'अरिहंत देव, सुसाधु गुरु' इसुं नाममात्रि करी भणइ। तेह देवगुरुनउं स्वरूप **सुहयं** सुखज्ञेय जाणतां सुहेतलउं, पुण पुण्यरहित हुंता पुण्य विणु **न पावंति** न लहइं लोक। तेही दुःषमाकालनउं प्रमाण ॥ ३३ ॥

[मे.] सघलाइ लोक इम कहइं, 'अम्हारइ अरिहंत देव, सुसाधु गुरु' इम नाममात्र कहइं। पणि ते देवगुरुनउं स्वरूप सुखदायक पुण्यरहित जीव न पामइं ॥ ३३ ॥

[सो.] वली एह जि वात कहइ छइ।

[जि.] अथ मूर्ख जिनाज्ञाप्रतिपालक ऊपरि द्वेष वहइ। इसुं कहइ छइ।

सुद्धा जिणआणरया केसिं पावाण हुंति[1] सिरसूलं[2]।
जेसिं ते सिरसूलं[3] तेसिं मूढाण ते गुरुणो ॥ ३४ ॥

[सो.] सुद्धा जि॰ जे महात्मा सूधा खरा जिन वीतरागनी आज्ञा पालइ छइं, खरउं चारित्र पालइं छइं। ते महात्मा केतलाइ पापी भ्रष्टाचार रहइं सिरिसूल मस्तकसूल थाइं। **जेसिं ते॰** जे भ्रष्टाचार रहइं सुविहित सिरिशूल थाइं। **तेसिं॰** केतलाइ मूढ मूर्खलोकनइ तेह जि गुरु भणी मानीइं ॥ ३४ ॥

[जि.] शुद्धा प्रांजल सरलचित्त निर्मल **जिणआणरया** जिनाज्ञारत पुरुष केही पापियाहूइं **सिरसूलं** मस्तकशूल समान **होंति** हुइं। एतावता जिनाज्ञापालक पुरुष देखी द्वेष लगी माथइ त्रिसूल चडावइं पापी जीव। **जेसिं ते सिरसूलं॰** जेहां पापीयांनइं ते मस्तकशूल हुइ तेहां मस्तकशूलधारक मूढ मूर्ख तणा ते जिनाज्ञारत

---

१ जि. होंति. २ सिरि सूलं. ३ सिरि सूलं.

गुरु हुइं । ते मूढ इसुं मानइं जु जिनाज्ञारक्त गुरु हुइ । अनेरा नही । मिथ्यात्वीइ जैन गुरु मानइं । इति भावः ॥ ३४ ॥

[मे.] जे सूधी वीतरागनी आज्ञा पालइं, खरउं चारित्र पालइं ते केतलां पापीनइ मस्तकि सूल समान हुइं । जीयांनइ मस्तकि ते सुगुरु सूल समान हुइं, केतलांएक मूर्खनइ तेही गुरु करी मानीइ ॥३४॥

[सो.] ए वात दृढइ छइ ।

[जि.] अथ मिथ्यात्वप्रबलता प्रकाशइ ।

हा हा गुरुअ अकज्जं सामी न हु अत्थि कस्स पुक्करिमो ।
कह जिणवयणं कह* सुगुरु सावया कह इअ अकज्जं ॥३५॥

[सो.] आहा गुरुऊ ए मोटुं अकार्य विरूऊ । स्वामी ठाकुर को नथी, जे शिक्षा दिइ । **कस्स०** कहइ आगलि पोकारि कीजइ । **कह जिणवयण०** किहा एहवुं जिनवचन निष्कलंक अनइ किहा सुविहित सद्गुरु अनइ किहां उत्तम श्रावक । **कह इअ०** किहां ए अकार्य । एहा भ्रष्टाचार अब्रह्मचारी गुरुनउं आराधिवउं । ए मोटउ वरासउ । इसिउ भाव ।

[जि.] **हा हा** इति खेदे । **गुरुअ अकज्जं** मोटउं अकार्य । स्वामी **न हु** निश्चइं नथी । **कस्स पुक्करिमो** किह आगलि पूकारां । ते किसुं अकार्य ? **कह जिणवयण०** किहां जिनवचन, किहा सुगुरु, ते श्रावक किहा, जे सुगुरु श्रावक जिनवचनरहस्य जाणइं । इसिउं अकार्य । जिम किसीइ अपूर्व वस्तु गमी हूंतीइ ठाकुर पासइ किह

* सो. नी बीजी प्रतनुं १२ मुं पत्र नहीं होवाथी आ स्थानथी माडीने ४०मी गाथाना बालावबोधनी प्रथम पंक्तिमा 'सिउं कीजइ' शब्दो सुधीना पाठान्तर नोंधी शकाया नथी.

आगलि पुकार कीजइ । तिम इणि दुषमाकालि जिनरहस्य सुगुरु श्रावक थोडा ॥ ३५ ॥

[मे.] हा इसिइ खेदि । ए मोटउं अकार्य । स्वामी तीर्थंकर केवली नहीं । कहि आगलि पुकार कीजइ । किहां ते जिनवचन सूधां । किहां ते सुविहित गुरु । किहां ते सूधा श्रावक, जे गुरुनी परीक्षा न करइ । ए मोटउं अकार्य ॥ ३५ ॥

[सो.] कुगुरु आश्री वात कहइ छइ ।

[जि.] अथ लोकप्रवाह कहइ छइ ।

[मे.] हिव कुगुरु भणी वात कहइ ।

सप्पे दिट्ठइ नासइ लोओ न हु किंपि कोइ अक्खेइ ।
जो चयइ कुगुरुसप्पं हा मूढा भणइ[1] तं दुट्ठं[2] ॥ ३६ ॥

[सो.] **सप्पे०** साप दीठइ लोक नासइ । अनइ कोइ कांइ न कहइं 'विरूउं कीधउं ।' **जो चयइ०** जो जाणीनइ कुगुरुरूपिउ साप छांडइ । **हा मूढा०** अहो मूढ केतलाइ मूर्ख इम कहइ, 'ए दुष्ट विरूउं कीधउं । आपणा गुरु मूकी अनेरउ गुरु आश्रियउ' ॥ ३६ ॥

[जि.] सापि दीठइ लोक नासइ । पुण अनेरउ कोइ लोक नासणहार रहइं **किंपि** कांईं **न हु अक्खेइ** न कहइं । **जो चयइ कुगुरुसप्पं०** जे पुरुष त्यजइ कुगुरुरूपिउ साप तेहहूइं मूढ मूर्ख **तं दुट्ठं** अयुक्तुं भणइ जु 'इणिइ आपणउ गुरु मेल्ही अनेरउ गुरु कीधउ, तिणि कारणि ए दुट्ठ' इसिउं कहइं । इसिउ न जाणइं जु इणिइं कुगुरु मेल्ही सुगुरु आश्रउ ॥ ३६ ॥

---

१ जि. मे. भणहि. २ जि. दट्ठं.

[मे] सापिं दीठइ लोक तासइ । तेहनइं लोक पणि कांई न कहइं जि ' विरूअउं कीधउं ।' जे कुगुरुरूपीउ साप छांडइं त्यजइं । **हा** इसिइ खेदि । मूढ मूर्ख केतलाइ इम कहइ, ' ए दुष्ट ईणइं विरूअउं कीधउं ' ॥ ३६ ॥

[सो.] साप पाहइं कुगुरु अधिकउ । ए वात कहइ छइ ।

[जि.] सापई य पाहिइं कुगुरु दुष्ट । इसिउं देखालइ छइ ।

सप्पो इक्कं मरणं कुगुरु अणंताइं देइ मरणाइं ।
तो वर[1] सप्पं गहिअं मा कुगुरुसेवणं भद्द ॥ ३७ ॥

[सो.] सप्पो॰ साप डसइतउ एक जि वार मरण दिइ । **कुगुरु॰** भ्रष्टाचारी गुरु अनेक कुमार्ग प्ररूपतउ सेवक रहइ अनंता मरण दिइं । घणउ ससार वधारइं । **तो वर॰** तेह भणी अहो भद्र ! उत्तम साप लीधउ रूडउ । **मा कुगुरु॰** पुण कुगुरुनउं सेविवउं रूडूं नही ॥ ३७ ॥

[जि.] सर्प इक्कं एक मरण दिइ सेविउ हूंतउ । कुगुरु सेविउ हूंतउ अणंता घणा मरण दिइं । तो तेणि कारणि सापनउं लेवउं रूडउं । पुण कुगुरुनउं सेविवउं रूडउं नही, हे भद्र ! हे सुज्ञ ! ॥ ३७ ॥

[मे.] साप कुपिउ हूंतउ एक वार मरण दिइ अनइ कुगुरु सेविउ अनंतां मरण दिइ । तेह भणी साप झाल्डि, ग्रहिउ भलउ । हे भद्र ! कुगुरुनउं सेविनउं रूडउं नहीं ॥ ३७ ॥

[सो.] एह्वा कुगुरु जीव छांडइ नहीं । किसिउं कीजइ । ए वात कहइ छइ ।

[1] जि. वरि.

[जि.] अंध लोक गड्डरिकापवाहि पडिउ हूंतउ कांई न मानइं। इसुं कहइ छइ।

जिणआणा वि चयंता गुरुणो भणिऊण जं नमिज्जंति।
ता किं कीरइ लोओ छलिओ गड्डरिपवाहेण ॥ ३८ ॥

[सो.] जिण० जे जिन वीतरागनी आज्ञा छांडइं छइ विराधिइ छइं, तेहइ गुरु भणी लोक जं नमस्करीइं वांदीइं वांदणां दीजइं। **ता किं०** तउ सिउं थाइ। लोक गड्डरिकाप्रवाहि छलिउ व्यापिउ छइ। जेहिं एक गाडरी जाइं तीहिं बीजीइ गाडरी जाइं। तिम एक लोक करता देखी बीजाइ ति करइं ॥ ३८ ॥

[जि.] जिणआणा वि० जिननी आज्ञा त्यजता मूकता जे हुइं तेही **गुरुणो भणिऊण** गुरु करी जव् ने **नमिज्जंति** नमस्करीइ वांदणां दीजइं। **ता** तउ पछइ गड्डरिकाप्रवाहि करी छलिउ हूंतउ लोक **किं कीरइ**। अपि तु लोक कांइ न जाणइं। जिम गाडर-पशु गाडर केडइ जाइ, तत्त्वातत्त्वविचार कांई न जाणइं, तिम लोकई ॥ ३८ ॥

[मे.] जिननी आज्ञा छांडता जे छइ तेहनइं जे गुरु करी नमइं, तउ लोक बापडउ किसउं करइं। सघलुयइ गड्डरीप्रवाहि छलिउ। जिहां एक गाडरु कांई देषीनइ जाइ तिहां सघली गाडरी प्रवाहि पडी जाइं तिम लोक तत्त्वार्थ अणजाणतां एकि माहरा करीनइ जाइं। अनइ बीजा प्रवाहि देषादेषिं जाइं मानइं ॥ ३८ ॥

[सो.] कुगुरु छांडतां लोक दाक्षिण्यं करइं। ए वात कहइ छइ।

[जि.] लोक कुगुरु मेल्हतउ दाक्षिण्य करइ। अनेरइ स्थानकि दाक्षिण्य न करइं। इसुं कहइ।

निद्दक्खिण्णो लोओ जइ कुवि मग्गेइ रुट्टिआखंडं ।
कुगुरूण संगचयणे दक्खिण्णं ही महामोहो ॥ ३९ ॥

[सो.] निद्दक्खिण्णो॰ लोक एहवउ निर्दाक्षिण्य, जइ कोइ रोटीनउ खंड कटकउ मागइ तउ न दिइं । थोडइ काजि, दाक्षिण्य न करइ । **कुगुरूण॰** अनइ कुगुरुनउ सग एवडा अनर्थनउ हेतु ते छाडता दाक्षिण्य करइं । काणि आणइ । **ही महामोहो** आहा ! ए महामोह, मोटउं अजाणिवउं, गाढउं मूर्खपणउं कहीइ ॥ ३९ ॥

[जि.] लोक निर्दाक्षिण्य गुणरहित छइ । **जइ कुवि** जइ कोई रोटीनउ कटकउ मागइ, तउ दाक्षिण्य मेल्ही, रोटीकुटक्कई न दिइ । कुगुरु भ्रष्ट गुरुनउ ससर्ग तेहनइ मेल्हिवइ दाक्षिण्य करइ । **ही** खेदे । **महामोहो** मोटउं अजाणिवउ ॥ ३९ ॥

[मे.] लोक एहवउ निर्दाक्षिण्य । जइ को रोटीनउ खंड मागइ तउ हि नापइ । अनइ कुगुरुना सगनउं त्यजिवउं तिहा दाक्षिण्य करइं । कहइं, 'हउं आपणा प्रियागत गुरु किम मूकउं' । पणि **ही** इसइ खेदि ए सहू महामोहनउ विलसित ॥ ३९ ॥

[सो.] वली कुगुरु आश्री कहइ छइ ।

[जि.] अथ मिथ्यात्वीनउं विलसित देखालइ ।

किं भणिमो किं करिमो ताण हयासाण धिट्ठदुट्ठाणं ।
जे दंसिऊण लिंगं खिवंति नरयम्मि मुद्धजणं ॥ ४० ॥

[सो.] किं भणिमो॰ सिउ बोलीइ । सिउ कीजइ । तेहहूं[1] हताश अभागिया रहइं, धीठ रहइ, दुष्टचित्तहूं[2] **जे दंसिऊण॰** जे लिंग महात्मानउ वेष आपणपामाहि देखाडीनइ

---

१ रहइं २ रहइं

खिवंति० मुग्धजन लोला[1]; लोकनइं कुमार्ग सीपवीनइ नरगि घालीइ[2] छइं । दुर्गति पडइं छइं ॥ ४० ॥

[जि.] तेहां हताश भग्नाश धेठा महादुष्ट मिथ्यात्वी तणउं किसुं मर्णा । तेहहूइं किसुं करां । जे मिथ्यात्वी लिंग दर्शनीनउ वेषमात्र देखालीनइं **मुद्धजणं** मुग्ध भोला लोकहूइं नरकमाहे घातइं ॥ ४० ॥

[मे.] किसउं मर्णा । केहां किसउं करां । हत हणी आश जेहनी ते हताश तीयां हताशनइ दुष्टांनइं धेठांनइं । ते कउण । जे ओघउ मुहपत्ती रूप वेष देषाडीनइ मुग्ध भोला लोकनइं नरकमाहि घेपइं ॥ ४० ॥

[सो.] कुगुरु आश्री निंदास्तुति ग्रंथकार कहइ छइ[3] ।

[जि.] भव्यलोकहूइं कुगुरु देखी सुगुरु ऊपरि गाढी भक्ति उलसइ । इसुं जणावइ ।

कुगुरु वि संसिमो हं जेसिं मोहाइ चंडिमा दट्ठुं ।
सुगुरूण उवरि भत्ती अइनिविडा[4] होइ भव्वाणं ॥ ४१ ॥

[सो.] **कुगुरु वि०** ते कुगुरुइ वषाणउं भलइं दीठा । **जेसिं०** जेहनी मोहादिक चेष्टा अब्रह्मचारीपणुं[5] अनइ क्रोधादिके करी क्रूरपणउं देखीनइ **सुगुरूण०** सुगुरु सुविहित चारित्रीया ऊपरि अति गाढी भक्ति भव्य[6] रहइं उपजइ । कुमति दीठी पापइ भाति ऊपरि मन न वइसइं ॥ ४१ ॥

[जि.] ईहां ग्रंथकार **श्रीनेमिचंद्र भंडारी** कहइ छइ । जउ हउं कुगुरु भ्रष्टचारित्रीया गुरुई **संसिमो** प्रसंसउं वर्णवउं ।

---

१ भोला. २ घातइं. ३ 'छइ' नथी. ४ अइनित्रडा. ५ °पणउं, ६ भव्य जीव.

जेसिं जेहां कुगुरुनी मोहादिक **चंडिमा** कूरता **दट्ठुं** देखी करी सुगुरु सुविहित ऊपरि भक्ति अतिनिविड अतिगाढी भविक जीवहूइं हुई। जिम ऊभति दीठीइं भातिइं मन रहइ ॥ ४१ ॥

[मे.] ते कुगुरुं वखाणउं हूं भलइं दीठउ। जेहनी अब्रह्मसेवादिक कुचेष्टा देषी अनइ सुगुरु ऊपरि भक्ति अतिनिविड हुई। भविक जननइं कारणि ॥ ४१ ॥

[सो.] विरूउ काल देखी जाणहूइं विशेष सम्यक्त्व उल्लसइ। ए वात कहइ छइ।

[जि.] अथ मिथ्यात्वोदयिइं हूंतइ भव्य जीवहूइं सम्यक्त्व उल्लसइ। ए वात कहइ।

जह जह तुट्टइ धम्मो जह जह दुट्ठाण होइ अइउदओ[1]।
सम्मद्दिट्ठिजियाणं तह तह उल्लसइ सम्मत्तं ॥ ४२ ॥

[सो.] ईणइं पांचमइ आरइ दुःखमाकालि जिम जिम धर्म त्रूटइ ओछउ[2] थाइ। **जह जह दुट्ठाण॰** अनइ जिम जिम दुष्ट पापी जीव रहइं अतिउदय ठाकुराई ऋद्धि मान महत्त्व हुइ। **सम्मद्दिट्ठि॰** तिम तिम सम्यग्दृष्टि जाण जीव रहइं सम्यक्त्व गाढउं गाढउं उल्लसइ दृढ थाइ। जिसिउं परमेश्वरि दुःखमाकालनउं स्वरूप कहिउं हूतउं तिसिउंइं जि देखीइ छइ। इम परमेश्वरना वचन ऊपरि आस्था आवइ। जिम ए साचउं तिम बीजाइं परमेश्वरनां वचन साचा। इसी परि सम्यक्त्व दृढ थाइ ॥ ४२ ॥

---

1 जि इहं उदओ २ उछउ

[जि.] जिम जिम धर्म तूटइ। वली जिम जिम दुष्टाणा दुष्टाशयमूइं इह दुःषमाकालि उदओ अति प्रौढिमा हुइ तिम तिम सम्यग्दृष्टि जीवहूइं सम्यक्त्व उल्लसइ वाधइ ॥ ४२ ॥

[मे.] ईणि दुःखमाकालि जिम जिम धर्म त्रूटइ ओछउ थाइ तिम तिम पापी जीव दुष्टनइं उदय महत्त्व हुइ। अनइ सम्यग्दृष्टि जीवनइं सम्यक्त्व गाढउं उल्लसइ दृढ थाइ ॥ ४२ ॥

[सो.] हवडांनइ कालि धर्मना धणीनइं जं उदय नही। ते कारण कहइ छइ।

[जि.] सम्यग्दृष्टि जीवहूइ सम्यक्त्व वाधतइं हूंतइ अति उदय न दीसइ।

[मे.] हिवडांनइ कालि धर्मवंतइं उदयु नहीं ते कहइ।

जयजंतुजणणितुल्ले अइउदंओ जं न जिणमए होइ।
तं किट्टकालसंभवजिआण अइपावमाहप्पं ॥ ४३ ॥

[सो]. **जयजंतु०** जगना जीव रहइं जननी माता समान छई प जिनमत सर्व जीवहूइं सुखदायक हितकारक भणी। एहवा जिनमतमाहि जं जीव रहइं अतिउदय नही, ऋद्धि मान महत्त्व ठाकुराई नही। **तं किट्ठ०** ते क्लिष्टकाल विरूउ दुःखमाकाल हुंड अवसर्पिणी भस्मक ग्रहनइं उदय करी सहित एवहि कालि ऊपना जे भारेकम्मी[1] जीव तेहना पाछिल्या भवनां अतिपापनउं माहात्म महिमा जाणवउ[2]। जे धर्म लहइं छइं ते भव्य जीव आगलि केतलइं कालि मोक्ष जाणहार[3] इसिउं जाणिवउं ॥ ४३ ॥

---

१ भारीकम्मी. २ जाणिवउ. ३ जाणहार भणी.

[जि.] जिनेंद्रनी आज्ञाई जि करी **पूआपमुहं** पूजाप्रमुख धर्मकार्यई **किचं** करिवउं। अनेरउं किसुं कहिवउं। जइ जिनपूजादिक धर्मकार्य वीतरागनी आज्ञांइं करइ तउ सफल। अन्यथा निष्फल इति भाव'। **भूयमणुग्गहरहिअं आणाभंगाउ दुहदायं।** जिनाज्ञाभंगइतउ जीवानुकंपारहित हूंतउं धर्मकार्य कीधउंई सामुहुं दुःखदायक हुइ ॥ ४५ ॥

[मे.] कर्त्तव्य धर्मनां करणीय वांदणां पडिक्कमणां पूजाप्रमुख वीतरागनी आज्ञाइं जि करतां सफल थाइं। भूत प्राणी तेह्नउ अनुग्रह अनुकंपा तिणि करी रहित ईणिहि जि कारणि आज्ञानउ भंग। अनइ तेह आज्ञाभंग लगी धर्मनां कर्त्तव्य दुःखदायक हुइं ॥ ४५ ॥

[सो.] एक जीव घणाइं धर्मकर्त्तव्य करइं। पुण काई मिथ्यात्व न छांडइ। एह ऊपरि कहइ छइ।

[जि.] अथ मिथ्यात्वी लोकहइं हितवचन बोलइ।

कट्ठं करंति अप्पं दमंति दव्वं चयंति धम्मत्थं[1]।
इक्कं न चयंति[2] मिच्छत्तविसलवं जेण बुड्डंति ॥ ४६ ॥

[सो.] कट्ठं करंति॰ एक जीव छट्ठट्ठम मासक्षपणादिक अनेक तपनां कष्ट करइं। **अप्पं दमंति** आपणपउं दमइं। शील पालइं। अनेक खावापीवाना नियम पालइं। **दव्वं चयंति॰** धर्मनइ कारण[3] लक्ष्मी सइ सहस लाष कोडिप्रमाण वेचइ। **इक्कं न चयइ॰** पुण एक मिथ्यात्वरूपिआ विसनउ[4] लव न मूंकइ। काई काई मिथ्यात्व करइं जि। **जेण बुड्डंति** जीणइं मिथ्यात्वि[5] करी संसारसमुद्रमाहि बूडाइं[6] ॥ ४६ ॥

---

१ जि. धम्मत्थी. २ मे. चयहिं. ३ कारणि. ४ विसनु. ५ मिथ्यात्व. ६ बूडई.

[जि.] कष्ट करइ। आपणपउं दमइं। धर्मार्थी लोक द्रव्य गृह सर्वस्वसार **चयंति** त्यजइं। एतलउं पूर्वोक्त करइं। पुण एक उत्सूत्रविपलव न त्यजइं, जिणि उत्सूत्रविपलवि करी जीव संसारसमुद्रि बूडइं। तिणि कारणि उत्सूत्र बोलिवउं नही ॥ ४६ ॥

[मे.] कष्ट करइं। आपणपउं दमइं। इंद्रिय वशि करइं। धर्मनइ काजि शत सहस्र धन वेचइं। पणि एक उत्सूत्रनउ लवलेश न मूंकइं, जेह लगी संसारसमुद्रमाहि बूडइं ॥ ४६ ॥

[सो.] धर्मवंति सुगुरुनी संगति करिवी। ए वात कहइ छइ।

[जि.] अथ सुसंसर्गि धर्मोपराग वाधइ इसुं कहइ।

[मे.] पुण्यवंते सुगुरुनी संगति करिवी।

सुद्धविहिधम्मराओ वड्ढइ सुद्धाण संगमे सुअणा[1]।
सो विअ असुद्धसंगे निउणाण वि गलइ अणुदिअहं ॥४७॥

[सो.] **सुद्धविहि॰** सूधी विधि खरु आचारु खरउ धर्म तेह ऊपरि अनुराग बांधइ। **सुद्धाण सं॰** जु सूधा खरा[2] चारित्रिया गुरु अथवा खरा श्रावकनी संगति करइ। हे सुजन ! **सो विअ॰** ते खरी विधि खरा धर्मनउ अनुराग असुद्ध[3] भ्रष्टाचारु गुरु भ्रष्ट श्रावकनी संगति करइ ते **निउणाण वि** डाहाइ रहइं गलइ जाइ। निरंतर[4] उछड़ थाइ। यत उक्तं श्री**उपदेशमालायां**—

आलावो संवासो वीसंभो संथवो पसंगो अ।
हीणायारेहिं समं सव्वजिणिंदेहिं पडिकुट्ठो ॥

१ जि. मे. सुयण. २ 'खरा चारित्रिया गुरु अथवा' एटलुं नथी. ३ असुद्ध सु. ४ निरंतर.

अन्नुन्नजपिएहिं हसिउद्धसिएहिं खिप्पमाणो अ ।
पासत्थमज्झयारे बरा वि जई बाउली होइ ॥ (गा २२३-२४)

[जि.] हे सयण स्वजन ! **सुद्धाण संगमे** शुद्ध गुरुनइ सजोगि सुद्ध विधि निर्मलाचार धर्मानुराग वाधइ । **सो विअ** ही जु शुद्धविधिधर्मानुराग अशुद्ध भ्रष्टचारित्रियानइ प्रसगि **निउणाण वि** निपुण डाहाईनउ अनुदिन प्रतिदिन **गलइ** विणसइ । मूर्खनउ धर्मानुराग कुससर्गि विणसइ । तेहनउ किसु ॥ ४७ ॥

[मे.] सूधी वीतरागनी भाषी विधि तेहनइ विषइ अनुराग वाधइ । सुद्ध खरा चारित्रिया तेहनइ सगमि । हे स्वजन ! ते पुण असूधा उत्सूत्रना बोलणहार तेहनइ सगिइ निपुण डाहाइनइ विषइ धम्मनी मति गलइ । अनुदिवस निरतर ॥ ४७ ॥

[सो.] जिहा भ्रष्टाचारनु बल हुइ तिहा धर्मवतिइ न वसिवउ । ए वात बिहु गाहे कहइ छइ ।

[जि.] मिथ्यात्वीमाहे श्रावकि न वसिवउ । इसु कहइ ।

[मे.] जिहा कुचारित्रिया वसइ रहइ तिहा धर्मवते वसिवउ नहीं । ए सबध बिहु गाहे कहइ ।

जो सेवइ सुद्धगुरू असुद्धलोआण सो महासत्तू ।
तम्हा ताण सयासे बलरहिओ मा वसिज्जासु ॥ ४८ ॥

[सो.] जे सुद्ध गुरु सुविहितचारित्रिया तेहनी सेवा करइ ते **असुद्धलोआण०** अशुद्ध मिथ्यात्वी भ्रष्टाचार रहइ जे आश्रित लोक छइ तेह रहइ ते महावइरी वेरु भणी ते तेहरइ[1] उच्छेदिवा जि[2] वाछइ । **तम्हा ताण०** तेह भणी मिथ्यात्वी भ्रष्टाचाराश्रित लोक कन्हइ

१ रहइ २ 'जि' नथी

श्रावकि बलरहित हुंतइं न वसिवउं । जु कांई ठाकुर महंता प्रधाननउं बल हुइ तउ वसिवउं ॥ ४८ ॥

[जि.] जे पुरुष सुद्ध गुरु सेवइ ते शुद्ध गुरु सेवणहार श्रावक **असुद्धलोआण** मिथ्यात्वाश्रितहूइं **महासत्तू** महावइरी । **तम्हा** तिणि कारणि **ताण सगासे** तेहां असुद्ध लोकनइ समीपि **बलरहिओ** नीवल हूंतइ श्रावकि न विसवउं । किंतु साहम्मीमाहे वसिवउं ॥ ४८ ॥

[से.] जे सूधा गुरुनइं सेवइं ते अशुद्ध लोक मिथ्यात्वी भ्रष्टाचारीनइं ते महावयरी जेह भणी तेहनइं उच्छेदिवा वांछइ। **तम्हा** तेह भणी भ्रष्टाचारी मिथ्यादृष्टि आश्रित लोक कन्हइ श्रावकि बलरहित हूंतइ वसिवउं नहीं ॥ ४८ ॥

[जि.] एह जि अर्थु प्रकारान्तरि कहइ ।

समयविऊ असमत्था सुसमत्था जत्थ जिणमए अविऊ ।
तत्थ न वट्टइ धम्मो पराहवं[1] लहइ गुणरागी ॥ ४९ ॥

[सो.] **समयविऊ** सिद्धांतना जाण धर्मवंत जिहां असमर्थ हुइं । **सुसमत्था०** अनइ जिहां जिनमतना अजाण मिथ्यात्वी भ्रष्टाचारी अतिसमर्थ हुइं । **तत्थ न वट्टइ०** तिहां धर्म न वर्त्तइ । चालइ नहीं । तिहां **पराहवं०** गुणनउ अनुरागी धर्मी[2] जीव परि परि पराभवइ[3] जि लहइ । अपमान जि पामइ ॥ ४९ ॥

[जि.] जिणि स्थानकि **समयविऊ** सिद्धांतना जाण जैन असमर्थ हुइं अनइ वली **जिणमए अविऊ** सिद्धांतना अजाण मिथ्यात्वी लोक जिहां **सुसमत्था** अतिसमर्थ सबल वसइं तिहां

१ से. पराभवं. २ धर्माथी. ३ पराभव.

वसता श्रावकनउ धर्म न वाधइं। किंतु सामुहउं धर्मानुरागी श्रावक पराभव लहइं ॥ ४९ ॥

[मे.] समय सिद्धांत तेहना जाण जिहां असमर्थ हुइं अनइ जिनमतना अजाण जिहां गाढा समर्थ हुइं तिहां धर्म वाधइ नहीं। तिहां गुणानुरागी धर्मवंत पगि पगि पराभव लहइ। हलपण पामइं ॥ ४९ ॥

[सो.] कुमार्गी पापी समर्थ हुंतउ जं धर्मना काज माहि न मिलइ तउ रूडउं। ए[1] वात कहइ छइ।

[जि.] मिथ्यात्वी लोक धर्मवंत न हुइ तउ भलउं। तेहनउं कारण कहइ।

जं न करइ अइभावं कुमग्गसेवी[2] समत्थओ धम्मे।
ता लट्ठं अह कुज्जा ता पीडइ सुद्धधम्मत्थी ॥ ५० ॥

[सो.] जं न करइ० जं अमार्गसेवी कुमार्गी मिथ्यात्वी खुंट खरड[3] राजादिकि मानिउ समर्थ हूंतउ धर्मनइ विषइ अतिभाव न करइं, धर्मना काजमाहि न मिलइं **ता लट्ठं** तु रूडउं। जु धर्मनां काजमाहि मिलइ, माहिल्या[4] मर्म जाणइ तउ **ता पीडइ०** शुद्ध धर्मार्थी रहइं चाडी[5] भाडीइं करी पीडइ। अथवा जं ते मिथ्यात्वी समर्थ हुंतउ आपणा धर्म मिथ्यात्व[6] म्लेच्छादिकना मत उपरि अतिभाव न करइं, खरड वटींगइ जि जउ हुइ तउ भलउ। जउ ते आपणा मत ऊपरि घणउ भाव करइ तउ आपणा मतनइं कदाग्रहइं धीजाइहूइं

---

१ 'ए...छइ' नथी. २ जि. उमग्गसेवी, मे. अमग्गसेवी. ३ खरड चाड. ४ माहिला. ५ चाडीचवाडीई. ६ मिथ्यात्वी.

आपणा मत मनाविवा भणी शुद्ध धर्मार्थी रहइं पीडइ। आपणउ धर्म करावइ बलात्कारिइं ॥ ५० ॥

[जि] उन्मार्गसेवी मिथ्यात्वी समर्थ सबल हूंतउ धर्म ऊपरि अतिभाव गाढी वासना ज न करइं **ता लट्ठं** ते भलउं। **अह** अथवा मिथ्यात्वी धर्म ऊपरि आदर करइ **ता** तउ पछइ **सुद्धधम्मत्थी** निर्मल धर्मकरणहारहूइं पीडइ दूहवइ ॥ ५० ॥

[मे.] जे कुमार्गनउ सेवणहार समर्थइ हूंतउ धर्मनइ विषइ अतिभाव न करइ धर्मना काममाहि मिलइ नही **ता लट्ठं** तउ रूडउं। अथ जउ किमइ करइ तउ आपणा मत मनाविवा भणी सुद्ध धर्मार्थीनइं चाडीहनी करी पीडइ। आपणउ धर्म बलात्कारि करावइ ॥ ५० ॥

[सो.] जइ सर्व श्रावकहूइं[1] एकपणु हुइं तउ धर्मनइं[2] पराभव करी न सकइं। ए वात कहइ छइ।

[जि.] श्रावकहूइं वसिवानउ प्रकार कही साहम्मीमाहे समेला होइवउं। इसुं कहइ छइ।

जइ सव्वसावयाणं एगत्तं हुंत मिच्छवायम्मि।
धम्मट्ठियाण सुंदर ता कह णु[3] पराहवं कुज्जा ॥ ५१ ॥

[सो.] **जइ सव्व०** जइ सर्व पक्षना श्रावक रहइं मिथ्यात्वना वादनइ विषइ एकमत हुइ। सविहूंनउ मनु एक सरिखउ मिथ्यात्व निर्लोठवा अथवा जिनमत स्थापवा ऊपरि हुइ तउ **धम्मट्ठियाण०** धर्मार्थी लोक रहइ हे सुन्दर! **ता कह०** तउ मिथ्यात्वी पराभव अपमान किम करत? न करत। पुण कालनइ

---

१ रहइं. २ धर्म रहइं. ३ जि. कहण.

विशेषिइं माहोमाहि जि जूजूआं मन । तीणइं करी मिथ्यात्वी पराभव करइं ॥ ५१ ॥

[जि.] जइ किमइ सर्व श्रावकहूइं एकमत एकधर्मीपणउं हुंत होयते ता तउ हे सुन्दर ! मिथ्यात्ववादमाहे धर्मार्थी धर्मवंत श्रावकहूइं कहण कउण-एक पराभव अपमान कुज्जा करत ? अपि तु श्रावकहूइं कोइ पराभव न करत । किं तु सहू कोई मानत ॥ ५१ ॥

[मे.] जउ किमइ सर्व पक्षना श्रावक मिथ्यात्वी साथि विवादि ऊपनइ हूंतइ एकइं मति हुइं तउ हे सुंदर ! धर्मार्थी धर्मस्थित तेहनइं, कहउ न, कउण पराभव करत ? अपि तु कोई न करत ॥ ५१ ॥

[सो.] जे पुरुष महर्द्धिक धर्मनु आधार हुइं तेहनी प्रशंसा करइं छइं ।

[जि.] अथ श्रावकाहे मोटा श्रावकहूइं गरूयडि देखालइ ।

तं जयइ[1] पुरिसरयणं सुगुणड्ढं हेमगिरिवरमहग्घं ।
जस्सासयम्मि सेवइ सुविहिरओ सुद्धजिणधम्मं ॥५२॥

[सो.] ते पुरुषरूपिउं रत्न जयवंत वर्त्तउ । **सुगुणड्ढं** उत्तमगुणे करि आढ्य पूरिउं । **हेमगिरि०** सोनानउ[2] पर्वत मेरु तेहनी परि महार्घ[3] ते पुरुष सर्वोत्तम कहिवाइ । **जस्सासयम्मि** जेहनइ आश्रइ जेहनइ वलि[4] सांनिध्यइं करी **सुविहिरओ** सुविधिरत साचा धर्मनउ आराधक सूधउ निष्कलंक जिनधर्म सेवइ आराधइ । जेहनइ बलि धर्म चालइ, जे पुरुष धर्मवंतनइं आधार दिइ ते पुरुष गाढ[5] उत्तम कहीइ ॥ ५२ ॥

---

१ जि. मे. जयउ. २ सोनाइ. ३ महर्घ्यं. ४ बलि. ५ गाढ़.

[जि.] ते पुरुषरत्न जयवंतु हुउ। किसउ छइ पुरुषरत्न? **सुगुणड्ढं** सु भला परोपकारादिक गुण तेह करी आढ्य समृद्ध भरिउ, पूरिउ। वली किसु छइ? हेमगिरिवर मेरु पर्वत तिह सरीषउ महर्घ्य पूज्य मानीतउ। मोटाई करी मेरुपर्वत सरीषउ। ते पुरुषरत्न कउण?. **जस्सासयम्मि** जेह पुरुषरत्ननइ आश्रयि आधारि सुविधिरत्त सन्मार्गसेवणहार सुश्रावक **सुद्धजिणधम्मं** निर्मलउ जिनधर्म सेवइ ॥५२॥

[मे.] ते पुरुषरत्न जयवंतउ हुउ, जे सोभन भला गुण तिणि करी आढ्य सहित। वली ते पुरुष केवहउ? मेरुपर्वत तेहनी परि महर्घ्य। जेहनइ आश्रइ सांनिध्य लगी सुविधि भली विधि तेहनइ विषइ तत्पर हूंतउ सूधउ जिनधर्म सेवइ आराधइ ॥५२॥

[सो.] वली एह जि वात कहइ छइ।

[जि.] वली संघि पुरुषिहूइं मोटाई प्रकासइ।

सुरतरुचिंतामणिणो अग्घं न लहंति तस्स पुरिसस्स।
जो सुविहियजणाणं धम्माधारं सया देइ ॥५३॥

[सो.] कल्पद्रुम चिंतामणि लोकमाहि मनोवांछित देनहार[1] मणी अति उत्तम कहीइं। पुण तेह पुरुषनउ ते अर्घ मूल न लहइ। ते पुरुष तेहइ पइं[2] गाढउ[3] उत्तम। **जो सुविहि॰** जे पुरुष सुविधिरत खरी विधि खरी सामाचारीना आराधण्हार[4]. लोक रहइं धर्माधार सदैव दिइं। कल्पद्रुम चिंतामणि एकइ[5] जि भवि इह लोकनु उपकार मात्र करइं। आ पुरुष धर्मनु उपकार करतउ

---

१ दिन्हार. २ पाहइं. ३ गाढ. ४ आराधन्हार. ५ एक.

स्वर्गमोक्षादिकनां सुख दिइं । तेह मणी कल्पद्रुम चिंतामणि सरीषु किम कहिवाइ ? ॥ ५३ ॥

[जि.] तेह पुरुषहूइं सुरतरु कल्पवृक्ष चिंतामणि रत्न अर्घ पूजा न लहइं । तेह पुरुष सरीषा न हुइं । किं तु कल्पवृक्ष चिंतामणि पाहइं अधिक दातारपणातउ ते पुरुष मोटउ ते किसु ? जे पुरुषरत्न सुविधिरत जनहूइं सन्मार्गतत्पर लोकहूइं धर्मनु अवष्टंभ दिइं ॥ ५३ ॥

[मे.] कल्पवृक्ष चिंतामणि प्रमुख पदार्थ धर्माधार पुरुष आगलि मूल काई न लहइं । समवडि न पामइं । जे सुविधि भली विधि तेहनइं रत जन लोक तेहनइं सदा धर्मनउ आधार दिइं ॥ ५३ ॥

[सो.] को कहिसिइ 'ते[1] पुरुषनइं वर्णविवइं[2] सिउं काज छइ ?' ए वात ऊपरि कहइं[3] ।

[जि.] तिणि कारणि तेहा सत्पुरुषना नामग्रहण करिवउं । पवित्र होइवा भणी । इसुं कहइ ।

लज्जंति जाणिमो हं सप्पुरिसा निअयनामगहणेणं ।
पुण तेसिं कित्तणाओ अम्हाण गलंति कम्माइं ॥ ५४ ॥

[सो.] लज्जंति० ए वात जाणउं[4] । जे[5] सत्पुरुष आपणा नामनइं लेतइं, कोई तेहनउं नाम लेई वषाणइ तु लाजइं जि । नींतुं सांभलुं जोईं । पुण तेसिं० पुण तऊ तेहनुं कीर्त्तन गुण बोलउं[6] छउं[7] । ते कारण ए तीणइं करी अम्हारां कर्म गलइं पाप फीटइं । कर्मनिर्जरा हुइ । आपणाइ जि लाभ भणि कीजइ छइं । इस्यु भाव ॥ ५४ ॥

१ तेह २ वर्णवइं ३ कहइ छइ. ४ जाणउ छउं. ५ जे. ६ बोल्इं. ७ छइं.

[जि.] हउं इसुं जाणउं । सत्पुरुष धर्माधारनइ दातार पुरुष निजक नामग्रहण करी लाजइं । जइ लाजइं तउ लाजउ । **पुण तेसिं कित्तणाओ** पुण तेह सत्पुरुषनां नामकीर्त्तनद्वतउ बोलिवातउ अम्हारां कुकर्म गलइं फीटइं । सत्कर्म उदय पामइं ॥ ५४ ॥

[मे.] हउं इसउं जाणउं जे सत्पुरुष आपणा नामग्रहणि लीजतइ लाजइं । पणि तेहनउं कीर्त्तन वषाण करतां अम्हारां कर्म गलइं । एह भणी सत्पुरुषनउं नामु लीजइ ॥ ५४ ॥

[सो.][1] धर्मइ करतां जि[2] धर्म न हुइ । ए वात कहइ छइ ।

[जि.] जिनाज्ञा पापइ धर्म कीधउ निःफलु । इसुं कहइ ।

आणारहिअं कोहाइसंजुअं अप्पसंसणत्थं च ।
धम्मं सेवंताणं न य कित्ती नेव[2] धम्मं च ॥ ५५ ॥

[सो.] जे धर्म आराधइं पुण वीतरागनी आज्ञारहित निह्नवादिकनी परि । अनइ क्रोधादिकिइं करी संयुत धर्म करइं । यावज्जीव वरिस चउमास ऊपहिरा क्रोध मान माया लोभ धरइं । परइ धर्मक्रिया करइं । तथा **अप्पसंसणत्थं च** । को आपणी प्रशंसा भणी धर्म करइ । जिम 'लोक मू रहइं वषाणइ । हुं लोकमाहि रूडउ भावउं' इसी बुद्धिइं धर्म करइ । **धम्मं०** ईणइ प्रकारइ धर्म करतांइं एह्रइं[3] **न य कित्ती०** इह लोकि कीर्त्तिइ नही । परलोकि धर्मऊ नही । कर्मक्षय न हुइं । काज कांई सरइ नहीं ॥ ५५ ॥

[जि.] जिनाज्ञारहित, क्रोध मान माया लोभप्रमुखसंजुक्त आत्मप्रशंसानइ अर्थि धर्म सेवता धर्म करता पुरुषहूइं **न य कित्ती०** लोकमाहे वर्णनाइ नही । अंतरंगमाहे धर्म नही ॥ ५५ ॥

---

१ जिम. २ जि. मे. नेय. ३ एह्रइं.

[**मे.**] आज्ञाइं करी रहित, क्रोधादिसंयुक्त, आपणी प्रसंसानइ अर्थि धर्म सेवता हुंता कीर्त्ति पणि न हुइ । धर्म पणि न हुइं ॥५५॥

[**सो.**] वली उत्सूत्रभाषी ऊपरि वि गाह कहइ छइ ।

[**जि.**] अथ उत्सूत्रभाषी पुरुपनउं स्वरूप कहइ ।

[**मे.**] वली उत्सूत्रभाषी ऊपरि वि गाह कहइ ।

इअरजणसंसणाए धिट्ठा[1] उस्सुत्तभासिए न भयं ।
ही ही ताण नराणं दुहाइं जइ मुणइ जिणनाहो ॥५६॥

[**सो.**] **इअरजण०** इतरजन सामान्य अजाण लोक तेहनी प्रशंसा करइं । 'ए भला' इम वषाणइं । तीणइं करी धीरष्ट हुंता अभिमानि चड्या उत्सूत्र बोल्तां मनमाहि भय न आणइ । भावइ तिस्यां उत्सूत्र प्ररूपइं । **ही ही०** अहाहा ! तेह पुरुष रहइं परलोकि दुर्गति ग्यां हुंतां जे दुःख हुसिइं ते दुःखनुं[2] स्वरूप जिननाथ श्रीसर्वज्ञ जि जाणइ । अनेरउ[3] -की न जाणइ । ति दुख जिह्वाए केतलीए न बोलाइं ॥५६॥

[**जि.**] इतर जन सामान्य लोक तेहनी प्रसंसाइं करी **हिट्ठा** साहंकार आपणपउं मोटा मानइं जे अनइं जेहहूइं **उस्सुत्तभासिए** उत्सूत्रसिद्धाते न कूडउं तेहंनउं भाषण बोलिवउं तेह हूतउ भय नही । कूडउं बोल्ता जेहहूइं पापनउ भय नहीं । **ही ही** खेदे । तेहे सगर्व तणा उत्सूत्रभाषक नर तणा **दुहाइं** हउणहार दुख जइ किमइ मुणइ जाणइ तउ **जिणनाहो** श्रीसर्वज्ञदेव जाणइ । दुःखहूइं प्रचुरपणातउ अनेरउ छद्मस्थ जाणी न सकई । जे सगर्व हुंतु उत्सूत्र बोलइ तेहहूइं अनंता दुख हुइ । जिम मरीचिहूइं उत्सूत्र भाषणतउ घणा हूया ॥५६॥

---

१ जि. मे हिट्ठा २ दुखनउं ३ अनेरु.

[मे.] इतर जन सामान्य लोक तेहनी प्रसंसा सांभली हृष्ट हर्षित हूंता अहंकारि चड्या उत्सूत्र बोलता भय नाणइं । भावइ तिम उत्सूत्र बोलइं । ही ही इसइ खेदि । ते पुरुपनइ परलोकि जे दुक्ख होइस्यइ ते वीतरागइ जि जाणइ ॥ ५६ ॥

[जि.] अथ उत्सूत्रभाषणनं फल कहइ ।

उस्सुत्तभासगाणं बोहीनासो अणंतसंसारो ।
पाणचए वि धीरा उस्सुत्तं ता न भासंति ॥ ५७ ॥

[सो.] **उस्सुत्त०** उत्सूत्रना बोल्नहार[1] रहइं बोधिबीजनउ नाश हुइ । आवते भवे सम्यक्त्व लहइ[2] नहीं । अणंतउ संसार वाधइं । अनंता भवनां दुःख भोगवइ । **पाणचए वि०** तेह भणी प्राणत्यागिइं जीवितव्यनइ संकटि पडइ[4] जे धीर धर्मवंत ते उत्सूत्र न बोलइं ॥ ५७ ॥

[जि.] उत्सूत्रभापक पुरुपहइं बोधि सम्यक्त्व तेहनउ नास हुइ । तिणि कारणि बोधि पापइ अणंतउ संसार । **ता** तिणि कारणि प्राणत्यागिई प्राणई जातइ हुंतइ धीर धर्मपर साहसिक उत्सूत्र न भापइं न बोलइं । वरि प्राणई नीगमइं । पुण कूडउं न बोलइं । तथा चोक्तं श्रीउपदेशमालायां—

जीअं काऊण पणं **तुरुमिणि दत्तस्स कालियज्जेणं ।**
अवि य सरीरं चत्तं न य भणियमहम्मसंजुत्तं ॥ (गा. १०५)

[मे.] उत्सूत्रना बोल्णहारनइं बोधिबीजनउ नाश हुइ । अनंतउ संसार हुइ । ते भणी प्राणनइ त्यागिइं धर्मवंते उत्सूत्र न बोलिवउं ॥ ५७ ॥

---

१ ते. २ बोल्न्हार. ३ लहई. ४ पडिइ.

[**सो.**] अविधि[1] वखाणवउ नहीं। ए वात कहइ छइ।

[**जि.**] उत्सूत्रभाषणनिषेध करी असन्मार्गनी वर्णनाइ न करिवी। इम कहइ छइ।

मुद्धाण रंजणत्थं अविहिपसंसं कयाइ[2] न करिज्जा।
किं कुलवहुणो कत्थ वि थुणंति[3] वेसाण चरिआइं ॥५८॥

[**सो.**] **मुद्धाण०** मुग्ध लोल[4] तेहना रंजवा[5] आवर्जवा भणी **अविहि०** उन्मार्गमेलु कोई करतु हुइ तेहनी प्रशंसा जाणि कहीइं[6] न करिवी[7]। दृष्टांत कहइ छइ। **किं कुल०** उत्तम कुलनी वधू स्त्री महासती ते किहांइ वेश्या अधम स्त्री असती तेहना चरित्र वखाणइ ? न वषाणइं जि। तिम[8] उत्तम उन्मार्गनी प्रशसा न करइं जि ॥ ५८ ॥

[**जि.**] मुग्ध मूर्ख तेह रंजिवानइ अर्थि कारणि अविधिप्रशंसा कुमार्गाचारनी वर्णना **कयावि** किवारइं सत्पुरुष **न करिज्जा** न करइं। **किं कुलवहुणो** कुलवधू कुलस्त्री **वेसाण चरियाइं** वेश्याना चरित्र कर्त्तव्य **कत्थ वि** किहांइ स्तवइं वर्णवइ ? अपि तु न स्तवइं। कुमार्गनी प्रससाइं कीधी हुंती दोष भणी हुइ इति भाव ॥ ५८ ॥

[**मे.**] मुग्ध लोला लोक तेहनइ रंजिवा भणी अविधिनी प्रसंसा कहीइ न करिवी। किसउं कुलवधू किवारइं वेश्या असतीना चरित्र वषाणइं ? अपि तु न वषाणइं। तिम उत्तम उन्मार्गनी प्रशंसा न करइं जि ॥ ५८ ॥

---

१ अवयि २ जि. मे. कयावि ३ जि थुवंति ४ लोल ५ रंजवा
६ कहीइवि ७ करवी ८ ते.

[सो.] वीतरागनी आज्ञा जि ऊपरि वात कहइ छइ ।

[जि.] किसा जीव जिनाज्ञा न भांजइ । किसा भांजइ । इसी व्यक्ति करइं ।

जिणआणाभंगभयं भवसयभीआणं[1] होइ जीवाणं ।
भवभयअभीरुआणं जिणआणाभंजणं कीडा ॥ ५९ ॥

[सो.] **जिण०** जिन वीतरागनी आज्ञानु भंग तेहनु[2] भय तेह रहइं हुइ । **भवसय०** जे संसार वांधिवानइं भइं करी बीहता हुइं जीव तेह रहइ[3] हुइ । ते इसिउं जाणइं । 'वीतरागनी आज्ञा भांजीनइ रापे घणा संसारमाहि रुलुइं[4] ।' जे **भवभय०** जे संसारना भय थिकु[5] नथी बीहता, धीरठपणुं करइं तेहरइ[6] जिन वीतरागनी आज्ञानुं जे भाजिवउं ते क्रीडामात्र । लीलाइं भाजइं । भांजता वार कांई न लागइ ॥ ५९ ॥

[जि.] **भवसयभीयाण** जन्मनां शत तेह हूंता भीत बीहता जे जीव तेह जीवहूइं जिनाज्ञानउ भंग भय छइ । जन्ममरण दुःख हूंता जे बीहइ ते जीव जिनाज्ञा न भांजइ । अनइ वली जे जन्ममरण हूंता अभीरुक अभीहता तेहनीं **कीडा** रामति **जिणआणा-भंजणं** जिनाज्ञालोपमय जि । जे दुःख हूंता न बीहइं ते जिनाज्ञा भांजइ ॥ ५९ ॥

[मे.] जिन वीतराग तेहनी आज्ञानउ भंग तेहनउ भयु केहनइं हुइ ? जे भव संसारना भय तेहनइ विषइ बीहइं । अनइ जे संसार हूंता बीहता नथी तेहनइं जिनआज्ञानउं भांजिवउं क्रीडामात्र । हेलाइं भांजइं ॥ ५९ ॥

---

१ °भय°. मे. °भय°. २ तेहनउं. ३ रइं. ४ रलुं. ५ थिकुउ. ६ तेह रहइं-

[सो.] हिव कहइ छइ। मूर्खनउ[1] सिउ दोष ? जे जाण छइ तेह अहकारि चड्या वीतरागनी आण विराधता देखइ नही। ए वात कहइ छइ।

[जि.] जिणिइ जिनाज्ञा भजाइ ते कर्मपरवशता जीवनी कहइ।

को असुआणं दोसो जं सुअसहिआण चेअणा नट्ठा।
धिद्धी कम्माण जओ जिणो वि लद्धो अलद्ध[2] त्ति ॥६०॥

[सो.] को असुआणं॰ अश्रुत अपढ मूर्ख तेहनउ कउण दोस ? **जं सुअ॰** जेह भणी श्रुतसहित पाठना[3] धणी तेह[4] रहइ चेतना नाठी। जाणताइ करता ते वीतरागनी आज्ञारहित उत्सूत्र प्ररूपइ। **धिद्धी॰** पापिया[5] कर्म जि रहइ धिग पड्ड जेहे कर्मे इम जाणइ रोल्वीइ। **जिणो वि॰** जीणइ करी वीतराग देव लाधु[6] अण लाधु थाइ। उत्सूत्र बोलता परमेश्वर ओलपिउइ[7] अणओलपिउ[8] थाइ ॥ ६० ॥

[जि.] असुआणं॰ अश्रुत सिद्धातना अजाण तेहनउ किसु दोष ? अपि तु न कोई। काइ ? **जं** जउ श्रुतसहितनी ज्ञानवतनी चेतना नाठी, जिम वाइ हाथीयाई उडइ जइ तउ पूणी उडियानउ किसु दूषण ? जिहा पडितई विरासीइ तिहा मूर्खनउ किसु दोष ? जेह कर्म लगी श्रुतना जाणई मोल्वीइ तेह कर्महूइ धिकार पडउ। किम ? जउ **जिणो वि** श्रीवीतराग देव लाधुई अणलाधउ करइ। इति इसा कारणतउ कर्म नंद ॥ ६० ॥

[मे.] अश्रुत अपढ तेहनउ कउण दोस ? जउ किमइ श्रुत

१ 'मूर्खनउ   कहइ छइ' एटलो पाठ बीजी प्रतमाथी पडी गयेलो छे
२ मे अलद्धो ३ पाढना ४ सेहइ ५ अथवा पापियां ६ लाधुइ ७ वलपिउइ
८ अणउलिपिउ

सिद्धांत तेहनी चेतना नाठी । अथवा धिग्धिक्कारक कर्मइंजिनइ हु । जेह भणी जिन वीतराग लाधउइ अणलाधउ । कांइं ! उत्सूत्र बोलतां वीतराग अणओळखिउ हुउ ॥ ६० ॥

[सो.] केतलाइ मूर्ख पंडितंमन्य[1] हूंता सूधा धर्मना करणहार रहइ हसइं । ए वात कहइ छइ ।

[जि.] अथ जिनधर्म हास्यस्थानक नही । इसुं कहइ ।

[मे.] केतला सूधा धर्मना करणहारनइं हसइं । ते कहइ ।

इअराण वि उवहासं तमजुत्तं भाय कुलपसूआणं ।
एस पुण कोवि अग्गी जं हासं सुद्धधम्मम्मि ॥ ६१ ॥

[सो.] **इअराण०** इतर अधर्म मूर्ख तेहनुं[2] जं हासुं[3] कीजइ, हे भ्रात बांधव ! कुलीन जे[4] पुरुष छइ तेहनइ अयुक्तउं । कुलीन रहइं तेइइ करिवा[5] नावइं । **एस पुण०** ए पुण मोटउ आगि गाढउ विरूउ । **जं हासं०** जं शुद्ध निष्कलंक धर्मना आराधक रहइं हसीइ ॥ ६१ ॥

[जि.] हे भाय हे भ्रातः ! **इअराण वि** मूर्खइनउं उपहास्य जे हुइ ते उपहास्य कुलप्रसूतहूइं अयुक्तउं । एतावता अकुलोत्पन्ननउं हासउं मूर्खइं न करइं । एषः पुनः कोऽपि अग्निः । आ कोई वली आगि जउ शुद्धइ निर्मलइ धर्मि हासउं ॥ ६१ ॥

[मे.] इतर पामर लोक तेहनूइ हासउं कुलना प्रसूत तेहनइं हे बांधव ! युक्तउं नहीं । ए कोई मोटउ आगि जे सूधा जिनधर्मनउं हासउं कीजइ ॥ ६१ ॥

---

१ °मन्यइ. २ तीहनुं ३ हासं. ४ जेह. ५. कहिवा.

[सो.] गाहा मिथ्यात्वी पापीइ[1] रहइ उत्तम हित करिवा चींतवइं[2]। ए वात कहइ छइ। विहु गाहे करी।

[जि.] अथ सत्पुरुष दुष्टईहूइं हित करइं। इसुं जाणावइ।

दोसो जिणिंदवयणे संतोसो जाण मिच्छपावम्मि[3]।
ताणं पि सुद्धहियया परमहिअं दाउमिच्छंति ॥ ६२ ॥

[सो.] **दोसो०** जेह रहइ जिनेन्द्रना वचन ऊपरि वीतरागना धर्म ऊपरि दोष[4] अनइ मिथ्यात्वि पाप ऊपरि संतोष छइ, मन तिहां चइठूं छइ। **ताणं पि०** जेहनां हियां सूधां निष्कषाय निर्मल छइं ते तेहइं[5] रहइं धर्महित देवा वांछइं। धर्मनु लाभ करिखुं[6] चीतवइ। जाणइं किम्हइ ए[7] वापडा धर्म मिलइं तू रूडउं ॥ ६२ ॥

[जि.] **जाण** जेहहूइं जिनेन्द्रना वचन ऊपरि द्वेष हुइ, वली जेहहूइं मिथ्यात्ववाद ऊपरि संतोष हुइ, एतावता जिनवचन जे न मानइं, किं तु मिथ्यात्त्व मानइं तेहईहूइं शुद्धहृदय निर्मलचित्त सत्पुरुष परम हित देवा वांछइ ॥ ६२ ॥

[मे.] जेहनइं जिनेन्द्रनां वचन ऊपरि द्वेष हुइ, जेहनइ मिथ्यात्त्व ऊपरि संतोष हुइ, तीयाइंनइं शुद्धहृदय निर्मल चित्तना धणी परम हित देवा वांछइ ॥ ६२ ॥

[जि.] अथ पूर्वोक्त अर्थ युक्तउ करी स्थापइं।

[8] **अहवा सरलसहावा सुअणा सव्वाथ हुंति अविअप्पा।**
उड्डंतविसभराण[9] वि कुणंति करुणं दुजीहाणं ॥ ६३ ॥

१ पापी. २ चीनइ. ३ मिच्छवायम्मि. ४ द्वेष. ५ तेहरइं ६ करिवउ. ७ एहइ. ८ मे. 'सुहाया. ९ जि. मे. डसंति'.

[सो.] अहवा० अथवा जे सुजन हुइं ते सविहुं ऊपरि सरलस्वभाव हूंता किहांइ विकल्प नाणइ। रूडा[1] नइ विरूआइ सविहुं ऊपरि हित चीतवइ। छड्डंत० जे द्विजिह्व साप विषना भर समूह छांडइं गरलइ जि[2] मूंकइं ते[3] ऊपरि उत्तम दयाइ[4] जि करइं। जे चाड दुर्जन कुवचन बोलइं ते ऊपरि उत्तम 'ए बापडउ किमइ पुण्य प्रामिसिइ?' इसी दया जि करइं ॥ ६३ ॥

[जि.] अथवा सरलस्वभाव स्वजन सगा सर्वत्र अविकल्प विकल्परहित हुइं। जिम लोक आपणां लोचन ऊपरि विकल्प भेद आंतरउं कांई न करइं। तथा ते वली सर्परूप द्विजिह्वहूइं करुणा दया करइं। जिम श्रीपार्श्वनाथि सर्प ऊपरि दया कीधी ॥ ६३ ॥

[मे.] अथवा सरलस्वभाव जे स्वजन ते सघले किहांई विकल्प नाणइं। समभाव आणइं। विषना भर गरल छांडइं छइं जे द्विजिह्व सर्प तीहइं ऊपरि करुणा आणइं। जे चाड दुर्जन कुबोल बोलइं तेहइ ऊपरि उत्तम चींतवइं जि 'ए बापडउ किमही पुण्य पामिस्यइ?' इसी जे दया करइं ॥ ६३ ॥

[सो.] सम्यक्त्व गाढुं दुर्लभ छइ। ए वात कहइ छइ।

[सो.] अथ विरला केई एकहूइं सम्यक्त्व छइ। न सघलाईहूइं। इसुं कहइ।

[मे.] सम्यक्त्व गाढउं दुर्लभ छइ। ए वात कहइ।

गिहवावारविमुक्के[5] बहुमुणिलोए वि नत्थि सम्मत्तं।
आलंबणनिरयाणं[6] सड्ढाणं भाय किं भणिमो ॥ ६४ ॥

---

१ रूडाइ. २ 'जि' नथी. ३ तेहइ. ४ दया. ५ जि. मे. गिहि°. ६ जि. °निलयाणं.

[सो.] गिह० घर कुटुंबना व्यापार जेहे छांड्या छइं ते घणा मुनिलोक महात्माइ माहि सम्यक्त्व नथी। जेहनइ काजकाम कांई नथी तेहनां मन रोगि कष्टि[1] आवि मिथ्यात्व करिवा लहवइं। **आलंबण०** जे श्रावक गृहस्थ जेहनइ अनेक छोरू बेटा बेटी विवाह वृद्धि व्यवसाय काजकामनां आलंबन छइं तेहनइ मिथ्यात्वनइ विषइ लहबहिवानूं अहोभ्रात[2]। किसिउं कहीइ ? ॥ ६४ ॥

[जि.] गृहस्थव्यापार गृहप्रारंभादिक तिणि करी विमुक्त रहित एवहा बहु प्रचुर मुनिलोक तेहइमाहे सम्यक्त्व नथी। हे **भाय** हे भ्रातः! आलंबननिरत श्रावकहूइं किसुं भणां ? जिहां सर्वसंगविनिर्मुक्त महात्माईहूइं सम्यक्त्व न हुइं तिहां श्रावकहूइं किहां हूतूं ? इति भावः ॥ ६४ ॥

[मे.] जेहे घरना व्यापार मूक्या छइं एवहा घणा जे मुनिलोक तेहनइं सम्यक्त्व नथी। ए भ्रात! रोगिं कष्टिं पीड्या हूंता आलंबनना निलय जे श्रावक ते जउ सम्यक्त्व थका लहबहइं तिहां सिउं कहिवउं ! ॥ ६४ ॥

[सो.] उत्सूत्र बोलतउ जीव संसारमाहि पडइ। ए वात कहइ छइ।

[जि.] अथ जीव उद्दिसी कि उपदेस बोलइ।

न सयं न परं कोआ जइ जिअ उस्सुत्तभासणं विहिअं।
ता बुड्डसि निब्भंतं निरत्थयं तवकडाडोवं ॥ ६५ ॥

[सो.] न सयं० आपणपइं अथवा अनेरइं कुणहिं[3] काई न थाइ। **कोआ०** कोप लगइ अहंकारि चडिउ जउ रे जीव! उत्सूत्र

---

१ कष्टि दुःखि २ भ्रात बांधवइ. ३ कुणहई.

श्रीजिनवचन[1] विरुद्ध बोलिसि[2] **ता** तउ निभ्रंतं निश्चिइ[3] संसार-समुद्रमाहि बूडिसि[4]। कुणहिं रखाइसि[5] नहीं। जउ विरासइं अजाणिवा लगइ काई उत्सूत्र बोलइ अनइ पछइ जाण्या पूठिइं[6] मिच्छा मि दुकड दिइ, आलोइ तु छूटइं। इसिउ भाव। **निरत्थयं°** उत्सूत्र बोलता तप क्रिया नियम सामाचारीनु स्फटाटोप आडंबर निरर्थक जाणिवउ। तीणइ करी संसारमाहि बूडता न रहीइं ॥ ६५॥

[जि.] कोई आपणउई नही अथवा पर अनेरउ कोई नथी। रे जीव! जइ तइं उत्सूत्रभाषण कीधउं **ता** तउ पछइ निभ्रांत निःसंदेह बूडिसि। तपनउ स्फुराटोप आडंबर निरर्थक। तूं जाणइ छइ 'तपनइ आडंबरि नही बूडउं' ए फोकट जाणि। तिणि कारणि उत्सूत्र म बोले ॥ ६५॥

[मे.] न आपणपइं न परपाहुंति अथवा कोप लगी अहंकारवशि रे जीव! जउ उत्सूत्रनउ भाषण कीधउं तउ तउं भ्रांतिरहित संसार-समुद्रमाहि बूडिसि। उत्सूत्र बोलतां तप नियम क्रिया सामाचारी स्फटाटोप आडंबर निरर्थक फोक जाणिवउ ॥ ६५॥

[सो.] साचा धर्मना धणीनइ हिइ मइसइ नही बीजउ धर्म। ए वात कहइ छइ।

[जि.] अथ जिनेन्द्रनउं वचन हियामाहि धरिवउं। इसुं कहइ।

जह[7] जह जिणंदवयणं[8] सम्मं परिणमइ सुद्धहिअआणं।
तह तह लोअपवाहे धम्मो[9] पडिहाइ नडचरिअं ॥ ६६॥

---

१ श्रीसिद्धांत जिनवचन. २ बोलसिइ. ३ निश्चइ. ४ बूडिसिइं. ५ रखाराइ. ६ 'पूठिइं...न रहीइं' एटलो पाठ सो.नी पहेली प्रतमांथी पडी गयेलो छे. ते बीजीमांथी लीधो छे. ७ गाथा ६६ अने ६७ तथा ते उपरनो बालावबोध पण सो.नी पहेली प्रतमांथी लहियानी चूकथी पडी गयेलो जणाय छे. तेथी ते भाग बीजी प्रतमांथी लीधो छे. ८ जि. जिणिंद°. ९ मे. धम्मं.

[सो.] **जह०** जिम जिम जिनेन्द्रवचन श्रीसर्वज्ञनु धर्म साचउ चोपा हीयाना घणा मनि परिणमइ **तह०** तिम तिम लोकरा प्रवाहिनु धर्म गुण विचार पापइ 'आपणा देव, आपणा गुरु' इत्यादि कदाग्रहरूप नटानाइबिना चरित्र सरीखुं प्रतिभासइ। बाह्य मंडाण जि छइ। लोकरंजना मात्र जि छइ। अभ्यंतर धर्म काई नथी। यत उक्तं **श्रीउपदेशमालायां**—

पढइ नडो वेरग्गं निव्विज्जिज्जा य बहुजणो जेण।
पढिऊण तं तह सढो जालेण जलं समोअरइ॥ (गा. ४७४)

[जि.] जिम जिम सुद्धहृदयने हृदयि जिनेन्द्रनउं वचन सम्यक् प्रकारि परिणमइ वसइ तिम तिम निर्मलहृदय तणउं लोकप्रवाहि धर्म मिथ्यात्वधर्म नटचरित्र सरीपउं **पडिहाइ** प्रतिभइ शोभइ। जिम नटवानुं चरित्र फोकट तिम लोकप्रवाहि धर्म फोकट इसुं मानइ॥६६॥

[मे.] जिम जिम जिनेन्द्रनां वचन सम्यग् प्रकारि परिणमइं कहिनइं सुद्ध हृदयना धणीनइं तिम तिम लोकनउ प्रवाह नटवाना चरित्र सरीपउ प्रतिभासइं। काइ? 'ए सहू बाह्य मंडाण। लोकरंजना मात्र, पणि आभ्यंतरि नहीं'॥६६॥

[सो.] वली एह जि वात कहइ छइ।

[जि.] अथ जिनधर्मप्रमाण बोलइ।

[मे] वली एह जि वात कहइ।

जाण जिणिंदो निवसइ सम्मं हिययम्मि सुद्धनाणेणं।
ताण तिणं व विरायइ समिच्छधम्मो जणो सयलो॥६७॥

[सो.] **जाण०** जेहनइ हीअइ साचइं जाणवइं करी सम्यग् दृढ श्रीजिनेन्द्र वसइ, वीतरागनु धर्म जेहनइ मति साचउ बइठउ हुइ

ताण० तेह रहइं मिथ्यात्वधर्म सहित लोक सघलउ तृणा सरिषउ असार प्रतिभासइ । जाणइ ए कांई नही ॥ ६७ ॥

[जि.] जाण जेहना हियामांहे निर्मलइ ज्ञानि करी सम्यक् प्रकारि श्रीजिनेन्द्र वसइ **ताण** तेहांनूइं समिथ्यात्वि धर्मि करी सहित मिथ्यात्वी लोक सघलई **तिणं व** तृणवत् तृण सरीषउ निःसार विराजति शोभइ ॥ ६७ ॥

[मे.] जेहनइ हीयइ साचइ जाणिवइ करी सूधउ वीतरागनउ धर्म वसइ तेह मनुष्यनइ मिथ्यात्वधर्मसंयुक्त लोक सघलइ तृणा सरीषउ असार प्रतिभासइ । जाणइ जि ए कांई नहीं ॥ ६७ ॥

[सो.] लोकनइ प्रवाहिइं[1] केतलाइं जाणइ[2] क्षुभइं । ए वात० कहइ छइ ।

[जि.] अथ सम्यक्त्व मापइ श्रावकपणउं निरर्थक । इसुं बोलइ ।

लोअपवाहसमीरणउद्दंडपयंडचंडलहरीए ।
दढसम्मत्तमहाबलरहिआ गुरुआ वि हल्लंति ॥ ६८ ॥

[सो.] लोअपवाह० लोकनउ जे प्रवाह तेहरूपीआ समीरण जे वायु[3] तेहनी प्रचंड गाढी लहरि करी **दढ०** दृढ निश्चल सम्यक्त्व रूपीआ आराधननउं[4] जे छइ महाबल तीणइं करी रहित गुरुआइ **हल्लंति** डोलइं । घणा लोक कांई मिथ्यात्व बोल्ता[5] करता[6] देपी मोटाइनां मन लहचहइं ॥ ६८ ॥

[जि.] दृढ सम्यक्त्वरूप महाबल तिणि करी रहित पुरुष गुरुया वडाइ हूता **हल्लंति** डोलइं । किसइ करी ? लोकप्रवाहरूपिउ

---

१ प्रवाहइं २ जाण. ३ वायुनी. ४ आधारनउं. ५ बोलइ. ६ करता.

[जि.] जे मिथ्यात्वनइं करइं सम्यक्त्व वाछइ। तेह उद्दिसी कहइ।

मिच्छत्तमायरंत वि जे[1] इह वंछंति सुद्धजिणधम्मं।
ते घत्था वि जरेणं भुत्तुं[2] इच्छंति खीराई[3] ॥७१॥

[सो.] मिच्छत्त० मिथ्यात्व कर्त्तव्य करताइ हुंता जे जीव सुद्ध[4] धर्म वाछइं। जाणइं 'अम्हे सूधउ धर्म करूं।' **ते घत्था वि०** ते जाणे ज्वरि ग्रस्याइ हुंता खीर खाड खावा वाछइ। ज्वर सरिषू मिथ्यात्व खीर खडे सरिखउ जिनधर्म। जिम ज्वरि छतइ खीर खंडादिक खाधा हुंता गुण न करइ, साम्हु अवगुण करइ तिम मिथ्यात्विइ छतइ जिनधर्म गुणकारिउ न हुइं। सामहा विराधक थाइं ॥७१॥

[जि.] ये श्रावक मिथ्यात्व आचरतइं हूंतउ शुद्ध जिनधर्म **इह** संसारमाहे वाछइ ते **घत्था वि जरेणं** ते श्रावक ज्वरिइं ग्रस्या हुंता **खीराई** क्षीर खाड घृत **भुत्तुं** जीमिवा भणी वाछइ। जिम ज्वरिया पुरुषहइं घृतादिकनउं जीमवउं विषप्राय हुइ तिम मिथ्यात्व ग्रस्या हूता सम्यक्त्व धरइं तउ सामुहउ अतिचार दोष पामइं। तिणि कारणि सर्वथा मिथ्यात्व मेल्ही सम्यक्त्व पालिवउं ॥७१॥

[मे.] मिथ्यात्व आचरता हूंता केईएक जीव सूधउ जिनधर्म वाछइ। ते जाणे ज्वरि ग्रस्या हूता खीर खाड घी प्रमुख भोजन जिमिवउ वाछइं ॥७१॥

[सो.] केतलाइ मिथ्यात्व करताइं कहइं 'अम्हे अमुका गुरुना श्रावक।' तेह आश्री कहइ छइ।

[जि.] अथ कुगुरु आश्री कहइ।

---

१ मे के २ जि मे भुत्तं ३ मे. खीराइं ४ सुद्ध

जह[1] केइ[2] सुकुलवहुणो सीलं मयलिंति[3] लिंति[4] कुलनामं।
मिच्छत्तमायरंत[5] वि वहंति तह सुगुरुकेरत्तं ॥ ७२ ॥

[**सो.**] जिम कोएक उत्तम कुलवधू हुइ। सील[6] आपणउं मइलुं[7] करइ विराधइ अनइ नाम कुलनउं लिइं। आपणइ कलंकिइं करी कुलहूइं कलंक आपइं,[8] 'अम्हे अमुका कुलनी।' **मिच्छत्त॰** तिम केतलाइ मिथ्यात्त्व करता[9] हुंता कहइ, 'अम्हे अमुका सद्गुरुना श्रावक शिष्य।' ते आपणइं दोपिइं गुरु रहइं दोप आणइं। इसिउ भाव ॥ ७२ ॥

[**जि.**] **जइ केवि** जिम केई **सुकुलवहुणो** सुकुलि ऊपनी वधू स्त्री आपणउं सील मइलउं करइ सील भांजइं अनइ अनेरइ माणसि पूछीतां हुंती आपणा कुलनउं नाम लिइं। 'अम्हे मोटा कुलनी' इसुं कहइ। **तह** तिणि दृष्टांति करी केईएक मिथ्यात्त्व समाचारताई हुंता **सुगुरुकेरत्तं** सुगुरुना केडाइतपणउं वहइं। 'अम्हे अमुका सुगुरु अनई केडई' इसुं कहता आपणा सुगुरु पूर्वज लावइं ॥ ७२ ॥

[**मे.**] जिम केईएक भला कुलनी वधू सील आपणउं मइलउं करइं अनइ नाम कुलनउं लिइं, 'अम्हे अमुकानी कुलवधू' तिम जीव मिथ्यात्त्व आचरतउ हुंतउ कहइ, 'अम्हे अमुका सुगुरुना श्रावक।' आपणइ दोपिं गुरुनइं दोप आणइं ॥ ७२ ॥

[**सो.**] वली एह जि वात कहइ छइ।

[**जि.**] अथ कुत्सित श्रावक उद्दिसी बोलइ।

---

१ मे. जइ. २ जि. मे. केवि. ३ जि. मे. मइलंति. ४ जि. लंति. ५ मे. मिच्छित्त°. ६ सीली. ७ मइलउं. ८ आणइ. ९ करताइ.

ते चोर अन्यायी पापीनउ संसर्ग मेल्हीनइ आपणपइं जि चोरी करइ। पापीया जे मिथ्यात्वीनू ससर्ग न करइ, पुण[1] मिथ्यात्व करइ ते जाणे चोरनी सगति न करइं, पुण आपणपइं जि चोरी करइं छइं ॥ ७५ ॥

[जि.] अजाण जेहानउ सगईं अहित विरूयाकारण हुइ तेसिं तेहना अहितकारकना उपदिस्या जे पुरुष धर्म करइं ते पुरुष **पावा** पापिष्ट हूता चोरनउ ससर्ग मेल्ही आपहणी चोरी करइ ॥ ७५ ॥

[मे.] जेहनउ ससर्गइ अहितकारीउ हुइ अनइ तेहना माप्या धर्म जे करइं ते केवहा जाणिवा[2] चोरनउ संसर्ग मूकीनइ आपणइ डीलि पापि चोरी करइं। ते एवहा जाणिवा ॥ ७५ ॥

जत्थ पसुमहिसलक्खा पव्वे होमंति[3] पावनवमीए।
पूअंति तंपि सड्ढा हा हीला वीयरायस्स ॥ ७६ ॥

[सो.] जीणइं पर्वि आसो चैत्रनी पापमय महानउमिइं पशु बोकडा भइसाना लक्ष होमइं मिथ्यात्वी राजादिक। **पूअंति॰** केतलाइ श्रावकइ हुई ते पर्व पूजइं मानइं। गोत्रजपूजनादिक करइं। ते पर्वना करावणहार ब्राह्मणादिक रहइं पुण पूजइं। दानादिक दिइ। **हा हीला॰** अहो! केवडी ए हीला अवज्ञा आशातना वीतरागनूइं। एक जीवदयामूल वीतरागनू[4] धर्म आराधीइ अनइ परइं महाहिंसामय पर्व मानीइं। ए[5] आज्ञालोप भणी अवज्ञाइं कही ॥ ७६ ॥

[जि.] **जत्थ** जिणि पर्वि पापनवमीनइ दिवसि सामान्य देहाडीनइ दिनि पशु छाला महिसु भइंसा तेहना लक्ष **हम्मंनि** होमीइं विणासीइं। तिणि दिहाडइ श्रावक अइ पूजइ तउ श्रीवीतरागनी ही

१ 'पुण मिथ्यात्व न करइ' एग्लो पाठ सो नी पोथी प्रतानांथी पडी गयेलो छे २ जि मे हम्मंनि ३ वीतरागनउ ४ 'ए' नथी ५ अवज्ञा

खेदे **हीला** । जे श्रावक श्रीवीतरागदेवनइं मानइं अनइं मिथ्यात्व पुण साचवइं ते श्रावक श्रीवीतरागनी अवहेला करइं। तिणि कारणि ते श्रावक केई अजाण जाणिवा ॥ ७६ ॥

[मे.] जिहां आसोजी चैत्री पापनवमीइं पशु छाला महिस भइंसा तेहना लक्ष लाप हणीइं अनइं तीणइं दिहाडइ श्रावक हुइनइ गोत्रजनी पूजा करइ तउ हा इसइ खेदि तीए वीतरागनी हीला कीधी । परमेश्वर अवहेल्या ॥ ७६ ॥

जो गिहकुडुंबसामी[1] संतो मिच्छत्तरोवणं[2] कुणइ ।
तेण सयलो वि वंसो पक्खित्तो भवसमुद्दम्मि ॥ ७७ ॥

[सो.] जे कुटुंबनायक[3] मूलगउ हुई कांई मिथ्यात्वनउ बोल घरि रोपइं थापइ । पाछिलाइ संतानीआ सघला तेहना थाप्या भणी मूकी न सकइं । **तेण** तीणइं आपणउ सघलुइ केडिलु वंस संसार-समुद्रमाहि घातिउ पाड्या[4] भणी ॥ ७७ ॥

[जि.] जे गृहकुटुंबनउ स्वामी धणी **संतो** हूंतउ मिथ्यात्व-रोपण करइ । **तेण** तिणि गृहकुटुंबस्वामीइं **सयलो वि** सघलउइ वंस भव संसार तेहरूपिउ समुद्र तेहमाहे **पक्खित्तो** प्रक्षिपउ घालिउ ॥७७॥

[मे.] जे पुरुष गृहस्थ कुटुंबनउ स्वामी होईनइ आपणा संतानीयानइं मिथ्यात्वनउं आरोपण करइं तीणइं सघलुइ वंसु संसार-समुद्रमाहि प्रक्षेपिउ घातिउ ॥ ७७ ॥

कुंडचउत्थी नवमी बारसी पिंडदाणपमुहाइं ।
मिच्छत्तभावगाइं[5] कुणंति तेसिं न सम्मत्तं ॥ ७८ ॥

---

१ जि. °कुडुंब°. २ मे. मिच्छित्त°. ३ कुडंब°. ४ पड्या. ५ मिच्छित्त°.

[सो.] कुंडचउत्थी० विणायगचउत्थि महानउमि वत्सबारसि बीजाइं पर्व सीअलसत्तमि द्रोअट्ठमि शिवरत्ति नागपंचमि काजलीत्रीज आमलीइग्यारसि अविलोअपाचमि[1] अमास षष्टीजागरण नवसती पितर-पिंडदान नवोदकि पींपल-जलदान अमावस जमाई-भोजनप्रमुख **मिच्छत्त०** अनेक एहवा[2] मिथ्यात्त्वपोषक पर्व करइ करावइ। **तेसिं** तेहहूइं इसिउ जाणिवउं। सम्यक्त्व नथी ॥ ७८ ॥

[जि.] जे श्रावक कुंडचतुर्थी महानवमी अनइ बारसि तेहना पिंडदानप्रमुख मिथ्यात्त्वधर्मना भावक पोषक मिथ्यात्त्व करइं **तेसिं** तेहा श्रावकहूइं सम्यक्त्व नहीं। लगारइ मिथ्यात्त्वनउ लवलेश करइ ते अजाण इति भाव ॥ ७८ ॥

[मे.] कुंडचउथि कहता विणाइगचतुर्थी महणिमनीं नवमी वत्सबारसि सीयलसप्तमी द्रोअष्टमी शिवरात्रि नागपंचमी काजलीत्रीज आमलीइग्यारसि अविलोआपंचमी अमास षष्टीजागरण प्रमुखे पिंडदान-प्रमुख जे मिथ्यात्त्वनइ भावक उपजावणहार जे करइ तेहनइ सम्यक्त्व नही ॥ ७८ ॥

[सो.] केतलाइ उत्तम आपणउं कुटुंब मिथ्यात्त्वतउ काढइ। ए वात कहइ छइ।

[मे.] अथ गाणनी वात कहइ।

जह अइकुलम्मि खुत्तं सगडं कड्ढंति केवि धुरधवला[4]।
तह मिच्छाओ कुडंबं अह विरला केवि कड्ढंति ॥ ७९ ॥

[सो.] जिम कादमना गाढा कल्माहि गाडउं खूतउं हुइ ते

१ अविलोआ पंचमि. २ एहा ३ अइकाद्दम्मि, मे. अइकद्दम्मि ४ धुरि.

केतलाइ धोरी धवल मूलगा वृषभ तेह जि काढइं। बीजे वृषभे न काढइं। **तह०** तिम मिथ्यात्वरूपिआ कादममाहि कलिउं आपण[1] कुटुंब **विरला०** के एक समर्थ उत्तम उपाइं करी काढइं। मिथ्यात्व छंडावी साचइ धर्मि लगाडइं[2] ॥ ७९ ॥

[जि.] जिम केईएक धवला धोरी मूलगा सबलबल अतिकर्दमना कलणमाहि **खुत्तं** खूतउं हूंतउं **सगडं** गाडउं काढइं **तह** तिम इह संसारमाहि विरला केईएक पुरुष **मिच्छाओ** मिथ्यात्व हूंतउं कुटुंब-परिवार काढइं। साचइ जिनधर्म लगाडइं ॥ ७९ ॥

[मे.] जिम अतिकलण कादममाहि खूतउं गाडउं केईएक धोरी वृषभ हुइं तेही जि काढी सकइं, सामान्य वृषभ काढी न सकइं तिम मिथ्यात्वरूपीया कलणमाहे कुटुंब खूतउं थकउं इहां विरला कोईएक काढइ ॥ ७९ ॥

[सो.] केतलाएक वीतराग सर्वज्ञ सर्वज्ञदेवने लक्षणे[3] सहितइ न ओलखइ[4]। ए वात कहइ छइ।

[जि.] अथ श्रीसर्वज्ञदेवनी अप्राप्तिकारण कहइ।

जह वद्दलेण सूरं महियलपयडं पि नेव पिच्छंति।
मिच्छत्तस्स[5] य उदए तहेव न निअंति जिणदेवं ॥८०॥

[सो.] जिम वादलि आडइ छतइ पृथ्वीमंडलमाहि प्रकट[6] सूर्य न देखीइ तिम मिथ्यात्वरूपिइ[7] वादलि आडइ छतइ जिनदेव श्रीसर्वज्ञदेव विश्वमाहि प्रकट प्रमाणइ छतु **न निअंति** न देषइं ॥ ८० ॥

[जि.] **जह** जिम वादलिइ करी **महियलपयडं पि** जगत्रयहूइं प्रत्यक्षइं हूंतउ **सूर** सूर्य **नेव पिच्छंति** न देषइं **तहेव**

१ आपणुं. २ लागइं. ३ लक्षण ए. ४ उलषइं. ५ मिच्छित्तस्स. ६ प्रकटइ. ७ मिथ्यात्वनइ उदया मिथ्यात्वरूपिइ.

जे ब्रह्मचारी विषयनिवृत्त[1] हुइ, जे[2] आपणी कीर्त्ति न वांछइ, जे दृढ सम्यक्त्वना धणी हुइं, जे दु.खिइ आवइ[3] कातर न हुइं, एह्वा दृढ धर्मना धणीहूइं ए वेश्यादिक सघलाइ दूरि जाइं। आपणु लाग कांई देखइं नहीं। एह भणी तेहहूइं उचाटइं पुण कांई न करइं। साम्हा प्रसन्न थाइं ॥ ८२ ॥

[जि.] वेश्या तणा, बंदी भाट तणा, माहण ब्राह्मण तणा, डुंब तणा, यक्षभूतादिक तणा, **भत्ता** भक्तिकरणहारइ जि पुरुष **भक्खट्ठाणं** भक्ष्यस्थानक। एतलइ जे वेश्यादिकहूइं भक्ति करइं तेह जि भक्तिकरणहारहूइं देणहारहूइं वेश्यादिक पाइं। **विरयाणं** विरत हूंता अणमानता पुरुष हूंता दूर वेगला जाइं नासइं। **विरयाण**मित्यत्र पंचम्यर्थे षष्ठी प्राकृतत्वात् ॥ ८२ ॥

[मे.] वेश्या बंदी भाट ब्राह्मण डूंब यक्ष सेप थाकता गोत्रज पितर प्रमुख ऊपरि जे भक्ता हुइं, वलि वाकुलि लापसीइं करी भक्ति करइं एतला भक्तिना करणहारजिनइ खाइं। वरसि वरसि ते गांठा फरइ। अनइ ईया हूंतां जे विरता छइ ते हूंता वेश्यादिक दूरि जाइं। तेहनइ कांई पाहूउं करी न सकइं ॥ ८२ ॥

[सो.] अकुलीन धर्म करइं ते आश्चर्य। ए वात कहइ छइ।

[जि.] अथ केई एकल्लधर्मी जीवगउं स्वरूप प्ररूपइ।

सुद्धे मग्गे जाया सुहेण गच्छंति सुद्धमग्गम्मि।
जे पुण अमग्गजाया मग्गे गच्छंति तं चुज्जं ॥ ८३ ॥

[सो.] **सुद्धे॰** जे शुद्धि मार्गि उत्तम सुश्रावकनइ कुलि जाया

---

१ °निवृति. २ 'जे आपणो.....धणी हुइं' एटलो पाठ सो. नी बीजी प्रतमांथी पडी गयो छे. ३ आविइ.

ते सूधा मार्ग खरा धर्मनइ विषइ सुखिइं चालइं । तेहनइं धर्मनु मार्ग कुलक्रमिइ जि आगइ चालिउ आवइ छइ । एह भणी तेहहइं धर्म करतां काइं दोहिलुं नही । **जे पुण०** पणि जे अमार्गि जाया विरूद्ध[1] अधर्मि[2] कुलि ऊपना तेहइ केतला जे मार्गि चालइ धर्म करइं तेहनइ कुलक्रमागत धर्म न हुइं । ते जं धर्म्म करइं तं चुज्जं ते आश्चर्य ॥ ८३ ॥

[जि.] सुद्धइ निर्मलइ मार्गि जात ऊपना द्विजात जे हुइं ते सुखिइं समाधिइं भली परिइं शुद्धइ निःपाप मार्गि गच्छंति चालइ ते आश्चर्य नही । भला अनइ भलइ मार्गि हींडइ । जिम रोहणाचलि रत्ननउं आश्चर्य नही । जिम लंकाइं सोना होवानउं आश्चर्य नही । पुण जे अमार्गजात त्रिजातइं हुइं ते मार्गि मार्गि जइ चालइं तउ ते आश्चर्य । जिम उकरडी माहे रत्न ऊपनउं हूंतउं आश्चर्य भणी हुइ ॥ ८३ ॥

[मे.] जे सूधइ मार्गि श्रावकनइ कुलि ऊपना सुखिइं समाधिं सूधा मार्ग खरा धर्मनइ विषइ चालइं । पणि जे अमार्गि अधम कुलि जाया अनइ जे धर्ममार्गि चालइ ते आश्चर्य कउतिग ॥ ८३ ॥

[सो.] धर्म करतां कांई लगारइ विघ्न ऊपजइ । अजाण लोक ते लेई धर्म रहइं लगाडइं । ए वात कहइ छइ ।

[जि.] अथ पापिष्ट मिथ्यात्वीनउं स्वरूप कहइ छइ ।

मिच्छत्तसेवगाणं विग्घसयाइं पि[3] विंति नो पावा ।
विग्घलवम्मि वि पडिए दढधम्माणं पणचंति ॥ ८४ ॥

[सो.] मिथ्यात्वना करन्हारनइं[4] अनेराइं संसारनां काज-व्यवसाय विवाहादिक करतां विघ्न अंतराय दुःख उपसर्गनां सइं पडइं ।

१ विरुअइ. २ अधर्मि. ३ पिविंति, मे. पि बिंति. ४ करण्हारनइं.

तेउ पापी लोक ते बोलइं नही । **विग्घलवम्मि०** अनइ जे दृढ धर्म खरा धर्मना कर्त्तव्य करइ छइं तेहहूइं केती वारइं विघ्नलवलेश मात्र थोडूंअइ अंतराय दुख पडइ तउ मूर्ख लोक नाचइं, 'एहहूइं धर्म करता आम हूउं ।' इसिउं न जाणइं, 'निश्चिइ धर्म करतां रूडूं जि हुइ ।' धर्मइं[1] विघ्न विलइ जाइं जिम आगि पाणी करी[2] उल्हाइ जि । पुण मापु जाणिवउं । जु थोडउ अगारमात्र आगि हुइ तु चलइ मात्रि पाणीइं ओल्हाइं[3] । पणि दवानल ज्वलतउ हुइ तउ थोडइं पाणी कांई नही । जु मेघ वरिसइ घणउं पाणी पडइ तउ[4] ओल्हाइ[5] । तिम थोडउ पाछिला भवनुं पापकर्म थोडिइ धर्मिइ विलइ जाइ । पुण कर्म घणउ हुइ अनइ धर्म थोडउ हुइ तु किम तीणइं धर्मिइं घणउं कर्म विलइ जाइ ! पुण एक निश्चय जि जाणिवु । जं धर्मि करी पाप विलइ जाइ जि । जिम सूर्य थिकउ[6] अंधारा नासइ जि । ज धर्म करताइं विघ्न नथी टलता ते थोडा धर्मनुं कारण । एक मूर्ख अजाणपणइं 'धर्मनइं दोषिइं' इसिउं कहइ, 'अम्हारइ कुलि ए धर्म सहइ नही ।' अनइ पापीहूइं घणाइं दुख पडइं पणि बोलइं नहीं ॥ ८४ ॥

[जि.] **पावा** पापिष्ट पुरुष मिथ्यात्त्वसेवकहाहूइं विघ्न उपद्रव तेहना शतइं पड्या **नो विंति** न बोलइं । पुण दृढ धर्म निश्चल धर्मवंतहूइं विघ्ननइ लवलेशिइ पडिइ हूंतइ **पणच्चंति** प्रनृत्यति ॥ ८४ ॥

[मे.] मिथ्यात्त्वना सेवणहारनइ विघ्नना सइं ऊपजइं पणि ते पापीइ मन नाणइ जि 'अम्हनइ मिथ्यात्त्व सेवता विघ्न उपना ।' अनइ जे दृढधर्म खरउ धर्म करइ तेहनइ विघ्नउ लगु मात्र उपनइं पापी लोक पचारइ ॥ ८४ ॥

---

१ धर्म्मिइं २ घर ३ उन्हाइ ४ तउ जि ५ उन्हाइ ६ थकउ

[सो.] धर्म सहित दुःखऊ रूडउं। मिथ्यात्वसहित सुखइ विरूउं। ए वात कहइ छइ।

[जि.] अथ सम्यक्त्वधारकनी दृष्टाई त्रिहुं गाथा करी बोलइ।

सम्मत्तसंजुआणं विग्घं पि हु होइ उच्छवसरिच्छं।
परमुच्छवं पि मिच्छत्तसंजुअं अइमहाविग्घं ॥ ८५ ॥

[सो.] **सम्मत्त॰** जे सम्यक्त्विइं करी सहित छइं, खरउ धर्म आराधइं छइं तेहहूइं केती वारइं विघ्न दुःख पडइं ते दुःख उत्सव सरीपुं हुइ। ते तीणइं दुःखिइं करी पाछिला भवनां पापकर्म क्षपीनइ खरा धर्मनइ प्रसादिइं आगलि मनुष्यनां देवलोकनां सुख पामइं। तेह भणी उत्सव समान। **परमुच्छवं पि॰** मिथ्यात्विइं करी जे सहित छइं तेहरइं केतीवारइं परम उत्सव हुइ। राज्य ऋद्धि लक्ष्मी भोगसुख पामइं। तेहइ अतिमहाविघ्न जाणिवुं। तेह ऋद्धिनइं प्रमाणि ते मिथ्यात्व आरंभ पाप करी आगलि नरकतिर्यंचादिक दुर्गतिइं जाइं। संसारमाहि रुलइं। तेह भणी तेहनु उत्सव महाविघ्न समान कहीइ ॥ ८५ ॥

[जि.] सम्यक्त्वसंयुक्त पुरुषहूइं विघ्नई हु निश्चइ उत्सव-सदृश महोत्सव सरीपउं हुइ। **परमुच्छवम्मि** प्रकृष्ट महोत्सवमाहे मिथ्यात्वसंयुक्त हूंतउ **अइमहाविग्घं** अतिमहाविघ्न हुइ। एतलइ सम्यक्त्वधारकहूइं सम्यक्त्वइ जु तत्त्व। माया काई नही ॥ ८५ ॥

[मे.] सम्यक्त्विइं करी जे सहित तेहनइ किवारइं विघ्न ऊपजइ तउ उत्सव करी मानइं। कांइं कहइ? 'भवांतरि कर्म क्षय गयां वली नही आवइ।' तेह भणी उत्सव समान मानइं। वली जे

१ मे. उत्सव°. २ जि. परमुच्छवम्मि, मे. परमुत्सवे. ३ सम्यक्त्वइं. ४ तेह रइइं. ५ जाणिवउं. ६ 'तेह' नथी.

मिथ्यात्त्वि करी सहित छइं तेहनइं परम उत्सवइ अतिविघ्न करी मानिवा। कांई ? तीहा उत्सवे मिथ्यात्त्वनां कारण घणां हुइं। अनइ ते मिथ्यात्त्वनइ प्रमाणि नरगि जाइं। तेह भणी उत्सव विघ्न समान गिणीइं ॥ ८७ ॥

[सो.] जेहहूइं धर्मनी दढाई हुइ तेहहूइं देवइ प्रणाम करइं। ए वात कहइ छइ।

इंदो वि ताण पणमइ हीलंतो निययरिद्धिवित्थारं।
मरणंते वि हु पत्ते सम्मत्तं जे न छड्डुंति ॥ ८६ ॥

[सो.] इंद्र तेहहूइं प्रणाम करइ। **हीलंतो॰** आपणी देवनी राज्यऋद्धिना[1] विस्तार निंदतउ हूंतउ[2]। जाणइ ए ऋद्धि[3] कांई नहीं। ईणी[4] ऋद्धिइं मोटपण काई नही। **मरणंते वि॰** मरणांतिइ पहुतइ जे गाढइ संकटि पडिइ[5] आपणउं सम्यक्त्व न छांडइ, मिथ्यात्त्व न करइं तेहहूइं इंद्रादिक देवइ नमस्करइं ॥ ८६ ॥

[जि.] निययरिद्धिवित्थारं आपणी लक्ष्मीनउ विस्तार हीलतउ निंदतउ हूंतउ इंद्र तेहां सम्यक्त्वधारक पुरुषहूइं प्रणमइ। तेहा केहांहूइं ? मरणांतइ पामिइ हूंतइ जे सम्यक्त्व **हु** निश्चइं न छांडइं। **ताणेत्यत्र द्वितीयार्थे प्राकृतत्वात्** ॥ ८६ ॥

[मे.] इंद्रइ तीहां पुरुषांनइं प्रणामु करइ, आपणी रिद्धिनउ विस्तार अवहेलतउ हूंतउ। पणि ते जीव केवहा छइं ? जे मरणांति सम्यक्त्व छाडइं नहीं ॥ ८६ ॥

[सो.] वली एह जि वात कहइ छइ।

1 'रिद्दिना. 2 'हूंतउ' नथी. 3 रिद्धि 4 ईणइ. 5 पडइ.

छड्डंति नियय जीअं तणं व मुक्खत्थिणो न[1] उण सम्मं ।
लब्भइ पुणो वि जीअं सम्मत्तं हारिअं कत्तो[2] ॥ ८७ ॥

[सो.] **छड्डंति॰** जे जीव मोक्षार्थी आसन्नसिद्धिक हुइं ते तृणनी परि आपणउं जीवतव्य छांडइं । दुःखि पडइ मरण आंगमइं, पुण सम्यक्त्व न छांडइं । मिथ्यात्त्व न करइं । **लब्भइ॰** इसिउं जाणइं[4] । ए जीवितव्य अनंते भवे वली वली लाभइं, पुण **सम्मत्तं॰** ए सम्यक्त्व जु हारिउं नीगमिउं तु वली किहां लाभइ ? अनंते भवे दुर्लभ थाइ ॥ ८७ ॥

[जि.] मोक्षार्थी पुरुष **निययजीअं** निजक जीवित आपणउं जीवितव्य तृणवत् तृणनी परि छांडइं, पुण सम्यक्त्व न छांडइ । किसा भणी ? पुनरपि वलीइ जीवितव्य लाभइ, पुण सम्यक्त्व हारिउं नीगमिउं हूंतउं **कत्तो** किहां हूंतउं लाभइ ? अपि तु न लाभइं । सम्यक्त्व महादुःप्राप मोक्षदायक छइ । तिणि कारणि सम्यक्त्वनी दृढाई धरइ ॥ ८७ ॥

[मे.] मोक्षार्थी जीव तृणनी परिइं आपणउं जीवितव्य छांडइ । कष्टि पडिइं मरण आंगी गमइं, पणि सम्यक्त्व न छांडइं । कांइं ? वली जीवितव्य लाभइ, पणि सम्यक्त्व हारिउं वली किहां पांमीइ ? ॥ ८७ ॥

[सो.] ए सम्यक्त्वइ जि धन कहीइ । बीजुं बाह्य धन ते कांई धन नही । ए वात कहइ छइ ।

[जि.] अथ सम्यक्त्वहूइं महाबहुमूल्यपणउं कहइ ।

---

१ जि. मे. तिण. २ जि. नि. ३ जि. मे. कत्तो. ४ जाणिइं.

गयविहवा[1] वि सविहवा[2] सहिआ सम्मत्तरयणराएणं।
सम्मत्तरयणरहिआ संते वि धणे दरिद्द त्ति[3] ॥ ८८ ॥

[सो.] गयविहवा॰ गतविभव लक्ष्मीरहित दालिद्रीइ[4] छता तेह **सविहवा** सद्रव्य सलक्ष्मीवंत[5] जाणिवा, जे श्रीसम्यक्त्व-रूपिइं रत्नराजि महारत्नि अमूल्यक रत्नि करी सहित हुइं, खरउं सम्यक्त्व पालइं। **सम्मत्त॰** जे सम्यक्त्वरूपिइं रत्नि करी रहित छइं, जेहनइ हीयइ सम्यक्त्व नथी, मिथ्यात्वीइ जि छइं **संते वि॰** ते लक्ष्मी[6] घणीइ छती दालिद्री[7] जि[8] जाणिवा[9]। दालिद्रीइ जु सम्यक्त्व पालइ तउ आवतइ भवि इंद्रादिक[10] महर्द्धिक देवादिकपदवी प्रामइं। अनइ चक्रवर्त्यादिक महर्द्धिक जु मिथ्यात्वी हुइ तु आवतइ भवि नरकतिर्यंचादिक हीनगतिइं गयउ हूंतउ दुःखीउ थाइ, महादालिद्री[11] थाइ। इसिउ भाव। एह ज भणी इम कहिउं श्री**हेमाचार्यें**—

जिनधर्मविनिर्मुक्तो मा भूवं चक्रवर्त्यपि।
स्याच्चेटोऽपि दरिद्रोऽपि जिनधर्माधिवासितः॥

[जि.] गतविभवइ निर्द्रव्यई हूंता सविभव सद्रव्य हुइं, जे सम्यक्त्वरत्नराज तिणि करी सहित हुइ। एतावता जे पुरुष सम्यक्त्व-रूपिउं रत्नराज चिन्तामणि धरइं ते पुरुष निर्द्रव्यई सद्रव्य हुइं अनइं जे सम्यक्त्व रत्न तिणि करी रहित हुइं ते पुरुष **संते वि धणे** छतई धनि दरिद्री कहीइं। तिणि कारणि सम्यक्त्व मोटउं रत्न ॥ ८८ ॥

[मे.] ते पुरुष निर्द्धनइ थका धनवंत जाणिवा जे सम्यक्त्व-रूपीइ रत्नराजिइ सहित हुइं। अनइ जे सम्यक्त्वरत्न तिणि करी

१ गइविहवा २ जि. मुविहवा ३ दरिद्द त्ति. ४ दालिद्रीइ ५ सद्रव्य लक्ष्मीवंत. ६ लीक्ष्मी ७ दालिद्री. ८ 'जि' नथी. ९ जाणिवी. १० 'इन्द्रादिक महर्द्धिक...आवतइ भवि' एटलो पाठ बीजी प्रतमांथी पडी गयेलो छे. ११ महा-दालिद्री.

रहित धनि करी सहितइ हूंता ति दालिद्रीइ जि जाणिवा। कांइं? मिथ्यात्वनइ प्रमाणि संसारमाहि रुलिस्यइं ॥ ८८ ॥

[सो.] जिनधर्मना जाण लक्ष्मीइ पाहि धर्म अधिकउ देखइं। ए वात कहइ छइ।

[जि.] अथ श्रीवीतरागनी पूजा साची वर्णवइ।

जिणपूअणपत्थावे जइ को' सड्ढाण देइ धणकोडिं।
मुत्तूण तं असारं सारं विरयंति जिणपूअं ॥ ८९ ॥

[सो.] जिणपूअण॰ गाढा धर्मना जाण श्रावकहूइं चउमास पजूसणादिक पर्वि आविइ जिन वीतरागनी पूजा स्नात्र पडिकमण पोसहादिकनइ प्रस्तावि अवसरि जइ को धन द्रव्यनी कोडि दिइ, इम कहइ 'ए मूकीनइ अमकइ थानकि आवि, अमुकउं व्यवसायादिक काज करी तूहइं लक्ष्मीनी कोडिनउ लाभ हुस्यइ।' **मुत्तूण॰** तउ ते जाण श्रावक ते द्रव्य असार जाणता मूंकीनइ सार जिनपूजाइ जि करइं। जिनधर्मइ जि आराधइं। इसिउं जाणइं 'ईणं द्रव्यइं एकइ भव सुखिया थइसिइं। अथवा नहीं थईइ[2]। पुण वीतरागनी पूजाइ जिनधर्म आराधतां निश्चइं आगलि अनंत सुख लामिसिइं जि' ॥ ८९ ॥

[जि.] जइ कोईएक जिनपूजननइ प्रस्तावि श्रीवीतरागदेव-पूजानी वेलाइं श्रावकहूइं धननी कोटि दिइं, **तं असारं** निःसार ते धननी कोडि मेल्ही सार प्रधान अनंती धननी कोटि देणहारि जिनपूजा विरचइं करइं ॥ ८९ ॥

[मे.] जिन वीतरागनी पूजानइ अधिकारि जे कोइ श्रावकनइं धननी कोडि दिइ अनेक लाभ दिपाडइ, पणि ते श्रावक असार धन

१ जि. मे. कुवि. २ थईए.

मूंकीनइ सार प्रधान एकइ जि जिननी पूजा करइ। कांइं ? धन लगी एकइ जि भवनां सुख हुइं । अनइ जिनपूजा लगी अनंतां सुख पांमीइं । ए भावु जाणिवउ ॥ ८९ ॥

[**सो.**] वीतरागनी पूजा[1] साचइं भाविइं[2] जि[3] कीजती गुणहेतु[4] हुइ । ईम्हइं न हुइं । ए वात कहइ छइ ।

[**जि.**] अथ जिनपूजानउ गुण कहइ ।

तित्थयराणं पूआ सम्मत्तगुणाण कारणं भणिआ।
सा वि य मिच्छत्तयरी जिणसमए देसिअ अपूआ ॥ ९० ॥

[**सो.**] **तित्थयराणं॰** तीर्थंकरदेवनी पूजा साचा परमेश्वरना गुण जाणी परमतत्त्व भणी देषतउ, इहलोक-परलोकनां फल अणवांछतउ,[5] कर्मक्षयजिनी बुद्धिइं एकाग्रचित्तिइं करइ तउ सम्यक्त्वनउं करण[6] थाइं । सम्यक्त्व निर्मल करइ अनइ अनंत सुखहेतु हुइ । **सा वि य॰** अनइ तेह जि वीतरागनी पूजा, 'परमेश्वर ! तुं मुझहूइं साजउ करिजे । अथवा ऋद्धि पुत्रादिक[7] संतानादिक देजे । एतलाएक द्रव्यनी पूजा तुझहूइं करिसु ।' जं[8] जिणवर इम मानी ईंछी करइ । जे[9] पूजा जिनशासनि मिथ्यात्वनी करणहार कहीइ ते देवगत मिथ्यात्व कहीइ ॥ ९० ॥

[**जि.**] तीर्थंकरनी पूजा सम्यक्त्वना गुणगउ कारणरूप भणी जिम जिम जिनपूजा कीजइ तिम तिम सम्यक्त्वना गुण ऊपजावइ । **सा वि य** ते जिनपूजाइ **जिणसमए** श्रीजिनशासनि मिथ्यात्वसहित हुंती अपूजा देसिअ पद्यी । जइ जिनपूजा मिथ्यात्वसहित करइ तउ

१ पूजाउ. २ भावि. ३ 'जि' नथी. ४ गुणहेत. ५ अवांछिता. ६ कारण. ७ पुत्रसंतानादिक. ८ 'जं जिणवर' नथी. ९ तें.

कीधीइ अणकीधी, जेह भणी सम्यक्त्वगुण न ऊपजावइ। मिथ्यात्व-सहितपणातउ जिहां जिहां मिथ्यात्व तिहां तिहां सम्यक्त्व नही, जिम संगमादेवमाहे। अनइ जिहां जिहां सम्यक्त्व तिहां तिहां मिथ्यात्व नही, जिम श्रेणिकमहाराजमाहे। तिणि कारणि मिथ्यात्व मेल्ही जिनपूजा करिवी, जिम सम्यक्त्वगुण ऊपजावइ ॥ ९० ॥

[**मे.**] तीर्थंकरनी पूजा सम्यक्त्वना गुणनइ कारणि भणी। वली तेहइजि पूजा जिनसमय-अनुपदिष्ट अदेशित अविधिं कीधी मिथ्यात्वनइ कारणि हुइ ॥ ९० ॥

[**सो.**] परमेश्वरनी आज्ञाइ जि तत्त्व। ए वात कहइ छइ।

[**जि.**] अथ जिनतत्त्वनउ जाणणहारनी वात कहइ।

जं जं जिणआणाए तं चिय मन्नइ[1] न मन्नए सेसं।
जाणइ[2] लोअपवाहे न हु तत्तं सो य तत्तविऊ ॥ ९१ ॥

[**सो.**] **जं जं जिण॰** जे उत्तम, जे जे बोल वीतरागनी आज्ञाइं करी सहित हुइं तेह जि मानइं। **न मन्नए॰** थाकतउं बीजउं कांइं न मानइ। **जाणइ लोअ॰** इसिउं जाणइ, 'लोकप्रवाहमाहि कांई नथी।' यतो लोकेऽप्युक्तं—

गतानुगतिको लोको न लोकः पारमार्थिकः।
पश्य ब्राह्मणमूर्खेण हारितं ताम्रभाजनम् ॥

एहनु[3] अर्थ। एक मूर्ख ब्राह्मण नदीइं पुण्यहेतु स्नान करिवा लागउ।

---

१ जि. मन्नेइ. २ गाथानो आ उत्तरार्ध जि. मां नथी. लहियानी भूलथी पडी गयेलो छे. ३ 'एहनु अर्थ'थी मांडी 'ढिग कीधा' सुधीनो पाठ बीजी प्रतमां नीचे प्रमाणे प्रकारान्तरे छे—एक मूर्ख ब्राह्मण नदीहद गुणहेतु स्नान करिवा गिउ। त्रिभाणउं धूलिनउ ढग अहिनाण करी नदीनइ तटि सातिउं। नदीमाहि स्नान करिवा

पूठिइं बीजा लोकना सहस्र लाख आवता हूता तीणइं धूलि ढिग करतउ दीठउ। तीण लोके चींतविउं 'धूलिनउ ढग करी नाहीइं तउ घणउं पुन्य हुइ।' सविहु लोके धूलिना ढिग कीधा। ते मूर्ख ब्राह्मण नदीमाहि नाही आपणइ अहिनाणि त्रिभाणु जोवा लागउ। देखइ तउ ढिगरा सहस्र लाख हूआ। त्रिभाणूं लाभइ नही। इसिउ भाव। जे इम जाणइ **सो य तत्तविऊ** तत्त्वनु[1] जाण कहीइ ॥ ९१ ॥

[जि.] शेष[2] थाकतउ जिनाज्ञारहित धर्म न मानइ। वली लोकप्रवाहि तत्त्व नथी इसु जे जाणइ **सो य तत्तविऊ** ते श्रावक तत्त्ववित् तत्त्वनउ जाण ॥ ९१ ॥

[मे.] जे जे वचन वीतरागनी आज्ञाइ सहित हुइं तेहइ जि मानइ, सेप थाकतउ काई न मानइ। इसउ जाण जि लोकप्रवाहमाहि तत्त्व काई नथी इम जाणइ ते तत्त्वनउ जाण ॥ ९१ ॥

[सो.] वली एह जि वात कहइ छइ।

[जि.] अथ जिनाज्ञास्वरूप कहइ।

जिणआणाए धम्मो आणारहिआण फुड अहम्मु त्ति।
इअ मुणिऊण[3] तत्तं जिणआणाए कुणह धम्मं ॥ ९२ ॥

[सो.] **जिणआणाए॰** वीतरागनी आज्ञाइं जि[4] चालता

लागाउ। पूठिइ बीजा लोकना सहस्र लाख आवता हूता वीणइ धूलिनउ ढिग करतउ दीठउ। तीणइ लोकिइ चींतविउ। धूलिनउ ढिग करी नाहीइ तउ घणउ पुन्य हुइ। सवे लोके धूलिना ढिग कीधा।

१ ते तत्त्वनु २ जि नी प्रतमा जेम गाथानो उत्तरार्ध नथी तेम ते उपरना बालावबोधनी पण एक पंक्ति पडी गयेली छे एटले गाथाना पूर्वार्धनो पूरो अनुवाद मळतो नथी ३ मणिऊण, जि मे मुणिऊण य ४ 'जि' नथी

धर्म हुइ । आज्ञारहितपणइं स्फुट[1] प्रकटपणइं[2] अधर्म हुइं । इअ मुणिऊण० इसिउं तत्त्व जाणीनइ वीतरागनी आज्ञाइं जि हे भव्य जीव[3] ! धर्म करउ ॥ ९२ ॥

[जि.] श्रीजिनाज्ञाइं जिनधर्म छइ । आज्ञारहितहूंइं स्फुट प्रकट अधर्म पापइ जि हुइ । इअ इसुं तत्त्व रहस्य मुणीनइं जाणीनइ अहो भविक लोको ! जिननी आज्ञाइं धर्म करउ ॥ ९२ ॥

[मे.] जिननी आज्ञा पालतां धर्म हुइ । आज्ञारहित धर्म करतां स्फुट प्रकट अधर्मइ जि हुइ । इसउं जाणीनइ तत्त्व एहइ जि जें जिननी आज्ञाइं धर्म करउ ॥ ९२ ॥

[सो.] जे गुरुनइ जोगि[4] छतइ धर्म न सांभलइं ते अधर्मी कहीइ । ए वात कहइ छइ ।

[जि.] तत्त्वना जाणनी वात कही घेठा पुरुपनी वात कहइ छइ ।

साहीणे गुरुजोगे जे न हु निसुणंति सुद्धधम्मत्थं ।
ते दुट्ठधिट्ठचित्ता अइसुहडा भवभयविहूणा ॥ ९३ ॥

[सो.] **साहीणे०** सद्गुरुयोग कहइएकहूइं स्वाधीन स्ववश्य आपणइं भाग्यइं करी लाधउ छइ । तीणइं छतइं **जे न हु०** जे न सुणइं न सांभलइं खरा धर्मनउ विचार, सद्गुरु कन्हइ खरउ धर्म पूछी परीछी लिइं नही **ते दुट्ठ०** ते दुट्ट धीरट्ट[5] चित्त हूंता[6] गाढा सुभट संसारनइं भइं करी रहित ते धीरठपणइं इम बोलइं—

न मे दिट्ठे परे लोए चक्खुदिट्ठा इमा रई ।
हत्थागया इमे कामा कालिआ जे अणागया ॥

---

१ स्फुट. २ प्रगटपणइ. ३ जीवउ. ४ योगि. ५ धीट्ठ. ६ हूंतां.

को जाणइ परे लोए अत्थि वा नत्थि वा पुणो ।
जणेण सद्धिं होक्खामि इय बाले पगब्भई ॥

(उत्तराध्ययन सूत्र, अध्य. ५)

सत्तमियाओ अन्ना अट्ठमिया नत्थि नरयपुढवि त्ति इत्यादि बोलतां मरी दुर्गतिइं जाइं । यत उक्तं श्री**उपदेशमालायां**—

जस्स गुरुम्मि परिभवो साहूसु अणायरो खमा तुच्छा ।
धम्मे य अणहिलासो अहिलासो दुग्गईए उ ॥ (गा. २६३)

[जि.] सुगुरुनइ जोगि स्वाधीन स्ववशि हूंतइ जे पुरुष शुद्धउ निर्मल धर्मनउ अर्थ हु निश्चइं न **निसुणंति** सांभलइं नही ते पुरुष घेठा जाणिवा । किसा छइं ? दुष्ट सदोष निर्दय धृष्ट निर्लज्ज चित्त मन जेह्नां हुइ ते दुष्टधृष्टचित्त कहीइ । वली किसा छइं ? संसारनउ भय तिणि करी रहित हूंता अतिसुभट छइं । ते परमार्थवृत्तिइं अभागिया ॥ ९३ ॥

[मे.] गुरुनइ योगि स्वाधीन मिलिइ हूंतइ जे इहां संसारमाहि सूधउ धर्मनउ अर्थ न साभलइं ते जीव दुष्टचित्त हूंता अति गाढा सुभट जे ससार हूंता न बीहइ ॥ ९३ ॥

[सो.] केतलाइ उत्तम गुरुनउ जोग[1] प्रामी मोक्ष लहइ[2], सघलाइ काज साधइं । ए वात कहइ छइ ।

[जि.] अथ गुणवंतनउं स्वरूप बोलइ ।

सुद्धकुलधम्मजा अवि गुणिणो न रमंति लिंति जिणदिक्खं ।
तत्तो वि य परमतत्तं तओ वि उवयारओ मुक्खं ॥ ९४ ॥

[सो.] सुद्ध० केतलाइ सुद्ध खरउ धर्म जिहा वापरइ एहवइ कुलि ऊपनाह हूंता गुरुनइ योगि विनय विवेक वैराग्यादिक गुणवंत

१ योग. २ लगइ.

थाइं । **न रमंति०** संसारना विषयसुखनइ विषइ न राचइं । **लिंति०** जिन वीतरागनी दीक्षा लिइं । ते दीक्षामाहि परम तत्त्व पांच महाव्रत पांच समिति त्रिणि गुप्तिरूप आराधइं । ते आराधी स्व-परलोक नासइं हुइं । धर्मनउ उपकार करइं । उपकारक[1] केवलज्ञान प्रामी मोक्ष लहइं । यत उक्तं श्री**उपदेशमालासिद्धान्ते**—

आसन्नकालभवसिद्धियस्स जीवस्स लक्खणं इणमो ।
विसयसुहेसु न रज्जइ सव्वत्थामेसु उज्जमइ ॥ (गा. २९०)

[जि.] सुद्ध निर्मल मोटा जे कुल धर्मलक्ष्मीवंत कुल तिहां जात उप्पन्नाइं हूंता गुणवंत न रमइं । संसारना भोग न भोगवइ । किंतु जिनोक्त दीक्षाव्रत लिइं । तेह जिनदीक्षानउं किसुं प्रमाण ? **तत्तो वि य परमतत्तं ।** तेह जिनदीक्षा हूंतउ परम तत्त्वज्ञान ऊपजइ । **तओ वि** तेह परमतत्त्व हूंतउ **उवयार** लोकहूइं उपगार हुइ । अथवा आपणपाहूइं उपगार हुइ । भलां धर्मानुष्ठान करइं । अनेरा पाहइं करावइं । **मुक्खं** तेह उपगार हूंतउ मोक्ष हुइ । मोक्षि अनिर्वचनीय अप्रतिपातिया शाश्वतां सुख छइं । तेह भणी गुणवंत दीक्षा लिइं ॥ ९४ ॥

[मे.] जीणइ कुलि वीतरागनउ धर्म वापरइ तीणइ कुलि ऊपना हूंता विनयविवेकादिक गुणसहितइ हूंता संसारना सुखनइ विषइ न राचइं । अनइ जिनदीक्षा लिइं । तिवार पछइं परम तत्त्व ओलखइ । ते आराधता हूंता क्रमिहिं मोक्ष पामइं ॥ ९४ ॥

[जि.] अथ नारकी कहइ ।

वन्नेमि नारयाओ जेसिं दुक्खाइं संभरंताणं ।
भव्वाण जणइ हरिहररिद्धि[2]समिद्धी वि उद्धोसं ॥ ९५ ॥

---

१ उपकारी. २ °रिद्ध°.

[**सो.**] **वचेमि०** ते नारकीइ वर्णवउं, जे नारकीनां दुःख सिद्धांतनइं वलिइं जाणीनइ स्मरतां हुंतां **भव्वाण** भव्य जीवहूइं **हरिहर** विष्णु ईश्वरादिकना सरीपीइ ऋद्धिनउ विस्तार **उद्धोसं** ऊकांटउ करइ । जाणइं एह रिद्धि लगइ जीव पाप ऊपार्जी नरगिं[1] जाइं । एह्वां दुःख पामइं । इम चीतवतां भय लगइ सयर धूजइं । संसारना सुख उपरि वैराग्य ऊपजइ ॥ ९५ ॥

[**जि.**] नारकीइ वर्णवउं हउं, जेह्वां नारकीना दुःख संभारता स्मरता हूंता **भव्वाण** भव्य जीवहूइं हरि विष्णु हर ईश्वर तेहनी ऋद्धि समृद्धि लक्ष्मीनउ विस्तार **उद्धोसं** उद्धर्पण रोमांच जणइ करइ । एतलइं एवहां काइं नारकीहूइं दुःख छइं, जे दुःख संभारताइं ज हूंतां अति भय लगी कंप ऊपजावइं । कंप लगी रोमांच ऊपजइ । अनइ जि को संसारनां दुःख हूंतउ बीहइं ति ए न करइं । तिणि कारणि अम्हे नारकीनां दुःख संभारत्ता हूंतां पाप न करां । तिह भणी नारकी वर्णवां । जिम चोरनां बंधमरणादिक दुःख देखी साधु माणस लगारई चोरी अन्याय न करइं ॥ ९५ ॥

[**मे.**] ते नारकीइ वर्णवीइं, जे नारकीनां दुक्ख संभारतां हूंतां भव्य जीवहूइं हरिहरादिक देवतानी ऋद्धिनउ विस्तार **उद्धोस** कहतां रोमांच ऊकांटउ करइ । जाणइ एह रिद्धि लगी नरगि दुःख पामीस्यइं ॥ ९५ ॥

[**सो.**] केतलाइ **उपदेशमालानु**[2] अर्थ मानइ, पुण करइं नहीं । तेह आश्री कहइ छइ ।

[**जि.**] अथ बिहुं गाथाइं श्री**उपदेशमाला** वर्णवइं ।

१ नरकि. २ श्रीउपदेशमालनउ.

सिरिधम्मदासगणिणा रइयं उपदेसमालसिद्धंतं[1] ।
सव्वे वि समणसड्ढा मन्नंति पढंति पाढंति ॥ ९६ ॥
तं चेव केवि[2] अहमा छलिया अहिमाणमोहभूएणं[3] ।
किरियाए हीलंता ही ही दुक्खाइं न गणंति ॥ ९७ ॥

[सो.] **सिरिधम्मदास०** श्रीधर्मदासगणिआचार्यं श्रीमहावीर विजईया छतां श्रीउपदेशमालासिद्धांत[4] रचिउ कीधउ, अनेक महात्मा श्रावक आथी उपदेश विचाररूप । **सव्वे वि०** ते अर्थ[5] सविहु गच्छना महात्मा श्रावक मानइं पढइ पढावइं ॥ ९६ ॥

तं चेव० पुण तेह जि माहि केतलाइ अधम अभिमान अहंकार अनइ मोह अज्ञान तेहरूपिइं भूति छल्या, अहंकार अजाणिवाना वाह्या तेह जि श्रीउपदेशमालाहूइं किया करी हीलइं । अवज्ञाइं[6] करइं । **ही ही०** आहा ! ते बापडा आगलि आपणपाहूइं दुःख आवतां गणता नथी । ते मूर्ख इसिउं नथी जाणता जे ईणं सिद्धांतनी अवज्ञाइं करी अनंत संसारमाहि रुलिस्युं । अनंता दुःख प्रामिस्यउं ॥ ९७ ॥

[जि.] श्रीधर्मदासगणि नामाचार्यइं रचउ कीधउ श्रीउपदेशमालासिद्धांत **सव्वे वि** सघलाई श्रमण महात्मा **सड्ढ** श्रावक मानइं पढइं पढावइं ॥ ९६ ॥

केईएक अधम पुरुष अतिमान मोह रूपिया भूत प्रेत तेहे छल्या हूंता **ही ही** खेदे आपणमाहूइं दुःखइं न गणइं न चींतवइं । किसा छइ अधम ? **तं चेव** श्रीउपदेशमालासिद्धांत अवगणइं ते अधम भूते छल्या पुरुष सरीषा जाणिवा । जिम भूतव्यापिउ लोक माथउं पेरं

१ जि. उवएसमाल°, मे. उवएसमालसम्मत्तं. २ जि. किंवि. ३ जि. °भूएहिं. ४ °माल°. ५ अहींथी मांडी ९७मी गाथाना बालावबोधमां 'अहंकार अनइ मोह' सुधीनो पाठ सो.नी बीजी प्रतमांथी पडी गयेलो छे. ६ अवज्ञा.

आहणतउ मरणपीडादिक दुःख न चींतवइ तिम सिद्धातनिंदक पुरुष अहंकारि हूंतउ दुःखीउ थाइ ॥ ९७ ॥

[मे.] श्रीधर्मदासगणिइं श्रीमहावीर जीनताइ जि श्रीउपदेशमालाप्रकरण सिद्धांत जाईउ रचिउ सव्वे वि सघलाइ महात्मा श्रावक मानइं पढइं पढावइ ॥ ९६ ॥

तेह जि उपदेशमाला केईएक अधम अभिमान अनइ मोह रूपीइ भूति छल्या हूंता क्रियाइ करी अवहेलता हूंता ही ही इसिइ खेदि आगामिया नरकना दुःख गणइं नहीं। ते मूर्ख जाणता नथी जि ससारमाहि रुलीस्यइ ॥ ९७ ॥

[सो.] वीतरागनी आज्ञाभंगि मोटउं पाप। ए वात कहइ छइ।

[जि.] अथ जिनेन्द्रनउ आज्ञाप्रताप वर्णवइ।

इयराणं[1] ठकुराणं[2] आणाभंगेण होइ मरणदुहं।
किं पुण तिलोयपहुणो जिणिंददेवाहिदेवस्स[3] ॥ ९८ ॥

[सो.] इयराणं० इतर सामान्य ठाकुराईनी[4] आज्ञाभंगि तेहना आदेशनइ लोपि मरणदुःख प्रामीइ। ते रीसाविउ ठाकुर[5] मारइ। किं पुण० त्रैलोक्यनउ प्रभु ठाकुर जे जिनेन्द्रदेवाधिदेव सर्वज्ञनउ नायक तेहनी आज्ञानइ लोपि एक मरणदुःखनउं सिउ कहीइ ? अनंता मरणदुःख प्रामइ ॥ ९८ ॥

[जि.] इतर पाधरा ठाकुरनी आज्ञा भाजिवइ मरणादिक दुःख हुइं, तउ पछइ त्रिलोकप्रभु त्रिलोकनायक श्रीजिनेन्द्रदेव तेहनी आज्ञा भाजिवइ करी महादुःख हुइं तेहनउ सिउं कहिवउ ? ॥ ९८ ॥

---

१ जि मे. इयराण २ जि मे ठक्कुराण ३ जिणद°, मे जिणिंद°. ४ ठाकुरनी ५ ठाकुर

[मे.] इतर पाधरा ही ठाकुरनी आज्ञानइ भंगि मरणादिक दुःख ऊपजइं। पछइ त्रैलोक्यनउ प्रभ जिनवरेन्द्र देवाधिदेव तेहनी..... आज्ञानइ भंगि जे दुक्ख उपजइं ते किम कही सकी

[सो.] वली एह जि वात कहइ छइ।

[जि.] अथ जिनवचननउ गुण कहइ।

जगगुरुजिणस्स[1] वयणं सयलाण जियाण होइ हियकरणं[2]
ता तस्स विराहणया कह धम्मो कह[3] णु जीवदया ॥९९॥

[सो.] **जगगुरु०** जगत्त्रयनउ गुरु श्रीजिनेन्द्र वीतराग तेहनउं वचन सर्व जगना जीवहूइं हितकारिउं छइ। **ता तस्स०** तउ तेहनी विराधना जउ करइ, तेहनउं वचन न मांनइं, अप्रमाण करइं तउ **कह धम्मो** तेहहूइं धर्म किहां छइ? **कह णु जीवदया** अनइ तेहहूइं जीवदया किहां छइ? तेह भणी वीतरागनइं वचनइं जीव ओलखाइ[4], जीवदयानु प्रकार पुण जाणीइ। वीतरागनां वचनइ जि उपरि आस्था[5] नही तउ किम जीव अनइ जीवदया जाणीइ? ॥ ९९ ॥

[जि.] जगत्त्रयनउ गुरु जे जिन श्रीवीतरागदेव तेहनउं **वयण** वचन **सयलाण जियाण** सघलाई जीवहूइं हितकारक हुइ। **ता** तिणि कारणि **तस्स** तेह जिनवचन तणी विराधनाइं आशातनाइं करी **कह** किसु धर्म हुइ? अपि तु न हुइ। **णु** प्रश्ने। **कह** किसु जीवदयाइ हुइ? जीवदया पुण न हुइं। तिणि जि कारणि जिनवचननी विराधना न करिवी। किं तु पालना करिवी, जिम जीवहूइं रूडउं हित हुइ ॥ ९९ ॥

---

१ जगगुरु°. २ हिइकरणं. ३ मे. कहण. ४ उलखाइ. ५ जु आस्था.

[मे.] जगगुरु जिनेश्वर तेहनउं वचन सघलाइ जीवनइ सुख कारक हुइ । तउ ते परमेश्वरना वचननी विराधनाइं कीधीइं किहा धर्म, किहा जीवदया ? ॥ ९९ ॥

[सो.] केतलाइ शुद्ध[1] चारित्रियानी अवज्ञानइं काजिइं जमलउ बाह्य क्रियाडंबर माडइं । ते वात कहइ छइ ।

[जि.] अथ सिद्धात हुतु विरुद्ध अधिक क्रियाडंबर जे धरइ ते उद्दिसी कहइ ।

किरियाइफडाडोवं[2] अहियं साहंति[3] आगमविहूणं ।
मुद्धाण रंजणत्थं सुद्धाणं हीलणट्ठाए ॥ १०० ॥

[सो.] **किरियाइ॰** केतलाइ[4] बाह्य तप क्रियादिकनउ फटाटोप आडंबर[5] चारित्रियाइ पाहइ अधिकउ कहइ दिपाडइं, आगम सिद्धातनी आज्ञारहित आपणी बुद्धिइं कल्पीनइ **मुद्धाण॰** मुग्ध भोला लोकनइं[6] रंजविवानइ काजिइ । **सुद्धाणं॰** शुद्धचारित्रिया तेहहूइं अपमाननइं काजिइं, तेहे ठउडवा[7] इम करइ । पुण जाण हुइं ते तेन्हे न वाहीइं ॥ १०० ॥

[जि.] आगमविहूणं सिद्धात जे नथी कहिउं तेह क्रिया दिकनउ स्फुटाटोप प्रकट आडंबर अधिक साधइं करइ । किसा भणी ? मुग्ध लोग सिद्धातरहस्यना अजाण तिहहूइं रंजिवा भणी अनइं वली सुद्ध सदाचारी पुरुष तेहूइं हीलनाथि अवहेलनानिमिचि । एतावता सिद्धात पाषइ क्रिया तपनउ आडंबर घणउ करइं । तेहहूइं मुग्धरंजन मात्र फल छइ । सामुहउं सदाचारीनी अवहेलाइं करी पाप हुइं । ए

---

१ शुद्ध २ जि. मे "फुडाडोव ३ साधति ४ केतला ५ 'आडंबर' नथी ६ लोक हैं ७ ठउआवा

कष्टई करइं अनइ आगलि पापइ जु उपार्जइं। एहां एह जु ऊपाणउ साचउ हुइ—एगं च मालपडणं अन्नं लउडेण सिरि घाओ ॥ १०० ॥

[मे.] क्रियानउ फटाटोप बाह्य तपनउं करिवउं चारित्रिया पांहति अधिकउं देपाडइ। आगमविहीन सिद्धांतनी आज्ञाइं रहित आपणी बुद्धिइं मुग्ध भोला लोकनइं रंजिवानइ काजि अनइ सुद्ध चारित्रिया तेहना अपमाननइ काजि, हीलनइ हेति ॥ १०० ॥

[सो.] जे धर्मनउ उपदेश दिइ ते गाढउ हितूउ। ए वात कहइ छइ।

[जि.] अथ जिनधर्मनउ देणहार पुरुषनउं स्वरूप कहइ।

जो देइ सुद्धधम्मं सो परमप्पा जयम्मि न हु अन्नो।
किं कप्पदुमसरिसो इयरतरू होइ कइया वि॥ १०१ ॥

[सो.] **जो देइ०** संसारना काजकाम व्यवसाय वाणिज्यनइ विषइ प्रेरणा सहुइको मा बाप सगा सणीजा करइ। पुण जे सूधउ खरउ धर्म उपदेशिइ[1] देखाडइ ते परमात्मा जगमाहि परमहितूउ[2] कहीइ। अनेरउ न कहीइ। **किं कप्पदुम०** जिम बीजा धव खइर पलासादिक घणाइ वृक्ष हुइ, पुण मनोवांछित पूरणहार कल्पद्रुम सरीसउ एक[3] वृक्ष न हुइ। तिम कल्पद्रुम सरीखउ धर्म दिण्हार[4]। इह[5] लोकना काजना प्रेरण्हार बीजा वृक्ष सरीषा जाणिवा ॥ १०१ ॥

[जि.] जे सुद्धउ साचउ धर्म दिइ सीखवइ ते पुरुष परमात्मा गाढउ मोटउ **जयम्मि** जगत्माहे। तेह सरीखउ **न हु अन्नो** अनेरउ मोटउ कोई नही। किसुं? कल्पद्रुम सरीषउ अपर वृक्ष

---

१ उपदिसइं. २ हितूउ. ३ एकइ. ४ देण्हार. ५ इ.

कइया वि कदापि किवारई हुइ ? अपि तु न हुइ । कल्पद्रुम सरीषउ शुद्ध धर्मदायक जाणिवउ ॥ १०१ ॥

[मे.] सम्यक्त्वमूल वार व्रतनउ सूधउ धर्मनउ उपदेश जको दिइ तेहइ जि परमात्मा । जगत्त्रयमाहि परमपुरुष अनेरउ कोई नहीं । किमउं ? कल्पवृक्ष सरीषउ इतर बीजउ को वृक्ष हुइ कहीइ ? अपि तु नहीं ॥ १०१ ॥

[सो.] जे गुणवंतना गुण अनइं दोषवंतना दोष न ओलखइं[1] ते आश्री कहइ छइ ।

[जि.] अथ पंडित अनइ मूर्षहूइं गाढउं आंतरउं कहइ ।

जे अमुणिअगुणदोसा ते[2] कह विबुहाण हुंति मज्झत्था ।
अह ते वि हु मज्झत्था ता विसअमिआण तुल्लत्तं ॥१०२॥

[सो.] जे अमुणिअ० जे गुणवंतहूइं गुणवंत भणी ओलखइं[3] अनइ दोषवंतहूइं दोषवंत भणी न जाणइं । गुणवंत अनइ दोषवंतइ बिहुइं सरीषाइ जि देखइ । इम कहइ 'अम्हारइ सघलाइ[4] देव, सघलाइ गुरु सरीखाइ जि । अम्हारइ रागद्वेष नही । अम्हे मध्यस्थ ।' ते जाणइ नहीं[5] मध्यस्थ भणी किम बइसइ ? ते गाढा अजाणइ जि कहीइं । जेह भणी तेहहूइं वि दोष लागइ, जेह भणी गुणवंतना गुण छताइ[6] अछता करइं । दोषवंतमाहि[7] अछता गुण आरोपइ छइ[8] । ए वि दोष तेहहूइं लागइं । **अह ते०** जउ तेह मध्यस्थ कह्वराइं **ता वि०** तउ विष अनइ अमृत तथा रत्न अनइ काच, आंबउ अनइ लींब, साप अनइ फूलमाल, अंधारउं अनइ अजूआलं

१ उलखइ. २ तेह विबुहाण. ३ उलखइं. ४ सघला. ५ नहीइ. ६ छता. ७ दोषवंतना. ८ 'छइ' नथी.

एहइ[1] तोल[2] तेहहूइं सरीपइ[3] जि थिया। एहइ माहि रूडउं विरूउं कहतां मध्यस्थपणउं जासिइ। तेह भणी इसिउं जाणिवउं ए अजाणिवुं जि कहीइ, पुण मध्यस्थपणउं न कहीइं[4]। इसिउ भाव ॥ १०२ ॥

[जि.] जे पुरुष अमुनित अज्ञात गुण अनइ दोष छइं ते अमुनितगुणदोष पुरुष मूर्ष मध्यस्थ हुइं, पंडितमाहे गणाइं **ता** तउ पछइ विस अनइं अमृतहूइं तुल्यत्वं सरीपा हुई। एतलइ विस सरीपउ मिथ्यात्वी मूर्ष अनइ अमृत सरीपउ तत्त्वज्ञ पंडित जाणिवउ। इणि कारणि ए बिहुंहूइं घणउ आंतरउ ॥ १०२ ॥

[मे.] जीए गुण नइ दोष नहीं जाण्या ते किम बुध पंडितमाहि मुख्यपणउं लहइं? अथवा तेहइ गुणदोषना अजाण जु मध्यस्थ विद्वांसमाहि मुख्यपणउं लहइ तउ विष नइ अमृत बिहुंनइं तुल्यपणउं हूउं ॥ १०२ ॥

[सो.] धर्मइ जि आपणउ, बीजउ कांई नही। ए वात कहइ छइ।

[जि.] अथ सम्यक्त्व विवरइ।

मूलं जिणिंददेवो[5] तव्वयणं गुरुजणं महासयणं।
सेसं पावट्ठाणं परमप्पाणं[6] च वज्जेमि ॥ १०३ ॥

[सो.] **मूलं०** पहिलउं जिनेंद्र वीतरागदेव जीणं धर्म देपाडिउ। अनइ[7] परमेश्वरनउं वचन सिद्धांत। त्रीजउं[8] ते सिद्धांतना प्रकासण्हार श्रीगुरुजन पूज्य आचार्य[9] साधु श्रावक। ए त्रिणिइ महास्वजन गाढा सगा। **सेसं०** बीजउं सहू धर्मरहित। आपणउं पुत्र-

१ एह जि. २ बोल. ३ सरीपा. ४ कहइ. ५ जिणंद°. मे. जिणंद°. ६ जि. परमप्पयणं. ७ अनइ बीजउं ते. ८ त्रीजुं. ९ आचार्य उपाध्याय.

[जि.] अद्यापि आज लगइ **तडयडा** कडकडा शुद्ध निर्दोष गुणवंत केईएक गुरु दीसइं । पर केवल प्रभु श्री**जिनवल्लभसूरि** सरीपउ वली **जिनवल्लभसूरि**इ जि । अनेराना अभावइतउ अन्योन्योपमा छाजइ ॥ १०७ ॥

गुरु श्री**जिनवल्लभसूरि**नइ वचनइ कहीएकहूइं **सम्मं** सम्यक्त्व नइ उलसइ न प्रकट हुइ । अथ पछइ दिनमणितेज सूर्यनां किरण उलूक घूयड तेहनउं अंधत्व अंधपणउं किसउं हरइ ? अपि तु न हइ । सूर्यना तेज सरीपउं विश्वप्रकासक श्री**जिनवल्लभसूरि**नउं वचन अभागिया पुरुषरूपिया घूयड तेहनउं अज्ञानरूपिउं अंधपणउं न फेडइं तउ ते अभागिया घूयडना कर्मइंजिनउं दूषण ॥ १०८ ॥

[मे.] अजी एवहइ तीर्थकालि द्रव्य क्षेत्र काल भावनइ मेलि गुरु गुणवंत सूधा क्रियावंत आकरा दीसइं । पणि श्री**जिनवल्लभसूरि** सरीपा वली श्री**जिनवल्लभसूरि** जि ईणइं कालि दीसइं ॥ १०७ ॥

श्री**जिनवल्लभ**सुगुरुने वचने कहिनइं सम्यक्त्व उल्लसइ नहीं ! अपि तु भव्य जीव सेवाकारक सघलाइंनइं सम्यक्त्व उलसइ । अथवा वली सूर्यनउं तेज घूअडनइं अंधपणउं किमइं फेडइं ? अपि तु न फेडइं । तिम जे अभव्य दुरभव्य छइं ते गुरुने वचने सम्यक्त्व न ओलसइं । इसउ भाव ॥ १०८ ॥

[सो.] संसारनउं मरणादिक स्वरूप देखीनइ केतलाइंहूइं[1] वैराग्य न ऊपजइं । ए वात कहइ छइ ।

[जि.] अथ तेह ज अभागियानउं स्वरूप कहइ ।

तिहुअणजणं मरंतं दट्ठूण निअंति जे न अप्पाणं ।
विरमंति न पावाओ धिद्धी धिट्टत्तणं ताणं ॥ १०९ ॥

१ 'केतलाई हूई' नथी.

[सो.] तिहुअण॰ त्रिभुवननउ लोक एवडउ सघलउइ मरइ छइ। को रहिउ नहीं, रहिसिइ नही। एव्हउं स्वरूप देषीनइ आपणपउं न जोइ, 'अम्हहूई मरण आवइ छइ, धर्म करउं।' **विरमंति॰** पाप थिकउ विरमइं नहीं, उव्हटइ नहीं। **धिद्धी॰** तेहना धीरष्टपणा प्रतिइं धिग् पडउ, जेह भणी लगारइ मरणमय गणता नथी ॥ १०९ ॥

[जि.] जे पुरुष त्रिभुवननउ लोक मरतउ देखी आपणपउं **न निअंति** न चींतवइं, वैराग्य न पामइं अनइं पाप हूंतउ विरमइं नही तेहां पुरुषां तणउं धेठपणउं तेहहूई धिग् धिग् ॥ १०९ ॥

[मे.] त्रिभुवनना लोक मरता देषीनइ आपणपउं जोइं नहीं जि 'अम्हेई मरिस्यउं।' एवहउं देषी जे पाप हूंता विरमइं नहीं तेहना धेठपणानइं धिग् धिक्कार पडउ ॥ १०९ ॥

[सो.] वली एह जि वात कहइ छइ, बिहु गाहे।

[जि.] अथ कुत्सित स्नेहपणानउं फल बिहुं गाथाइं कहइ।

सोएण कंदिऊणं कुट्टेऊणं सिरं च उअरं च।
अप्पं खिवंति नरए तं पि हु धिद्धी कुनेहत्तं ॥ ११० ॥
एगं पिअमरणदुहं अन्नं अप्पा वि खिप्पए नरए।
एगं च मालपडणं अन्नं लउडेण सिरि घाओ[1] ॥१११॥

[सो.] को सगउं मरइ तउ अजाण जि शोकिइं[2] करी आक्रंद करइ अनइ माथउं पेट कूटइ। तीणइं करी गाढउं मोहनीय कर्म उपार्जीनइ आपणपउं नरगि[3] घातइं। **तं पि॰** तेहइ कुस्नेह विरूआ स्नेह प्रतिइं धिग पडउ ॥ ११० ॥

---

१ जि. मे. सिरघाओ. २ शोकइं. ३ नरकि.

एगं० एक तां प्रिय अभीष्ट मूउ ते दुःख । बीजउं वली शोक करी पाप ऊपार्जी नरगि[1] जाइ । बीजउ ते दुःख । दृष्टांत कहइ छइ । एक तां ऊंचा माल थकउ पडिउ । बीजउ लडइ[2] करीइ माथइं आहणिउ । ए लौकिक दृष्टांत ॥ १११ ॥

[जि.] अज्ञानी लोक शोकि करी क्रंदी रोई **सिर** माथउं **उअर** पेटइ पुण कूटीनइं आपणपउं नरगि क्षिपइं घालइं । **तं पि०** ते कुत्सित-स्नेहपणाहूंई धिक्कार पडउ ॥ ११० ॥

एक तउ प्रिय वाल्हउ तिहनउं मरणदुःख आगइ छइ अनइं बीजउं आपणपउं नरगि क्षिपइ घालीइ । एक तउ माल हूंतउ **पडण** पडिवउं । अनेरउं वली ऊपरि माथइ लउडानउ घाउ । इणि कारणि शोक न करिवउ, जिम नरगि न पीडाइं ॥ १११ ॥

[मे.] स्वजनादिकनइ मरणि शोक आक्रंद करीनइ, शिर कूटीनइ, हीउं ताडीनइ आपणपउं नरगनइ विषइ क्षिपइं । तउ तेहइ कुस्नेहनइं धिग् धिकार हुउ ॥ ११० ॥

एक तां प्रियतम वाल्हा तेहना मरणनउं दुक्ख । बीजउं आपणपउं नरकनइ विषइ क्षेपइ । तउ ए वात साची हुई । एक माला हूंतउं पडिउं । वली लकुटनउ घाउ माथइ वाजइ ॥ १११ ॥

[सो.] साचा धर्मना धणी गुरु[3] नइ श्रावकइ दुर्लभ । ए वात कहइ छइ ।

[जि.] 'स्नेहमूलानि दुःखानि' इसुं स्थापी सांप्रत दुःषमा कालनउं स्वरूप कहइ ।

---

१ नरगि २ लउडई. ३ गुरइ.

संपइ दूसमकाले धम्मत्थी सुगुरु सावया[1] दुलहा ।
नामगुरु नामसड्ढा सरागदोसा बहू अत्थि ॥ ११२ ॥

[सो.] संपइ० हवडां दुःखमा कालि पांचमइ आरइ वर्त्तइं[2] निष्केवल धर्मार्थी सुगुरु अनइं सुश्रावक दुर्लभ थिया, जे आपणउं पिरायुं काइं न जोअइं[3] । एकलउं धर्म जि जोइं एहवा अति थोडा । **नामगुरु०** नामिइं करी गुरु । नामिइं करी श्रावक । **सराग०** जेहहूइं[4] आपणा विरूआ[5] ऊपरि राग, बीजा गुणवंतइ ऊपरि द्वेष, **बहू अत्थि** एहवा घणा[6] छइं ॥ ११२ ॥

[जि.] संप्रति हिवडां दुःषमाकालि धर्मार्थी धर्मना करणहार सुगुरु श्रावक दुर्लभ छइं । तिणि कारणि **सरागदोसा** रागद्वेषसहित हूंता **नामगुरु** नामधारक घणाइ छइं । ते दुःषमा कालनउं प्रमाण ॥ ११२ ॥

[मे.] सांप्रत दुःखमा कालि धर्मार्थी सुगुरु नइ श्रावक दोहिला पामीइं । पणि नामिं गुरु, नामिं श्रावक रागद्वेषसहित घणाइ दीसइं ॥ ११२ ॥

[सो.] धर्म छइ भाग्याधीन । ए वात कहइ छइ ।

[जि.] अथ धन्य अनइ अधन्यनउं स्वरूप कहइ ।

कहिअं पि सुद्धधम्मं काहिं[7] वि धन्नाण जणइ आणंदं ।
मिच्छत्तमोहिआणं[8] होइ रई मिच्छधम्मेसु ॥ ११३ ॥

[सो.] कहिअं पि० केतलाइ धन्य उत्तम जीवहूइं खरउ धर्म कहिउ सांभलिउ हर्ष करइ । धर्म करतां देखी कहिवुं किसिउं ?

---

१ जि. मे. सावगा. २ वर्त्ततइं. ३ जोईइं. ४ 'जेहहूइं' मधी. ५ विरूआइ. ६ घणाइ. ७ प्रे. काह. ८ मे. मिच्छित्त°.

मिच्छत्त० ये निबिड मिथ्यात्वि करी मोह्या वाह्या छइं तेहहूंई साचउ धर्म साभलिउ दीठउ[1] हर्ष न करइं। तेहहूंइं मननी रति मिथ्यात्त्वधर्मइ जि ऊपरि हुइ। ते आपणा आपणा कर्मनउ विशेष। ते अभव्य दूरभव्य तीहलुं कारण[2] ॥ ११३ ॥

[जि.] केईएक धन्यहूंइं सुद्ध निर्मल धर्म कथितमात्र हूंतउ आणंद जणइ ऊपजावइ। अनइं अधन्यहूंई मिथ्यात्त्वइं मोहित हूंता मिथ्यात्त्वधर्मनइ विषइ रति संतोष हुइ ॥ ११३ ॥

[मे.] कहिउंइ हूंतउ सूधउ धर्म केनलाइं भाग्यवंतनेइं आणद ऊपजावइ अनइ मिथ्यात्त्वमोहित जीवनइं मिथ्यात्त्वधर्मनइ विषइ रति हुइ ॥ ११३ ॥

[सो.] केतलाइ जीव धर्मनी बुद्धिइं पाप करइं छइं। ते आश्री कहइ छइ।

[जि.] अथ जिनधर्मीनउं स्वरूप बिहुं गाथाइ करी कहइ।

इक्कं पि महादुक्खं जिणसमयविऊण सुद्धहिययाणं।
जं मूढा पावाइं धम्मं भणिऊण सेवंति ॥ ११४ ॥

[सो.] इक्कं पि० जिनवचनना जाण निर्मल मनना धणी तेहनइ मनि एह जि एक महादुःख, **जं मूढा०** जं मूढ मूर्ख बापडा मिथ्यात्त्वी धर्म भणी[3] धर्मनी बुद्धिइं पाप सेवइं। यागादिक करइ। पापइ पुण्य भणी मानइं। एव्हउं असमंजस देखी जिनधर्मना जाणनइं[4] मनि असमाधि ऊपजइं ॥ ११४ ॥

[जि] निर्मलहृदय अनइ जिनसिद्धांतना जाण तेहाहूंइं एकू ज मोटउ **दुक्खं** जे **मूढा** मिथ्यात्त्वी धर्म भणी धर्मबुद्धिइं पापहिंसादिक

१ दीठइ २ करण ३ 'धर्म भणी' नथी ४ जाणइनइ

सेवइं । एतलउं जि एकु दयालपणइं दुःख । बीजउं स्यारईं दुःख नही । जिनेंद्रपणातउ ॥ ११४ ॥

[मे.] जिनसमयना चेत्ता सूधा हीयाना धणीनइं ए मोटउं दुःख । ए किसिउं ! जे मूर्ख लोक पापनइ धर्म करीनइ सेवइं । मुखि कहइ 'अम्हे धर्म करउं छउं' अनइ करइं पाप ॥ ११४ ॥

[सो.] सम्यक्त्वना पालण्हार थोडाइ जि हुइं । ए वात कहइ छइ ।

थोवा महाणुभावा जे जिणवयणे रमंति संविग्गा ।
तत्तो भवभयभीया सम्मं सत्तीइ पालेंति ॥ ११५ ॥

[सो.] थोवा॰ ते महानुभाव गुरुया भाग्यवंत थोडा, जे॰ जिनवचननइ[1] विषइ संवेग वैराग्यवंता हूंता रमइं । रात्रिदिवस[2] श्रीसिद्धांतनी आस्था मनि आणइं । **तत्तो॰** तेहइ पालइ जे संसार-माहि पडियानइ भयं[3] बीहतां हुंता सम्यग् साचउं जिनवचन आपणी शक्तिनइं मानिइं खरूं क्रियां करी पालइं । एह्वा ते अति थोडा ॥ ११५ ॥

[जि.] जे जिनधर्मी थोडा महानुभाव गरिष्ट हूंता श्रीजिनवचन-नइ विषइ संविग्न सावधान थिका रमइं, स्नेह करइं । तिणि कारणि जिनवचनकारक पुरुष संसारना भय हूंता बीहता सक्तिइं करी सम्यक्त्व पालइं ॥ ११५ ॥

[मे.] ते महानुभाव थोडिला, जे जिननां वचन तेहनइ विषइ संवेगी थका रमइं । तिवार पछा ते भव संसारना भय थका बीहता सम्यक्त्व यथाशक्ति करी पालइं ॥ ११५ ॥

---

1 जिनवचन श्रीसर्वज्ञना वचननइ. 2 रात्रि दीस. 3 भइं.

अप्पा वि जाण वइरी तेसिं कह होइ परजिए करुणा।
चोराण बंदियाण[1] य दिट्ठंतेणं मुणेअव्वं ॥ ११८॥

[सो.] अप्पा० जेहनइ आपणउ आत्माइ वइरी। आपणा जीवइनूं हित नथी करतां तेल्हा पाप करइं[2] छइं। जेल्हा[3] आपणउ आत्माइ गाढउ संसारमाहि रुलइं। तेहहूइं अनीरा[4] जीवनइ विषइ करुणा किम हुइ? **चोराण०** जिम चोर अथवा जे माणस बंदि धरइं तेहनइ दृष्टांतिइं जाणिवुं। जिम ते चोरी करतां, बंदि धरतां, परहूइं अनर्थ करतां आपणउं न चींतवइं। 'अम्हे धरीसिउं, मारीसिउं, अनर्थ प्रामिस्यउं' ए बात कांइं विमासइं नहीं। तिम तेहइ पाप करता चीतवइं नहीं॥ ११८॥

[ज्ञि.] जाण० जेहां पुरुषहूइं आपणपउ आत्मा वइरी, आपणा जीवइहूइं हित न करइं **तेसिं** तेहां पुरुषहहूइं **परजिए** पारका जीव ऊपरि किसु करुणा दया हुइ? अपि तु न हुइं। ए वात **चोराण** चोरनइ दृष्टांति, **बंदियाण य** बंदी बंदोर बांदि झाल्या लोक ते बिहुने दृष्टांति जाणिवी। जिम चोर आपणा जीवइ ऊपरि दया अणकरतउ हूंतउ पारका जीव ऊपरि दया न करइं। जइ चोर आपणाई जीवहूइं विरूउं चींतवी लोकइहूइं परद्रव्य लेता मारइ। अनइं जे जे आपणा जीवहूइं हित न करइं ते ते पारका जीव ऊपरि दयाई न करइं। जिम चोर। अनइं जे जे पारका जीव ऊपरि दया करइं ते ते आपणाइ जीवहूइं हित करइं। जिम सुसाधु लोक। इसुं प्रमाणिकनउं वचनइ जाणिवउं॥ ११८॥

[मे.] जेहनइ आपणउ आत्मा वयरी, आपणा आत्मा ऊपरि दया न ऊपजइं तेहनइ अनेरा जीव ऊपरि करुणा दया किम हुइ?

१ बंदियाणइ. २ करय. ३ जेहे. ४ अनेरा.

इहां चोर नइ मंदीना दृष्टांत जाणिवा। जिम चोर चोरीइं पइसइ अनइ मरिवाइतउ वीहइ नहीं। धंदियाण चंदि झालिवा पइसइ तिम जाणिवउं ॥ ११८ ॥

[सो.] जीव उत्तम, मध्यम, अधम त्रिहु प्रकारे हुइं। ए वात त्रिहु गाहे कहइ छइ।

[जि.] अथ सुश्रावकि दयावंति मोटा पापव्यापार न करिवा। इसुं कहइ।

जे रज्जधणाईणं कारणभूआ हवंति वावारा।
ते वि हु अइपावजुआ धंत्रा छड्डुंति भवभीया ॥ ११९ ॥

[सो.] जे धन्य उत्तम छइं ते जेहे व्यापारे राज्य लाभइ, धन धान्य समृद्धि मान महत्त्व लाभइ **ते वि हु०** तेहइ व्यापार अति पापमय[1] जाणी छांडइ। संसारना दुःखमए बीहते दीक्षा लेई आपणां काज साधइं ॥ ११९ ॥

[जि.] जे व्यापार राज्यधनादिकहूइं कारणभूत हुइं, जेह व्यापार हूंता राज्य धन धान्य सुवर्ण रूप्य रत्नादिक ऊपार्जीइं ते वि तेहई व्यापार हु निश्चई अतिपापसंयुक्त हुइं। तउ धन्य कृतपुण्य संसार हूंता बीहता ते व्यापार छांडइ ॥ ११९ ॥

[मे.] जे राज्यधनादिक ऊपार्जिवानइ कारणभूत व्यापार हुइ तेहइ अतिपापयुक्त व्यापार भव संसार हूंता बीहता छांडइं। तेही धन्य जाणिवा ॥ ११९ ॥

---

१ पापमइ.

वीहामणा अरण्यमाहिं भमइं । असंख्यातउ काल नवनवे भवांतरे रुलइ । तेह भणी उत्सूत्रप्ररूपणा विरूई । यत उक्तं श्रीवीरस्तुतौ—

अहह सयलन्नपावेहिं वितहपन्नवणमणुमवि दुरंतं ।
जं **मरिइ**भवअज्जिअदुक्खयअवसेसलेसवसा ॥
सुरथुयगुणो वि तित्थंकरो वि तिहुअणअतुलमल्लो वि ।
गोवाईहिं वि बहुसो कयत्थिओ तिजयपहु ! तं सि ॥
थीगोबंभणभूणंतगा वि केवि इह **दढपहाराई** ।
बहुपावा वि पसिद्धा सिद्धा किर तम्मि चेव भवे ॥ १२२ ॥

[जि.] जं जिणि कारणि श्री**महावीर**देवनउ जीव **मरीचि**नइ भवि, श्री**आदिनाथ**नउ पोत्रउ, श्री**भरत**चक्रवर्त्तिनउ बेटउ **मरीचि उस्सुत्तलेसदेसणओ** 'अम्हई कन्हई कांई थोडउ धर्म छइ' इसुं उत्सूत्रनउ लवलेसना कहिवातउ **अइभीमभवगहणे** अतिरौद्र संसाररूपिउं गहन वन तेह माहि सागरोपमनी कोडाकोडि **हिंडइ** भमइ । ते उत्सूत्रनउं प्रमाण ॥ १२२ ॥

[मे.] जे श्री**महावीर**देव तणउ जीव **मिरीचि** नामिइं उत्सूत्रनउ लेस एक तेहनी देसनाइं करी एक कोडाकोडि सागरोपम भीम रौद्र संसाररूप वन गहनमाहि हींडिउ भमिउ ॥ १२२ ॥

[जि.] तेह जि उत्सूत्रभाषक भारेकर्मउ । इसुं विहुं गाथाइं प्रकासइ ।

ता जे[1] इमं पि वयणं वारंवारं सुणित्तु[2] समयम्मि ।
दोसेण अयगणित्ता उस्सुत्तपयाइं सेवंति ॥ १२३ ॥

---

१ °मादाइ. २ जइ, त्रि. मे. जइ. ३ सुणितु, त्रि. सुणिऊ.

ताण कहं जिणधम्मो[1] कह नाणं कह दुहाण वेरग्गं ।
कूडाभिमाणपंडियनडिया बुड्डंति नरयम्मि ॥ १२४ ॥

[सो.] ता० तु जइ एहवं[2] **मरीचिनि**नउं उत्सूत्र वचननउं स्वरूप वली वली सांभली **दोसेण०** द्वेष लगइ ते अवगणीनइ[3] जे उत्सूत्रपद सेवइ, श्रीसर्वज्ञनी आज्ञा विरुद्ध बोल कहइं थापइं, जे अभिमानना वाह्या एहवं उत्सूत्र बोलइं तेहहूइं जिनधर्म किहां[4] छइ ? अनइ[5] दुःखनउ वैराग्य किहां छइ ? जेह भणी संसारनउ दुःख आगमीनइ उत्सूत्र प्ररूपइं छइं । **कूडाभिमाण०** कूडा आपणा पंडितपणाना अभिमान तीर्ण करी नव्या वाह्या नरगइ जि माहि बूडइं छइं ॥ १२३-२४ ॥

[जि.] ता तउ पच्छइ **जइ** किमइ **समयम्मि** सिद्धांतमाहे **इमं पि वयणं** उत्सूत्रवर्जन पूर्वोक्त वचन वार वार सुणी सांभलीनइं पछइ कूडइ दोषि करी सिद्धांतनउं वचन अवगणीनइं ते अधम उत्सूत्रपद सेवइं । तेहां उत्सूत्रपदसेवणहारहूइं **कहं** किमु जिनधर्म हुइ ? अपि तु न हुइ । अनइं तेहांहूइं **नाणं** तत्त्वज्ञान किमु हुइ ? वली दुःखनउं वैराग्य किमु हुइ ? अनइं ते अधम कूडउ अभिमान अहंकार तिणि करी पंडित तेहे नटित नचाव्या हूंता नरकमाहे बूडइं । कूडी पंडिताई करी नरगि पडइं ॥ १२३-२४ ॥

[मे.] तउ **जइ** किमइ **मरीचि**नउं उत्सूत्रवचननउं स्वरूप वार वार सांभलीनइ सिद्धांतमाहे कहिउं हूंतउं ते वचन द्वेष लगी अवहेलीनइ उत्सूत्रनां पद स्थानक सेवइं, सिद्धांत विरुद्ध बोलइं, तीयांनइ जिनधर्म किहां, ज्ञान किहां ? तेहनइ दुक्खनउ वैराग्य किहां ?

१ मे. जिणधम्मं. २ एहुं. ३ अवगुणीनइ. ४ किहांइ. ५ बीजी प्रतमां आटलुं वधारे छे—' अनइ ज्ञाननउं जाणवउं किहां छइ. '

जेह भणी ससारना दुक्ख आगमी कूडइ अभिमानि, कूडी पडिताईइ नड्या हूता नरग माहि वूडइ ॥ १२३ २४ ॥

[सो.] कर्मवहुल जीवहूइ हितोपदेश दीधउ काई काज नावइ । ए वात कहइ छइ ।

[जि.] एवहा निकाचितकर्मी जीवहूइ, उपदेसनी अयोग्यता कहइ ।

मा मा जंपह बहुअं जे बद्धा चिक्कणेहिं[1] कम्मेहिं ।
सव्वेसिं तेसिं जायइ हिओवएसो महादोसो ॥ १२५ ॥

[सो.] मा मा० घणउ काई म बोलिम्यउ । बीना काई कारण म कहिम्यउ । ज केतलाइ जीवहूइ हितोपदेश काई न लागइ । जे जीव चीकणे कर्मे करी बाधा छइ गाढा कर्मवहुल छइ, तेह सविहु जीवहिंइ[2] हितोपदेश दीधउइ महादोषहेतुइ जि थाइ । काई गुणि न आवइ । यत उक्त—

अप्रशान्तमतौ शास्त्रसद्भावप्रतिपादनम् ।
दोषायाभिनवोदीर्णे शमनीयमिव ज्वरे ॥ १२५ ॥

[जि.] अहो उपदेशना देणहारो पुरुषो ! **बहुअं** घणउ मनि बोल्उ । जे जीव **चिक्कण** चीकणा अवश्यभोक्तव्य कर्म तेहे बाधा व्याप्या हुइ ते सघलाई जीवहूइ हितोपदेस धर्मनउ कहिवउ महादोष रूप, मुखहूइ थूक सोस जि भणी हुइ । काई लागइ नही । ति निकाचित कर्मनउ प्रमाण । जीवनां चतुर्विध कर्म छइ । एक स्पृष्ट कर्म । बीजउ बद्ध कर्म । त्रीजउ निधत्त कर्म । चउथउ निकाचित । जिम छोहि दीर्घी भीतिइ सांमुही चूनानी डली मूकी लागीइ । आइ त्या चूनानी मूकी

1 चिकणहिं 2 जीवहूइ

डली भीतिइं लागी पाछी पडइ । भीतिमाहि कांई न रहइं । तिम स्पृष्ट कर्मनउं स्वरूप जाणिवउं । लगारएक लागइ ते तत्काल विलइ जाइ ते स्पृष्ट कर्म । वली जिम सूकी छोहपंकित भीति । तेह ऊपरि नीली चूनानी डली लांखीइ । पछइ कोईएक सूकी पूठइं भीति हूंती उखेली लांखइ । भीतिइं सूकी भणी लगारई न रहइं । तिम बद्धकर्म जीवहूइं कर्म लागइ, केतलीएक वेला रहइ । पछइइ उपक्रमि करी फीटइ । ते बद्धकर्म । वली जिम नीली भीतिनी छोहि माहे सूकउ चूनानउ खंड घालीयइ । पछइ कालांतरि दोहिलउ नीकलइ । तिम निधत्त कर्म । जीवहूइं कर्म लागइ । जीव भोगवइ । कालांतरि गाढइ उपक्रमि जे कर्म फीटइ ते कर्म निधत्त नाम जाणिवउं । अनइ जिम नीली छोहि सउं भीति चिणी हुइ अनइ भीतिनी छोहि सूकी पूठिइं वज्र एकपणउं हुइ तिम निकाचित कर्म । जीव नईं कर्म एक हूयां । जूजूयां न थाइं । जां जीवइ जीव तां ते कर्म भोगवइ । गाढ अनंते उपक्रमे कीधे न जाइं । संपूर्ण कर्म भोगवीइ ते निकाचित कर्म । तथा चोक्तं—

कृतकर्मक्षयो नास्ति कल्पकोटिशतैरपि ।
अवश्यमेव हि भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥

इत्यादि कर्मस्वरूप **कर्मग्रंथ**शास्त्रतउ जाणिवउं । एतलइं जे चीकणे कर्मे लीप्या तेहां जीवांहूइं उपदेश न लागइं । यदुक्तं श्री**उपदेश-मालायां**—

उवएससहस्सेहि वि बोहिज्जंतो न बुज्झई कोई ।
जह **चंभदत्तराया उदायिनिवमारओ** चेव ॥ १२५ ॥ (गा. ३१)

[मै.] मा मा० घणउं घणउं घणउं म बोलउ । जे जीव चीकणे कर्मे बांध्या छइं तीयां सघलांनइ विषइ हितोपदेश महादोष समान हुइं ॥ १२५ ॥

[सो.] वली एह जि वात कहइ छइ।

[जि.] एह जि वात प्रकारांतरि करी वली कहइ।

हिअयम्मि जे कुसुद्धा ते किं बुज्झंति[1] धम्मवयणेहिं।
ता ताण कए गुणिणो निरत्थयं दमहिं[2] अप्पाणं ॥१२६॥

[सो.] हिअयम्मि॰ जे जीव हिअइ कुसूधा अधर्म्म मायाविया हुइं ते धर्मने वचने किम बूझइं ? घणाइ धर्मोपदेश दिउ, पणि ते न[3] बूझइं। **ता॰** तेह भणी तेहहूइ बूझववानइ कारणि जे खप करइ ते आपणपउं निरर्थक दामइं[4], क्लेश करइं। तेह[5] अयोग्यहूइ खप कीधी निरर्थक थाइं। कांई गुण न करइ। यत उक्तं—

ये वैनेया विनयनिपुणैस्ते क्रियन्ते विनीता
नावैनेया विनयनिपुणैः शक्यते सविनेतुम्।
दाहादिभ्यः समलममलं स्यात्सुवर्णं सुवर्णं
नायसिपण्डो भवति कनकं छेददाहक्रमेण ॥ १२६ ॥

[जि.] जे पुरुष हियामाहे कुसुद्ध दुष्ट हुइं ते किम धर्मने वचने करी प्रतिबूझइ ? सरलचित्तई ज धर्माक्षरे करी प्रतिबूझइं। **ता** तउ पछइ गुणवंत परोपकारी पुरुष **ताण कए** तेहां दुष्टांने कीधइ निरर्थक आपणपउं दमइं खेदावइं ॥ १२६ ॥

[मे.] जे मनुज हीयामाहि कुसूधा छइं ते धर्मने वचने किम प्रतिबूझइं ? ते ते जीव प्रतिबूझवानइ कारणि गुणवंत निरर्थक आपणपउं दमइं, क्लेश करइं। तिहां क्षप कीधी वृथा थाइ ॥ १२६ ॥

---

१ जि. बुज्झिति. २ दमइ ३ 'न बूझइं......तेहहूइं' एटलो पाठ मीजी प्रतमाथी पडी गयो छे ४ जि. ५ दमइं. ६ तेहं

[सो.] धर्मनी आस्था[1] जीवहूइं पाप फेडइ[2] । ए वात कहइ छइ ।

[जि.] जइ दुष्ट भारेकर्मा जीवने हिययइ जिनधर्मोपदेश न लागइं तउ पछइ किसुं जिनधर्म प्रमाण ? इसी शंका फेडिवा भणी जिनधर्मनउं प्रमाण बोलइ ।

दूरे करणं दूरम्मि साहणं तह पभावणा दूरे ।
जिणधम्मसद्दहणं पि तिक्खदुक्खाइं निट्ठवइ ॥ १२७ ॥

[सो.] **दूरे०** श्रीजिनधर्मनउं करिवउं आराधिवउं ते दूरि परहउं छइ अनइ जिनधर्मनुं **साहणं** कहिवउं, थापिवउं, अनेरानइ हिअइ आणिवउं तेहइ परहउं छउ । तथा श्रीजिनशासननी प्रभावना लोकमाहि रूडउं मंडाडिवउं, बाह्य लोकइ पाहिं वखणाविवुं तेहइ परहउं छउ । तेह एके जीव तीर्थंकरपदवी गणधरपदवी केवलज्ञान मोक्ष लगइ उपार्जइ । **जिणधम्म०** बीजउं काई म करिस्यउ । जिनधर्मनउं सद्दहण मात्र करइ, आस्थाइ जि मनि आणइ तेउ **तिक्खदुक्खाइं** तीक्ष्ण गाढां पोतनां पाप नीठवइ क्षपइ, हलुअकर्मउ थाइ ॥ १२७ ॥

[जि.] जिनधर्मनउं **करणं** करिवउं दूरि वेगलउं हुउ अनइं जिनधर्मनउं साधन तपश्चरणादि प्रमाणि चडावण पुण दूरि हउ । **तह** तथा जिनधर्मनी प्रभावना द्रव्य वेची जिनशासनि प्रोत्सर्पणा तेहीइ वेगली छइ । श्रीजिनधर्म साचउ रूडउ खरउ । इसुं जिनधर्मनउं श्रद्धानई तीक्ष्ण तीव्र दुक्खहूइं निराकरइ **निट्ठवइ** फेडइ ॥ १२७ ॥

---

१ आस्थाइ. २ आ 'फेडइ' शब्दथी मांडी बाकीनो बालावबोध के १२७ मी गाथा सो.नी बीजी प्रतमां नथी. मात्र आ गाथा उपरना बालावबोधना छेल्ला बे शब्दो 'हलुअकर्मउ थाइ' तेमां छे. अर्थात् १२७ मी गाथा अने ते उपरना बालावबोधने स्थाने सो.नी बीजी प्रतमां मात्र आटलुं छे—'धर्मनी आस्थाइ जीवहूइं पाप [वच्चेनो बधो पाठ पडी गयो छे] हलुअकर्मउ थाइ.'

[मे.] वीतरागना धर्मनउं करिवउं दूरि रहउ। क्रियानउं साधिवउं दूरि रहउ। तिम शासननी प्रभावना पणि दूरि रहउ। एक जे जिनधर्मनउं सद्दहिवउं ते तीक्ष्ण गाढा पोतना पाप थकी जे दुक्ख, तेहनइं नींठवइं ॥ १२७॥

[सो.] धर्म साभलिवाना मनोरथ कहइ छइ।

[जि.] अथ सुश्रावकनी धर्मचिन्ता कहइ।

कइया होहि दिवसो जइया सुगुरूण पायमूलम्मि।
उस्सुत्तलेसविसलवरहिओ[1] निसुणेमि[2] जिणधम्मं ॥१२८॥

[सो.] **कइया०** ते दिहाडउ मझहूई कहिइं हुसिइ, जहीं हुं उत्तम चारित्रिया सुगुरुनइ पदमूलि उत्सूत्रलेश लगारइ उत्सूत्ररूपिउ विपलव विसनउ लेस तीणं करी रहित खरउ श्रीजिनधर्म सांभलिसु ' जेह भणी जिनवचननइं सांभलिवइं जीवहूई मोटउ गुण ऊपजइ। यत उक्तं—

नवि तं करेइ देहो न य सयणा नेव वित्तसंघाओ।
जिणवयणसवणजणिया जं संवेगाइया लोए ॥ १२८॥

[जि.] **कइया** कदा किवारई **दिवसो** दिहाडउ **होहि** होसिइ, **जइया** यदा जिवारइं सद्गुरुनइ पादमूलि चरणकमलि जिनधर्म निसुणिसु सांभलिसु ? किसुउ हूंतउ ? उत्सूत्रनउ लेस तेह रूपिउ विपलव तिणि करी रहित हूंतउ। एतलइ ते दिहाडउ किहीं होसिइ ? जिणि दिहाडइ गुरुनइ पदकमलसमीपि जिनधर्म सांभलिसु ते दिन कृतार्थ ॥ १२८॥

---

१ °रिहिउं. २ निसुणेसु, जि. निसुणेमु, मे. निसुणेसु.

[मे.] कहीइं ते दिहाडउ मुझनइं होइसिइ, जहीइं सुगुरु सुद्ध प्ररूपकनइं पादमूलि उत्सूत्रलेसरूप विपलव तिणि करी रहित हूंतउ जिनधर्म सांभलिसु ? ॥ १२८ ॥

[सो.] वली गुरु आश्री[1] कहइ छइ ।

[जि.] अथ गुरुचिन्ता आश्री कहइ छइ ।

दिट्ठा वि केवि गुरुणो हिअए न रमंति मुणिअतत्ताणं ।
केवि पुण अदिट्ठ चिय रमंति जिणवल्लहो जेम ॥ १२९ ॥

[सो.] **दिट्ठा०** केतलाइ गुरु साक्षात् दीठाइ हुंता तत्त्वना जाणनइ मनि रमइ नही । हीयइ हर्ष न करइ । **केवि०** अनइ. केतलाइ पुण गुरु अणदीठाइ हुंता हीइ रमइं वसइं[2] । तेहना[3] गुण[4] सांभलीनइ हीइ हर्ष ऊपजइ । जिम **श्रीजिनवल्लभसूरि** । ते **जिनवल्लभसूरि नेमिचंद्र भंडारी**था पहिला हूआ भणी अदृष्ट हूंता **नेमिचंद्र भंडारी**नइ मनि तेहनां कीधां **पिण्डविशुद्धि** आदिक प्रकरण देषतां वस्या । इसिउ भाव ॥ १२८ ॥

[जि.] **मुणिअतत्ताणं** ज्ञाततत्त्वांने हियइ केईएक गुरु दीठाई हूंता न रमइं, न वसइं, न गमइं । अनइ वली केईएक अदीठाई गुरु हीयइ रमइ । किहनी परि ? **श्रीजिनवल्लभसूरि**नी परि । जिम **श्रीजिनवल्लभसूरि** अणदीठाई हूंता **श्रीनेमिचंद्र भंडारी** प्रमुख ज्ञाततत्त्व श्रावकने हीए सुगुरुपणइ करी वस्या तिम केईएक सुगुरु हीइ अणदीठाई वसइं । एतावता **श्रीजिनवल्लभसूरि** पहिलु हूउ । तिणि कारणि **श्रीनेमिचंद्र** भंडारीइ न दीठा । पुण तउ हीइ जाणे फिरि दीठाई ज छइ । जइ हियामाहे वसइ छइ ।

---

१ आश्रिय. २ 'वसइं' नथी. ३ तेहहना. ४ गुणइ.

दूरस्थोऽपि समीपस्थो यो यस्य हृदि वर्त्तते ।
चन्द्रः कुमुदखण्डानां दूरस्थोऽपि प्रबोधकः ॥ १२९ ॥

[मे.] दीठाइं हूंता केतला गुरु धर्मतत्त्वना जाण छइं तेहनइ हीयइ रमइ नहीं, गमइं नहीं । अनइ केतलाइ गुरु अणदीठाइ हूंता जाणना हीयानइं रुचइं । श्री**जिनवल्लभसूरि**नी परिइं । किम ? श्री**जिनवल्लभसूरि**नां कीधां **पिंडविशुद्धि**प्रमुख प्रकरण देषीनइ जिम **नेमिचंद्र भंडारी**नइ मनि अहर्ष्टि हर्ष ऊपनउ ॥ १२९ ॥

[सो.] हव कुगुरु ऊपरि वात करइ छइ ।

[जि.] अथ धर्मबाह्य पुरुषनी वात कहइ छइ ।

अजया अइपाविट्ठा सुद्धगुरू जिणवरिंदतुल्ल त्ति ।
जो इह एवं मन्नइ सो विमुहो सुद्धधम्मस्स ॥ १३० ॥

[सो.] **अजया॰** जे गुरु अजयणावंत छइं, जीवनी विराधना करइ छइ ।

दगपाणं पुप्फफलं अणेसणिज्जं गिहत्थकिच्चाइं ।
अजया पडिसेवंति जइवेसविडंवगा नवरं ॥

(उपदेशमाला, गा. ३४९)

ईणं श्री**उपदेशमाला**नी गाहां जे कहिया छइं, **अइपाविट्ठा** अतिपापिष्ट पाप बोलतां करतांइं जेहहूइं शंका नथी एव्हाइ गुरु शुद्ध-चारित्रिया गुरु भणी मानइं, 'ए अम्हारइ जिनवरेंद्र तीर्थंकर समान ।' **जो इह॰** जे अजाणइ इम मानइं ते सूधा धर्महूइं विमुख ऊपराठउ जाणिवउ । तेहहूइं धर्म केहांइं ढूकडउ[1] नथी ॥ १३० ॥

[जि.] **अजया** इन्द्रियजयरहित अनइ पापिष्ट आरंभना करणहार हुइं एवहा अनइ एवहा जाणइ जु 'ए गुरु शुद्धचारित्री

---

१ ढूकडउइ.

हूंता जिनवरेन्द्र तुल्य श्रीजिनवरेन्द्र सरीषा ' इति । जे श्रावक अथवा जे महात्मा अथवा अनेरउई कोई इह संसारमाहे एवं इसुं पूर्वोक्त मानइ ते पुरुष सुद्ध धर्महूइं विमुख ऊपराठउ बाह्य ॥ १३० ॥

[मे.] जयणारहित, अति पापिष्ट, पापमइ वचन बोलतां संकाइं नहीं एवहाइ गुरु सुद्धचारित्रिया कही मानइं । कहइं 'अम्हारइ ए तीर्थंकर समान।' जे अजाण इम मानइं ते सूधा धर्मनइ सर्वज्ञना वचननइ विषइ विमुख ऊपराठउ जाणिवउ ॥ १३० ॥

[सो.] एह जि वात ऊपरि कहइ छइ ।

[जि.] तेही ज धर्मबाह्य अजाण श्रावकनइ उपदेश दिइ छइ ।

जइ[1] तं वंदसि पुज्जसि वयणं हीलेसि तस्स रागेण ।
ता कह वंदसि पुज्जसि जणवायठिइं[2] पि न मुणेसि ॥१३१॥

[सो.] जइ तं॰ रे बापडा जीव! जइ[3] तूं तीर्थंकर देव वांदइ छइ, पूजइ छइ, स्तवइ छइ, तु तूं ते परमेश्वरनउं वचन 'सुसाहुणो गुरुणो पंचिंदिअसंवरणो॰ पंचमहव्वयजुत्तो[4]॰' इत्यादिक काइं अवगणइ[5] ? दृष्टिरागि[6] वाहिउ तेहतेहवा आपणा गुरुनइ अनुरागि वाहिउ हूंतउ । परमेश्वरि कहिउ छइ । 'एहवा भ्रष्टाचारनु आलावो संवासो वीसंभो संथवो पसंगो य॰ एतलां वानां न करिवां' इसिउं परमेश्वरनुं वचन[7] जइ हीलइ छइ, अवगणइ छइ, मानतु नथी **ता कह॰** तू परमेश्वरहूइं वांदइ कांइ, पूजइ कांइ ? **जणवाय** लोकव्यवहारइनी स्थिति न जाणइं छइं ॥ १३१ ॥

---

१ जि. जा, मे. जो. २ जि. मे. जिणवायठियं पि. ३ जउ. ४ पंचमहव्वय°. ५ अवगुणइ. ६ दृष्टिरागि. ७ 'वचन' नथी.

[जि.] अहो श्रावक अजाण ! **जइ** किमइ तूं जिनहूइं वांदइ नमस्करि घरि पूजइं अनइं वली मिथ्यात्वीनि रागिइं करी **तस्स** तेह जिननउं वचन अवहेलिसि अवगणिसि न मानइं **ता** तउ अहो श्रावक मुग्ध ! तउ तूं जिनहूइं कांइं वांदइ ? कांइं पूजइ ? जिनवाद जिनवचन तेहनी स्थिति आचारई किसुं न जाणइं ? सिद्धातमाहे इसुं कहिउं, 'श्रावकि जिनवचन मानिवउं, अवहेलिवउं नही।' इसुं जिनवचनई न जाणइं तूं ॥ १३१ ॥

[मे.] जइ तउं देवनइं वांदइ पूजइ अनइ वली तेहइ जि तीर्थंकरना वचननइं हीलइ राग लगी तउ तउं तेह परमेश्वरनइं कांइ वांदइ, कांइ पूजइ ? किसउं लोकव्यवहारनी स्थिति न जाणइं ? ॥१३१॥

[जि.] सिद्धातरीतिइं अजाण श्रावकहूइं उपदेश देई वली लोकरीतिइं उपदिसइ ।

लोए वि इमं भणिअं[1] जो आराहिज्ज[2] सो न कोविज्जा[3] ।
मन्निज्ज तस्स वयणं जइ इच्छसि इच्छिअं[4] काउं ॥१३२॥

[सो.] **लोए०** लोकइमाहि इसिउं कहीइ । जे आराधीइ ते कोपाविवु नही, अवगणिवउ नही । तेह भणी **मन्निज्ज०** तेहनुं वचन मानिवउं,[5] जउ तेहना मननउं गमतुं करिया वांछइ । जउ तेहनूं वचन आराधिवउं, तु ते मानिउ पूजिउ । जउ तेहनुं वचन न मानीइं तउ बाह्य पूजिइ काई न तूसइ । सामहु[6] कूपइ । लोकइ ए वात कहइ ॥ १३२ ॥

---

१ जि. मुणिउं, मे. गुणियं २ आराहिज्जइ. ३ कुपिज्जा. ४ इच्छिउं. ५ 'मानिवउं...तेहनुं वचन न' एटलो पाठ सो.नी बीजी प्रतमांथी पडी गयो छे ६ सामुहु.

[जि.] अहो भोला श्रावक ! लोकइमाहे इसुं न सांभलिउं– **जो आराहिज्ज सो न कोविज्जा ?** जे आराधीइ ते न कोपवीइ । लोकई इसुं कहइ । तिणि कारणि **मन्निज्ज तस्स वयणं** तेह आराध्यनउं वचन मानीइ मानिवउं, जइ किमइ वांछित करिवा लहिवा वांछइ ॥ १३३ ॥

[मे.] लोकमाहि इसउं सांभलीइ । जे आराधीयइ ते विराधीयइ नहीं, कोपवियइ नही । केवलउं तेहनउं वचन मानिवउं । जउ किमइ आत्मानइं ईप्सित वांछित करिवा वांछइ ॥ १३३ ॥

[सो.] वली सम्यक्त्वनी[1] दृढाई ऊपरि कहइ छइ ।

[जि.] अथ सम्यक्त्वीनी सम्यक्त्वनिश्चलता बोलइ ।

दूसमदंडे[2] लोए सुदुक्खसिद्धम्मि[3] दुट्ठउदयम्मि ।
धन्नाण[4] जाण न चलइ सम्मत्तं ताण पणमामि ॥१३३॥

[सो.] **दूसम०** ईणइं दुःखमाकालि पांचमा आरारूपिइ दंडि पडीइ हुंतइ **सुदुक्ख०** शिष्ट उत्तम धर्मवंत गाढा दुःखिया थिया[5]। **दुट्ठ०** दुष्ट पापी अधर्मी चाडादिक तेह रहइ[6] उदय मान महत्त्व लक्ष्मी हुई । एहवइ विरूअइ ऊपराठइ कालि । अथवा **सुदुक्खसिद्धम्मि दुक्खउदयम्मि** इसिइं पाठि सु अतिशयइं दुःखिइ पूर्वभव ऊपार्जीइं सीधउं नीपनउं जे दुःखनउ उदय तीणंइ छतइ जे धन्य भाग्यवंतनुं सम्यक्त्व चलइ नही, धर्म ऊपरि लगारइ अभावडि न थाइ, धर्मतु मन डोलइ नहीं, ए[7] तेहवा उत्तम रहइं पणमउं नमस्करउं ॥ १३३ ॥

---

१ सम्यक्त्वदृढाइ. २ जि. दूसमदंदे, मे. दूसमदंडिय. ३ जि. मे. सदुःख°. ४ जि. धम्माउ. ५ थाय. ६ °रहइं. ७ ते.

[जि.] दूसमि दुःखमाकालिइ **दंडे** दंडिइ लोकि हूंतइ। वली स्वदुःखसिद्ध आपणा दुःखइं भीमनउ दुःखनउ उदय तिणि हूंतइ। एतलइ एकतउ दुषमाकालि लोक दंडिउ। वली दुःखइ ऊपरि दुःख एहे बिहुं हूंते जेहां पुरुषांनउं धर्म हूंतउ सम्यक्त्व न चालइं तेहां भाग्यवंता पुरुषांनउं हउं **नेमिचंद्र भंडारी** सम्यक्त्व प्रणमउं नमस्करउं ॥ १३३ ॥

[मे.] ईणइं दुक्खमाकालि लोक दंडिइ हूंतइ शिष्ट उत्तम लोके गाढे दुक्खीए हूंते अनइ दुष्टनइ उदइ हुइ हूंतइ। एवहइ छतइ धन्य ते जेहनां चित्त हूंतउं सम्यक्त्व न चालइं तेहनइं हउं प्रणाम करउं ॥ १३३ ॥

[सो.] वली गुरु आश्री वात कहइ छइ।

[जि.] अथ गुरुपरीक्षारूप कहइ।

निअमइअणुसारेणं ववहारनएण समयसुद्धीए[1]।
कालखित्ताणुमाणेण परिक्खिओ जाणिओ सुगुरू ॥१३४॥

[सो.] कवि कहइ छइ। आपणी बुद्धिनइ अनुसारि, व्यवहारनयइं करी, सिद्धांतना वचननइ अनुसारि, कालक्षेत्रनइ अनुमानि, कालक्षेत्र संघयणादि जिस्यां छइं तेहनइं मानिहं चारित्र क्रियानी सर्व शक्ति[2] खप करइ छइ। तेहनइं अनुमानिइं परीषी गुरु लीधउ अनइ मानिउ छइ ॥ १३४ ॥

[जि.] निजमतिनइ अनुसारि करी आपणाइ बुद्धिप्रागल्भ्यनइ प्रमाणि करी, वली व्यवहार लोकाचार तेहनउ नय न्यायरीति तिणि करी अनइ वली त्रीजउं **समयबुद्धीए** सिद्धांतनी बुद्धिइं करी

---

१ जि. °बुद्धीए २ शक्तिइं.

सिद्धांतनी रीतिइं करी, वली चउथउं कालनइ अनुमानि करी, वर्षाकाल टाली अनेरइ सीयालइ उन्हालइ कालि विहार करिवानइ अनुमानि करी, वली पांचमइ क्षेत्रनइ अनुमानि करी, जिणइं क्षेत्रिं बइतालीस दोषविवर्जित शुद्ध आहार लाभइ तिणइं क्षेत्रि विहार करिवानइ देषिवइ करी एह पांच परीक्षाई करी परीक्षिउ हूंतउ सुगुरु जाणिउ मानिउ ॥ १३४ ॥

[मे.] निज आपणी मतिनइ अनुसारि, व्यवहारनइं शाइं करी, सिद्धांतना वचननइ अनुसारि, द्रव्य क्षेत्र काल भावनइ अनुमानि परीषीनइ सुगुरु जाणिवउ ॥ १३४ ॥

[जि.] तउहीइ गुरु मोटइ पुण्यइं लाभइं । इसी वात कहइ ।

तह वि हु नियजडयाए कम्मगुरुत्तस्स नेव वीसासिमो ।
धन्नाण कयत्थाणं सुद्धगुरू मिलइ पुण्णेहिं ॥ १३५ ॥

[सो.] **तह०** तऊ आपणउं जडता मूर्खपणउं । **कम्मगुरु०** अनइ आपणा भारेकर्मीपणानु वीसास न कराइं । कुण जाणइ केतीवारइं गुरुइ परीषतउ वरासिउ हउ[1] । जेह भणी **सुद्ध०** सुद्ध खरउ गुरु धन्य धन्य कृतार्थ भाग्यवंतइ जि रहइं, मोटा पुन्यनइ उदइ[2][3] मिलइ ॥ १३५ ॥

[जि०] तथापि हिं **नियजडयाए** निज आपणी जडता मूर्खपणउं तिणि करी कर्मगुरुत्वहूइं भारेकर्मी जीवहूइं सुगुरु जाणिवानउ विश्वास नही । पुण धन्य भाग्यवंत अनइ कृतार्थ कृतपुण्य पुरुषहूइं पुण्य करी सुद्ध गुरु चारित्री आचार्य मिलइं ॥ १३५ ॥

---

१ मे. इ. २ हउं हउं. ३ उदय.

[मे०] तथापि हि आपणी जडता मूर्खाई तिणि करी अनइ कर्मनउं गुरु भारीपणउं तिणि करी वेसास न करिवउं। पणि ते धन्य कृतार्थ जेह रहइं पुण्यनइ योगि सूधउ गुरु मिलइ ॥ १३५॥

[जि०] इणी जि कारणि सुगुरुप्राप्ति दुर्लभ कहइ।

अहयं पुणो अहन्नो ता जइ पत्तो अह न पत्तो य।
तह वि हु सो मह सरणं संपइ सो जुगप्पहाण[1] गुरू ॥१३६॥

[सो०] अहयं० हुं पुण अपुण्य अभागीउ छउं। **ता जइ०** तु जइ मइं गुरु प्रामिउ छइ अथवा नथी प्रामिउ, तउ नश्चिइं[2] मू रहइ तेह जि प्रमाण ॥ १३६॥

[जि०] श्रीनेमिचंद्र भंडारी गामि गामि नगरि नगरि गुरुपरीक्षा करतउ हूंतउ फिरइ, पुण सुगुरु न रुहइं। तिवारइं सुं कहइ ? **अहयं पुणो अहन्नो०**। अहयं हउं पुण अधन्यपुण्य छउं। **ता** तउ पछइ जइ किमइ सुगुरु पामिउ तउ पामिउ। **अह न पत्तो य** अथवा न पामिउ। **तह वि** तथापि तउहीइ **हु** निश्चइं **मह** मूहूइं **सो** तेह जि सुगुरु शरण आराध्यपणइ आधार। जे गुरु संप्रति हिवडानइ कालि जुगप्रधान **श्रीजिनदत्तसूरि** युगप्रधान गुरुना पग शरण। इति भावः ॥ १३६ ॥

[मे०] हउं तउ अकृतपुण्णीयउ। जउ मइं ते सूधउ गुरु पामिउ छइ अथवा नहि पामिउ। तथापि जे युगप्रधान गुरु छइ ते मुझनइ शरणि ॥ १३६॥

---

१ जि. जुगपहाण, मे. जुगुपहाण. २ निश्चइं.

[जि.] अथ जिनधर्म तणउ जाणिवानउ प्रकार कहइ ।

जिणधम्मं दुन्नेअं अइसयनाणीहि नज्जए[1] सम्मं ।
तह वि हु[2] समयट्ठिइए[3] ववहारनएण नायव्वं ॥ १३७ ॥

[सो.] जिण० जिनधर्म जाणतां गाढइउ[4] दोहिलउ छइ । **अइसय०** अतिशयज्ञानी जे मनोगत भाव जाणइ, सम्यग् एहे[5] जि जाणइ जं 'एहमाहि धर्म छइ ।' **तह वि हु०** तऊ बीजे छद्मस्थे सिद्धांतमाहि जिसी परीक्षा कही छइ तिसी स्थितिइं करी व्यवहारनयइं[6] धर्म जाणी लेवउ । सर्वथा अनास्था न करिवी ॥ १३७ ॥

[जि.] जिनधर्म दुर्ज्ञेय जाणतां दुहेलउ, पुण अतिशय ज्ञानवंत पुरुषे **सम्मं** सम्यक् प्रकारि साचउं जाणीइ । **तह वि** तउहीइ निश्चइं **समयट्ठिइए** सिद्धांतनी स्थितिइं अनइं **ववहारनएण** लोकव्यवहारनइ न्यायि करी लोके जिनधर्म जाणिवउ । 'अहो सिद्धांतनी रीतिइं धर्म जाणीइ ते प्रमाण, पुण लोकव्यवहारइं धर्म जाणीइ ते किम प्रमाण ?' इसुं म कहे । 'लोगविरुद्धचाओ' इसा सिद्धांतना वचन-इतउ । जिम सिद्धांतस्थिति प्रमाण तिम लोकव्यवहारई प्रमाण । तथा चोक्तं—

लोक म रूसउ, लोक जि तूसउ, लोक लेई परमारथि पइसउ ।
जइ तूं जोगी त्रिभुवनसार, तइ तू न मेल्हे लोकाचार ॥ १३७ ॥

[मे.] जिनधर्म जाणतां गाढउं दोहिलउं । जे अतिशयवंत ज्ञानी हुइं तेह जि सम्यक्त्व जाणीइं जु 'एह माहि धर्म छइ ।' तथापि व्यवहारनइं ज्ञाइ सिद्धांतनी परीक्षाइ सम्यग् करी जाणी लेवउ । अनास्था न करिवी ॥ १३७ ॥

---

१ मे. निज्जए. २ मे. इ. ३ समयठिइए, जि. मे. समयठिईए. ४ गाडउं. ५ एह. ६ °नयई करी.

[जि.] अथ जिनेन्द्रनइ वचनि जिनधर्म जाणिवानउं फल कहइ ।

जम्हा जिणेहिं भणिअं सुअववहारं विसोहयंतस्स[1] ।
जायइ विसुद्धबोही जिणआणाराहगत्ताओ[2] ॥ १३८ ॥

[सो.] जम्हा० जेह भणी जिन श्रीसर्वज्ञइं इम कहिउं छइ। श्रुतव्यवहार सिद्धातनउ मार्ग जोईनइ देवगुरुधर्म लिइं, **जायइ०** तु विशुद्ध बोधि निर्मल सम्यक्त्वनी प्राप्ति हुइ । **जिण०** जिननी आज्ञाना आराधक भणी । यदुक्तं श्री**आवश्यके सामाचार्यां—**

निच्छयओ दुन्नेअं को भावे कम्मि वट्टए समणो ।
ववहारओ उ कीरइ जो पुव्वट्ठिउ चरित्तम्मि ॥
ववहारो वि हु बलवं जं छउमत्थं पि वंदई अरहा ।
जा होइ अणाभिन्नो जाणंतो धम्मयं एयं ॥ (गा. ७१६-७१७)

सिद्धांतनउ व्यवहार प्रमाण करतउ केवलइं जे छद्मस्थि सिद्धातनइ व्यवहारि जोई चाही खरउ निर्दोष भणी आणिउ हुइ. पुण ते आहार छइ आधाकर्मी । तउ ते जिमइ । केवली इम न कहइ, 'ए आधाकर्मी छइ' । इम कहितां सिद्धातना व्यवहार ऊपरि अनास्था थाइ । तेह भणी न कहइ ॥ १३८ ॥

[जि.] जम्हा यस्मात् जिणि कारणि जिने इसुं कहिउं । **सुअववहारं** श्रुतव्यवहार सिद्धातनी स्थिति विशोधता समाचरता पुरुषहुइं विशुद्ध निर्मली बोधि जिनसम्यक्त्वप्राप्ति **जायइ** हुइ । किसा हेतुइतउ ? जिनाज्ञाराधकत्वात् । जिननी आज्ञानउ आराधकपणातउ । कोई जिनाज्ञाप्रतिपालक पुरुष देषी बोधिफल प्रतिइं संदेह करइ । तेह पुरुष प्रतिइं **जिणआणाराहगत्ताओ** इसुं पद हेतुरूप थाइ ।

१ मे. विसोहियंतस्स. २ मे. °राहगुत्ताओ.

किमु ? श्रुतव्यवहार समाचरता पुरुषहूइं विशुद्ध बोधि हुइ । इसी प्रतिज्ञा किसातउ ? जिननी आज्ञानउ आराधकपणातउ । एहे हु जे जे जिननी आज्ञाना आराधक हुई तेहां तेहां पुरुषहूइं विशुद्ध बोधि हुई । इसी अन्वयव्याप्ति । जिम श्री**श्रेणिक** महाराजहूइं । इसु दृष्टांत । तिम एही जिनाज्ञाराधक । ए उपनय । तिणि कारणि विशुद्ध बोधि हुई ज । वली अप्रत्यक्ष बोधिफल प्रतिइं संदेहकारक पुरुष वादी इसुं कहइ, 'अहो प्रतिवादिन् ! हेतु हुउ, साध्य म हुउ । विपक्षि किसु बोध ?' इसिइ कहिइ हूंतइ प्रतिवादी उत्तर दिइ, 'अहो वादिन् ! जेहांहूइं विशुद्ध बोधि न हुइ तेहांहूइं जिनाज्ञाराधकपणउंई न हुइ, जिम मिथ्यात्वीहूइं । तेहनी परि ए नही । तिणि कारणि श्रुतव्यवहार समाचरता पुरुषहूइं विशुद्ध बोधिफल हुइ जि ।' इसिइ पंचावयवरूप अन्वय-व्यतिरेकी अनुमानप्रमाणि करी जिनमार्गप्रवर्त्तक जीवहूइं बोधिफल स्थापइं ॥ १३८॥

[मे.] जेह भणी वीतरागदेवे कहिउ श्रुतसिद्धांत तेहनउ व्यवहारमार्ग साधतां हूतां विशुद्ध सूधी जिनधर्मनी प्राप्ति हुइ । तउ जइ जिननी आज्ञाना आराधकपणातउ ॥ १३८ ॥

[सो.] श्रीगुरु आश्री वीतरागनी आज्ञा कहइ छइ ।

[जि.] अथ सुगुरु-दुर्लभता कहइ ।

जे जे दीसंति गुरू समयपरिक्खाइ ते न पुज्जंति ।
पुणमेगं सद्दहणं दुप्पसहो जाव जं चरणं ॥ १३९ ॥

[सो.] जे जे० कवि कहइ छइ । हिवडांनइ कालि जे जे गुरु देखीइं ते ते सिद्धांतनी परीक्षाइं न पहुचइं । कहिमाहि सघलाइं गुरुना गुण देखीइं नही । **पुणमेगं०** पुण एक वातनुं निश्चिइं सद्दहिवुं जाणिवुं जं परमेश्वरि इम कहिउं छइ । पांचमा आरानइ

छेडहइ[1] श्रीदुप्पसह आचार्य युगप्रधान हुसिइं । तेह लगइ भरतक्षेत्रि चारित्र वर्त्तसिइ । तीणइ सिउं[2] जाणीइ ? निश्चिइं को को चारित्रीउ गुरु भरतक्षेत्रमाहि छइ, जि हुं लक्षतउ नथी ॥ १३९ ॥

[जि.] जे जे गुरु दीसइं ते ते समय सिद्धांत तेहनी परीक्षाइं न पूजइं न पुहचइं । पुण एक श्रद्धान आस्ता छइ । किसुं श्रद्धान ते ? **दुप्पसहो जाव जं चरणं ।** जं जउ **दुःप्रसहाचार्य** लगइ चरण चारित्र थोडउं थोडेरउं होसिइ जि । इसी आस्ता छइ । पुण जुगप्रधान गुरु टाली बीजउ कोई गाढउ सुगुरु दीसइ नही । इति भाव ॥ १३९ ॥

[मे.] कवि कहइ । हिवडांनइ कालि जे जे गुरु दीसइं ते ते सिद्धांतनी परीक्षाइं न पहुचइं । काई ? आपणपानइं सूधा ज्ञाननउ अवबोध नही । अनइ असूधा घणा, सूधा थोडा ते भणी जाणी न सकीइं । पणि एक वातनी सद्दहणा करिवी । जा **दूपसहसूरि** तां सीम चारित्र छइ ॥ १३९ ॥

[जि०] तिणि कारणि ते जुगप्रधान गुरु जाणिवानउ उपाय कहइ ।

ता एगो जुगपवरो मज्झत्थपणेहिं समयदिट्ठीए ।
सम्मं परिक्खियव्वो मुत्तूण पवाहहलबोलं ॥ १४० ॥

[सो.] ता एगो॰ तेह भणी एह भरतक्षेत्रमाहि एक को जुगप्रवर युगमाहि उत्कृष्टउ चारित्रीउ मध्यस्थ मन थईनइ परीक्षिवउ । **समय॰** सिद्धांतनी रीतिइं सम्यग् जोई लेवु । **मुत्तूण॰** लोकनउ प्रवाह फलकल ' आ माहरउ, आ ताहरउ गुरु ' इस्यउ लोकनउ प्रवाह

---

१ छेडहइ   २ इसिउं   ३ पणीइ.

तेहरूपिआ हलबोल द्रहबोल मेल्ही करी । जिम द्रहबोलमाहि वस्तु पडी न लाभइं तिम लोकप्रवाहि तत्त्वातत्त्वविचार न लाभइं । तेह भणी ते छांडीनइ तत्त्ववृत्तिइं गुरु जोईनइ लेवु ॥ १४० ॥

[जि.] ता तउ पछइ एक अद्वितीय युगप्रवर युगप्रधान गुरु मध्यस्थमनोभिः मध्यस्थ उदासन पुरुषे समय सिद्धांत तेहनी दृष्टि जोइवउं तिणि करी । अथवा सिद्धांतरूपिणी दृष्टि लोचन तिणि करी **सम्मं** सम्यक् साचउ **परिक्खियव्वो** परीखिवउ । किसुं करी ? प्रवाह लोकप्रवाह तेहरूपिउ द्रहबोल मेल्ही करीनइ । जिम द्रहबोलमाहि वस्तु पडी न लाभइं तिम लोकप्रवाहि तत्त्वातत्त्वविचार न लाभइं । तिणि कारणि लोकप्रवाह मेल्ही मध्यस्थेई जि पुरुषे सुगुरु परीखिवउ, न तु आग्रहवंते पुरुषे । यदुक्तं—

[१] आग्रही बत निनीषति युक्तिं तत्र यत्र मतिरस्य निविष्टा ।
× × × युक्तिर्यत्र यत्र मतिरेति निवेशं ॥

सिद्धांतनी दृष्टि किसी ?

पडिरूवो तेयस्सी जुगप्पहाणागमो महुरवक्को ।
गंभीरो धीमंतो उवएसपरो य आयरिओ ॥
अप्परिस्सावी सोमो संगहसीलो अभिग्गहमई य ।
अविकत्थणो अचवलो पसंतहियओ गुरू होइ ॥
(उपदेशमाला, गा. १०-११)

इत्यादि सिद्धांतदृष्टिइं जुगप्रधान उलखी आदरिवउ ॥ १४० ॥

[मे.] तेह भणी एह भरतक्षेत्रमाहि एकेकउ युगप्रधान अनुक्रमिइं दुप्पहसूरिसीम विसहस्र चडोत्तर होसिइं । एह भणी

[१] आ श्लोकनुं त्रीजुं चरण मूलमां आम त्रुटित छे.

रागद्वेष मूकी मध्यस्थपणइ समय सिद्धांतनी दृष्टिं सम्यग् प्रकारि गुरु परीपी लेवउ, पणि लोकनउ प्रवाह कलकल 'ए माहरउ, ए ताहरउ' एवहउ हल्बोल मूकीनइ ॥ १४० ॥

[सो.] ईणइं लोकप्रवाहिइं हिवडां जाणइ क्षुमइं छइं । ए वात कहइ छइ।

[जि.] अथ पूर्वोक्त लोकप्रवाहनउं स्वरूप कहइ ।

संपइ[1] दसमच्छेरयनामायरिएहिं जणिअजणमोहा ।
सुयधम्माओ[2] निउण[3] वि चलंति बहुजणपवाहाओ ॥१४१॥

[सो.] संपइ० हिवडां अस्संजयाण पूआ इसिउं दसमुं अछेरुं प्रवर्त्तइं[4] छइ । ईणं करी गुणरहित नामिइं आचार्य घणा थिया । तीणइं करी **जणिअजण०** लोक रहइं मोह कहीइ भ्रम वरांसउ पडिउ[5] । न जाणीइ केहउ गुरु । इसिइं छतइं जे निपुण डाहा चतुर तेहइ घणा लोकना प्रवाहमाहि पडिआ हुंता साचा धर्मतउ चूकइं चलइं छइं साचा गुरुनइ अणलहिवइं ॥ १४१ ॥

[जि.] संप्रति हिवडां दसमइ आश्चर्यि ऊपना **नामायरिएहिं** नामधारक आचार्य तेहे जनित ऊपजाविउ जन अज्ञाततत्त्व लोक तेहना सरीषउ मोह अज्ञानपणउं जेहां निपुणांहूइं छइं ते जनितजनमोह । एवहा हूंता **निउण वि** निपुणई ज्ञाततत्त्वई सुभधर्म हूंता चालइं । किसा प्रमाणइतउ ? **बहुजणपवाहाओ** बहु घणा जण लोक तेहना प्रवाहइतउ । एक नामधार आचार्य मोह ऊपजावइ । लोकप्रवाह पुण शुभधर्म हूंतउ डाहाई भोलवइ । तिणि कारणि लोकप्रवाह मेल्हिवउ ॥ १४१ ॥

---

1 जि. मे. संपय. 2 सुद धम्माओ. 3 त्रि. नियण. 4 प्रर्त्तइ. 5 परिउ.

[मे.] सांप्रत दसमा अच्छेरा जे कह्या तेहमांहि दसमा अच्छेरानइ प्रस्तावि नामाचार्ये लोकनइं जे व्यामोह उपजाविउ तेह लगी घणा लोकनां प्रवाहमाहि पड्या हूंता निपुण डाहाइ लोक सूधा धर्म हूंता चालइं भ्रष्ट हुइं, साचा गुरु अणलहता थका ॥ १४१ ॥

[सो.] जे लोकनइ प्रवाहि पडिआ तेहनुं आलंबन लेईं कुगुरु कुधर्म सेवइ । तेह आश्री कहइ छइ ।

[जि.] अथ मिथ्यात्वी सम्यक्त्वी विहुंना लक्षण कहइ ।

जाणिज्ज मिच्छदिट्ठी जे पडणालंवणाइं गिण्हंति[1] ।
जे पुण सम्मदिट्ठी तेसि मणो चडणपयडीए[2] ॥ १४२॥

[सो.] जाणिज्ज० निश्चयनयनी अपेक्षाइं ते मिथ्यात्वीइ जि कहींइं, जे पडवानां आलंबन लिइं । 'अमुकउ प्रमाद कुमार्गादिक करइ छइ, हुंइ करुं' इम तेहनां आलंबन लिइं । जे[3] साचा सम्यगदृष्टि साचा सम्यक्त्वना धणी तेहनुं मन चडवाइजिनी पगथीइं हुइ । जे खरउ धर्म करता हुइ तेहनु आलंबन लेईनइ आपणपइं खरूंइ जि करइ । यदुक्तं श्रीआवश्यके वंदननिर्युक्तौ—

आलंबणाण लोओ भरिओ जीवस्स अजउकामस्स ।
जं जं पिच्छइ लोए तं तं आलंबणं कुणइ ॥
जे जत्थ जयाजईआ बहुस्सुआ चरणकरणपब्भट्ठा ।
जं ते समायरंति आलंबण मंदसड्ढाणं ॥
जे जत्थ जयाजईया बहुस्सुआ चरणकरणसंपन्ना ।
जं ते समायरंति आलंबण तिव्वसड्ढाणं ॥ १४२ ॥

(गा. ११८८-८९-९०)

---

१ घिप्पंति. २ जि. चेव पडणीए. ३ 'जे साचा सम्यगदृष्टि......तेहनु आलंबन' एटलो पाठ सो.नी बीजी प्रतमांथी पडी गयो छे.

[जि.] ते **मिच्छदिट्ठी** मिथ्यात्वीदृष्टि **जाणिज्ज** जाणिवउ, जे पतित धर्म हुंता भ्रष्ट हूया तेहना आलंबन ओठंभ लिइं, आपनी विसमसि करइं। 'एहइ तप नथी करतउ, हउंइ नहीं करउं' इत्यादि आलंबन लिइं। अथ सम्यक्त्वी लक्षण। **जे पुण सम्मदिट्ठी** जे वली सम्यग्दृष्टि हुइं **तेसि मणो** तेहना मन चडते पावडीया लेहु। मोटा तपस्वी प्रमुख पुरुष तेहना अवष्टंभ आदरइं ॥ १४२ ॥

[मे.] ते जाणिया मिथ्यादृष्टि जे **पडियालंबण** पतितनउं आलंबन लिइं। जे वली जीव सम्यग्दृष्टि छइं ते चडियालंबननी पावडी चडइं। जे रूडी क्रिया करइं तेहनी पयडीइ चडइं ॥ १४२ ॥

[सो.] उत्तम सयोग दुर्लभ ए वात कहइ छइ।

सव्वं[1] पि जए सुलहं सुवन्नरयणाइवत्थुवित्थारं।
निच्चं चिय मेलावं सुमग्गनिरयाण[2] अइदुलहं ॥ १४३ ॥

[सो.] सव्वं पि० बीजउं सहू सुवर्ण रत्न आभरणादिक वस्तु ऋद्धिनउ विस्तार सुलभ। यत उक्तं—

सर्वे भावा सर्वजीवै प्राप्तपूर्वा अनंतशः।
बोधिर्न जातुचित्प्राप्तो भवभ्रमणदर्शनात् ॥

राज्यऋद्धि धनकनकादिक घणीइ वार अनंते भवे लाभइ, पुण सन्मार्ग-निरत खरा उत्तम धर्मना आराधक उत्तम पुरुष तेहनउ सदैव मेलावउ ते अतिदुर्लभ। तेहइ जि भणी सदैव **जयवीअरायमाहि** प्रार्थीइ छइ, 'सुहगुरुजोगो तव्वयणसेवणा आभवमखंडा' ॥ १४३ ॥

---

१ आ गाथा तथा ते उपरनो बालावबोध जि मां नथी २ °निउणाण.

[मे.] सघलीइ वस्तु पृथ्वीमाहि सुवर्णरत्नादिक वस्तुनउ विस्तार सोहिलउ । पणि नित्य सर्वदा सन्मार्गनइ विषइ निरत, खरा धर्मना प्ररूपक तेहनउ मेलावउ अति दुर्लभ । **जयवीअराय**माहि 'सुहगुरुजोगो तव्वयणसेवणा' एह जि वस्तुनी प्रार्थना मागी ॥ १४३ ॥

[सो.] केतलाइ 'आ' माहरउ देव, आ माहरउ गुरु । ए टाली बीजा गुणवंतइ कांई नही । हुं एह जि मानउं ।' इसिउं अभिमान वहइ । तेह आश्री कहइ छइ ।

[जि.] अथ देवां गुरांहूइं सगर्वपणइ करी कर्मबहुलता बोलइ ।

[2]अहिमाणविसोवसमत्थयं च थुव्वंति देवगुरुणो अ ।
तेहिं पि जओ[3] माणो ही ही तं पुव्वदुचरिअं[4] ॥ १४४ ॥

[सो.] अहिमाण० अहंकाररूपिआ[5] विसना विकार उपशमाववा देवगुरु कहीइ । देवगुरु सेवतां अहंकारादिक विकार जाइं । **तेहिं पि०** तेहे जि देवगुरे करी केतलांहूइं[6] मान अहंकार आवइ । **ही ही०** आहा ! ते पूर्वदुश्चरित पाछिला भवना पाप तेहनूं प्रमाण, जं गुणागुण कांई जोतउ नथी । दृष्टिरागिइं वाहिउ 'आपणाइ जि देवगुरु रूडा' इसिइं गर्विइं गर्व्यु हींडइ छइ ॥ १४४ ॥

[जि.] लोक परमार्थवृत्तिइं च वली बाह्यवृत्तिइं पुण अभिमान अहंकार तेहनइ वशि देवां गुरुईहूइं वर्णवइं । जउ देवगुरुई अहंकारी छइं इसिइं स्तवइं । स्तवितां छतउई गुण, अछतई गुण वर्णवइ । पुण तेहां देवांगुरांहूइं जउ **माण** अहंकार हूउ साचउ, तउ तेहां देवगुरुनां पूर्वकृत दुश्चरित जाणिवउं ॥ १४४ ॥

---

१ 'आ माहरउ देव' सो.नी बीजी प्रतमां नथी. २ आ गाथा जि.मां नथी, पण ते उपरनो बालावबोध छे. ३ मे. जाओ. ४ °दुच्चरिअं, ५ अभिमान अहंकार°. ६ केतलाइं.

[मे.] अहंकार रूपीया विसना विकार तेहनइं उपशमाविवानइं काजि देवगुरुनी स्तुति कीजइ। कांइं ? ते स्तवतां अहंकार जाइ। अनइ तेही जि देवगुरु हूंतउ जे अभिमान ऊपजइ तउ ह्री इसिइं खेदि ते पूर्वदुश्चरित्र पापनउं प्रमाण जाणिवउं ॥ १४४ ॥

[सो.] लोकना आचार करतउ जे आपणपउं जिनभक्त कहावइ ते आश्री वात कहइ छइ।

[जि.] अथ जे जैन आचारि करी बीजा जैनहूइं न मिलइं तेह जैनहूइं ओलंभउ दिइ।

जो जिणआयरणाए लोओ न मिलेइ तस्स आयारे।
हा हा मूढ करंतो कह अप्पं भणसि जिणपणयं॥ १४५॥

[सो.] **जो जिण०** जिन श्रीवीतरागनी आचरणासिउं जे लोकनउ आचार न मिलइं। मूढ मूर्ख! ते आचार समाचरतउ हूंतउ आपणपूं[1] जिनभक्त किम जिनभक्त कहइं छं ? 'अन्नस्स कडि चडिओ, अन्नस्स वि होइ थणपाणं' ए लोकनउ उपाणउ साचउ करं[2] छं ॥ १४५ ॥

[जि.] अथ जे लोक जिननी आचरणाइं करी तस्स तेह जिननइ आचारि न मिलइं, जिननी आचरणा अनइं जिननउ आचार तेह बिहुंहूइं भिन्नता जाणइं। अनइं जिनाचरण-जिनाचारहूइं भेद नही। हे मूढ! हा हा खेदे। भेद करतउ, लोकाचार करतउ हूंतउ आपणपउं जिनप्रणत जिनभक्त किमु भणइ, कांइं कहइ ? ॥ १४५ ॥

[मे.] जे जिननी आचरणाइं लोक न मिलइं ते लोकनउ

---

१ आपणपुं. २ करं छुं.

आचार जे लोक करइं। **हा हा** इसिइ खेदि। ते मूढ मूर्ख ते आचार करतउ आपणपउं जिनभक्तपणउं किम कहइ ? ॥ १४५ ॥

[सो.] वीतरागइजिनुं वचन मानइ ते थोडा। ए[1] वात कहइ छइ।

[जि.] एवडउ जैनभेद कांइं ? तेहनउं कारण कहइ।

जं चिअ लोओ मन्नइ तं चिअ मन्नंति सयल लोआ वि।
जं मन्नइ जिणणाहो तं चिअ मन्नंति किवि[2] विरला ॥१४६॥

[सो.] जं चिअ० एक लोक जे बोल मानइं तेह जि बोल सघलाइ लोक मानइं। प्रवाहि पड्या प्राहिं[3] संसाराभिलापी सविहुं जीवनां मन सरीषांइ जि हुइं। **जं मन्नइ०** जे जिननाथ तीर्थंकरदेव जे बोल मानइं कहइं, केवलज्ञानिं करी जाणीनइ, तेह जि श्रीसर्वज्ञनां[4] वचन जे मानइं, लोकनउ प्रवाह कांई न मानइ ते केतलाइ विरलाइ जि थोडाइ आसन्नसिद्धिक हुइं ॥ १४६ ॥

[जि.] जे आचार लोक मानइ तेही ज आचार सघलाई लोक मानइं। पुण जे आचार जिननाथ मानइ ते आचार विरला थोडा केईएक भाग्यवंत मानइं ॥ १४६ ॥

[मे.] जे वस्तु मिथ्यात्वादिक प्रवाहि लोक मानइं ते सकल लोकमाहि मानीइ। अनइ जे जिननाथ मानइ कहइ ते जइ विरलउ कोईएक भव्य जीव मानइ ॥ १४६ ॥

[सो.] निश्चय नय आश्री श्रीसम्यक्त्वनूं स्वरूप कहइ[5]।

[जि.] अथ जे साहम्मी उपरि गाढउ स्नेह न करइं तेह उद्दिसी कहइ।

---

१ ते. २ जि. के, से. कवि. ३ प्राहिई. ४ सर्वज्ञनुं. ५ कहइ छइ.

साहम्मिआओ अहिओ बंधुसुआईसु जाण अणुराओ।
तेसिं न हु सम्मत्तं विन्नेयं समयनीईए ॥ १४७॥

[सो.] साहम्मि० जेहहूइं साहम्मी पाहिं बांधव पुत्र कलत्र मित्रादिक स्वजन ऊपरि अनुराग घणउ अधिकउ हुइ। साहम्मी उपरि स्नेह थोडउ अनइ आपणां सगा कुटुंब ऊपरि घणउ स्नेह हुइ, मोह लगइ। **तेसिं०** सिद्धांतनी रीतिइं जोतां निश्चयइं तेहहूइं सम्यक्त्व नथी इसिउं मानउं। जउ सम्यक्त्व दृढ हुइ तउ धर्मवंत ऊपरि अनुराग गाढउ जोईइ। इह लोकना सगपण ऊपरि थोडउ जोईइ। इसिउ भाव ॥ १४७॥

[जि.] जेहां पुरुषहूइं साहम्मी पाहइं बंधु स्वजनादिक ऊपरि अधिकउ अनुराग स्नेह हुइ तेहं पुरुषहूइं सम्यक्त्व नही। इसुं सिद्धांतनी नीतिइं **विन्नेयं** जाणिवउं ॥ १४७॥

[मे.] जेह जीवनइं साधर्मी पांहति बांधव पुत्र कलत्र मित्र ऊपरि अधिक अनुराग हुइ ते जीवनइं सिद्धांतनी रीतिइं जोतां सम्यक्त्व नथी। कांइं ? जु सम्यक्त्व दृढ हुइ तउ साहम्मीनउ अनुराग गाढउ हुइ ॥१४७॥

[सो.] शुद्ध सम्यक्त्वनउ धणी लोकाचारनउ धर्म कांई न गणइ। ए वात कहइ छइ।

[जि.] अथ मिथ्यात्वीनइ पक्षि हूउ जि मानइ तिहहूइं ओलंभउ दिइ।

जइ जाणसि जिणनाहो लोआयारा विपक्खए हूओ।
ता तं तं मन्नंतो कह मन्नसि लोअआयारं ॥ १४८॥

---

१ जि. मे. °सयाईसु. २ मन्ने. ३ सिद्धंतनीईए. ४ साहम्म. ५ निश्चयनई. ६ जि. मे. लोआयाराण पक्खए ७ मे ता तव तं ८ मे. °आयारे

[सो.] जइ० अहो भव्य जीव ! तूं जउ इसिउं जाणं छं— 'जिननाथ श्रीसर्वज्ञ लोकिक आचार थिकउ विपक्षभूत अलगउ छइ। लोकाचार जूउ अनइ श्रीसर्वज्ञनउ[1] आचार जूउ छइ।' **ता तं तं०** तेह भणी हुं ते श्रीवीतरागनइं मानतउ हूंतउ लोकनउ आचार धर्म भणी कांई मानअं[2] छअं ? जे 'लोगविरुद्धच्चाओ' इसिउं कहिउं छइ ते प्रसिद्ध लोकनउ आचार धर्म सिउं अविरुद्ध अणकरतां लोक पाप ऊपार्जइ। ते छांटा[3] आभोपादिक करिवुं। पणि तेहइ धर्म भणी कांई न मानिवउं ॥ १४८ ॥

[जि.] लोकाचारनइ पक्खइ हूउ हूंतउ मानतउ जइ जिननाथ जाणइ, मनमाहि धरइ, तउ पछइ तूं ते जिन मानतउ हूंतउ लोकाचार कांइं मानइ ? ॥ १४८ ॥

[मे.] अरे जीव ! जउ तउं इम जाणइ छइ जि 'जगन्नाथ वीतराग लोकना आचारनइ विपक्षभूत अलगउ छइ। लोकाचार जूउ, वीतरागनउ आचार जूउ।' तउ तउं वीतरागनइं मानतुइ हूंतउ लोकनउ आचार धर्म भणी काइं मानइ ? ॥ १४८ ॥

[सो.] वली सम्यक्त्वइ जि ऊपरि ४[4] गाह कहइ छइ।

[जि.] अथ जिन मानीनइं पछइ अन्य देव मानइ तेह उद्दिसी कहइ।

जे मन्नेवि जिणंदं पुणो वि पणमंति इअरदेवाणं।
मिच्छत्तसन्निवायग्गघत्थाणं[5] ताण को विज्जो ॥ १४९ ॥

[सो.] जे मन्नेवि० जे जिनेन्द्र श्रीसर्वज्ञ साचउ देव

---

१ श्रीसर्वज्ञआचार. २ मानइं छइं. ३ छाट. ४ आर्या. ५ जि. 'सन्निवाइग°', मे. °संनिवार्य.

वीतराग मानी तेहनी आज्ञा पडिवजीनइ **पुणो वि॰** वली इतर देव बीजा संसारिक देव नमइ मिथ्यात्त्वरूपिंइ सन्निपात[1] रोगिइं करी ग्रसिया अचेत जाणिवा। तेहहूइं कुण वैद्य हुइं? तेहहूइं कुण साजा करइं? जे अमृत पीईनइं विस पीइं तेहहूइं सिउं प्रतिकार हुइ? ॥ १४९ ॥

[जि.] जे पुरुष जिनेन्द्र मानी पछइ इतर देव हरिहरादिक प्रणमइं तउ मिथ्यात्त्वरूपिउ संनिपातक रोग तिणिइं **घत्थ** ग्रस्या व्याप्या हूंता **ताण** तेहां पुरुषहंहूइं कुउण वैद्य ह? अपि तु न कोई ॥ १४९ ॥

[मे.] जे सर्वज्ञ साचउ देव मानी तेहनी आज्ञा पडिवजीनइ इतर बीजा संसारिक देवनइं मानइं ते मिथ्यात्त्वरूपीइं संनिपाति रोगि ग्रस्या हूंता अचेत हुइं। तेहनइं कउण वैद्य साजा करइ? ॥ १४९ ॥

[सो.] वली सम्यक्त्वइ जि ऊपरि कहइ छइ।

[जि.] एक श्रावक गुरु नानाविध चैत्यद्रव्य माहोमाहि न वेचावइं।

एगो[2] सुगुरू एगा वि सावगा चेईयाणि विविहाणि।
तत्थ य जं जिणदव्वं परुप्परं तं न विचंति ॥ १५० ॥

[सो.] एगो॰ गुरु एकइ जि अनइ श्रावक एकइ जि छइं। पुण चैत्य देहरां जूआं जूआ अनेरा अनेरानां[3] कराव्यां छइ। तिहां जे द्रव्य छइ ते परस्परिइं न वेचइं। पेला[4] देहरानु उलिइ देहरइ, ओल्या देहरानु पेलइ देहरइ न वेचइ। मनि भेद आणइ ॥ १५० ॥

[1] संनिपाति. [2] आ गाथानी प्रथम पंक्ति जि. मां नथी. [3] अनेरा.
[4] 'पेला देहरानु...न वेचइ' एटलो पाठ सो.नी बीजी प्रतमांथी पडी गयो छे.

[जि.] एक जि सुगुरु। एकइ जि सघला श्रावक। चैत्य जिनदेवगृह विविध नानाप्रकार छइं। **तत्थ** तेहे विविध चैत्ये जं जे जिनद्रव्य ऊपजइ ते जिनद्रव्य देवद्रव्य परस्परइं एक चैत्यनउं द्रव्य बीजइ चैत्यि जे सुगुरु श्रावक न वेचावइं ॥ १५० ॥

[मे.] एक सुगुरु, एक श्रावक छइ अनइ देहरां जूजूआं छइं। अनइ तिहां जे द्रव्य छइ ते परस्परइं न वेचइं। मनि भेद आणइ ॥ १५० ॥

ते न गुरू नवि सड्ढा न पूइओ तेहिं होइ[1] जिणनाहो।
मूढाणं मोहठिई सा नज्जइ[2] समयनिउणेहिं ॥ १५१ ॥

[सो.] ते न० ते गुरु नहीं, ते श्रावक नहीं, जे इम देहरानी जूजूआई करइं। एक ना[3] गणइं तेहे वीतराग देवइ[4] पूजिउ नही। साचउ वीतराग पूजिउ तु कहीइ, जउ वीतरागना प्रासादबिंब एकइ जि देपइ। जे जूजूउं देखिवुं ते मूढनी मोहस्थिति अजाणिवुं जि जाणीइ ॥ १५१ ॥

[जि.] ते गुरु नही। ते श्रावक नही। तेहे गुरु-श्रावके जिननाथ वीतराग देव किवारइं न पूजिउ। कांइं ? तेहे गुरु-श्रावक **समयनिउणेहिं** समय सिद्धांत तेहना निपुण जाण एवहई **सा** ते चैत्यद्रव्यनी परस्परइं अणवेचिवानी रीति ते मूढ मूर्षनी मोहस्थिति **नज्जइ** जाणीइ। नाना चैत्यपदनउ द्रव्य भावइ तिमइ जिनचैत्यि वेचिवउं। दूषण नही, सामुह महाधर्म। इसी सिद्धांतरीति न जाणइं, किंतु पूर्वोक्त मूर्षस्थिति जाणइं तेह भणी ते अजाण ॥ १५१ ॥

[मे.] ते गुरु नहीं, ते श्रावक नहीं, जे देहरां एक न गिणइं।

---

१ जि. कहवि. २ मे. निज्जइ. ३ न. ४ देवउ.

तेहे वीतराग पूजिउ नहीं। जे प्रासाद निंत आपणा पारका करी देषइ ते मूढनी मोहस्थिति अजाणिवउ समय सिद्धातने निपुणे ॥ १५१ ॥

[सो.] वली एह जि वात कहइ छइ।

[जि.] एह ज वात प्रकारातरि वली कहइ।

सो न गुरू जुगपवरो जस्स य वयणम्मि वट्टए भेओ।
चिअभवणसड्ढगाणं[1] साहारणदव्वमाईणं ॥ १५२ ॥

[सो.] सो न० ते गुरु युगप्रधान न कहीइ, जेहनइ वचनि उपदेशि एतलानु भेद थाइ। चैत्यभवन देहरा अनइ श्रावक तथा साधारण द्रव्य देवद्रव्यादिकनी जूजूआई थाइ, माहिमाहि विरोध पडइ ॥ १५२ ॥

[जि.] जे गुरु जुगप्रवर नही, **जस्स य** जेह गुरुनइ वचनि चैत्यभवन देवगृह तेहना द्रव्यहूइ अनइ श्रावकना द्रव्यहूइ वली साधारण द्रव्यहूइ भेद भिन्नता वर्त्तइ ॥ १५२ ॥

[मे.] ते गुरु युगप्रधान न कहीइ, जेहनइ वचनि एतलानउ भेद थाइ। चैत्य देहरा, श्रावक तिम साधारण द्रव्य देवद्रव्यादिकनी जूजूआइ थाइ, माहोमाहि विरोध पडइ ॥ १५२ ॥

[सो.] वली कवि गुरुनी भक्तिइ कहइ छइ।

[जि.] अथ मिथ्यात्वनउ माहात्म्य बोलइ।

संपइ पहुवयणेण[2] वि जाव न उल्लसइ विहिविवेअत्तं[3]।
ता निविडमोहमिच्छत्तगंठिआदुट्ठमाहप्पं ॥ १५३ ॥

१ भुवण° २ जि °वियणेण ३ जि विहिविवेगत्त

[सो.] संपइ० हिवडा प्रभु **श्रीजिनवल्लभसूरिनइं** वचनिइं जा धर्मनी परी विधि अनइ साचा विवेकनउं[1] जाणिवउं[2] न उलसइं न ऊपजइ **ता निबिड०** ते निबिड मोह अजाणिवउं अनइ मिथ्यात्त्वनी ग्रंथि तेहनउं गाढउं माहात्म्य गाढउ महिमा। ते गाढा अजाण अनइ गाढा मिथ्यात्त्वी कहीइं ॥ १५३ ॥

[जि.] सम्प्रति हिवडा प्रभु **श्रीजिनवल्लभसूरि** तेहनइ वचनिइं जउ विधिविवेकपणउं न उल्लसइ, विधि जिनसिद्धात कर्त्तव्य तेहनउं विवेकपणउ, पापपुण्यनउं जाणिवापणउं जउ न ऊपजइ **ता** तउ पछइ निबिड-मोह अज्ञान तद्रूप मिथ्यात्त्वग्रंथिका मिथ्यात्त्वनी गाठडी तेहनउ माहात्म्य प्रभाव जाणिवउ ॥ १५३ ॥

[मे.] साम्प्रत प्रभु **श्रीजिनवल्लभसूरिनइ** वचनिइं जेहनउ चित्त खरी विधि ऊपरि अनइ साचउ विवेक तेहनउं जाणिवउं तेह ऊपरि चित्त उल्लसइ नही, तेहनइं निबिड मोह अजाणिवउं वली मिथ्यात्त्वनी ग्रंथि तेहनउ गाढउं महादुष्ट मोहनउं माहात्म्य जाणिवउं ॥ १५३ ॥

---

[1] **[सो.]** परमेश्वरना वचननी आशातनानुं करिवूं ते गाढउ विरूउं।

[जि.] अथ जिननी आशातना करिवानउं फल कहइ।

बंधणमरणभयाइं[3] दुहाइं तिक्खाइं नेव दुक्खाइं[4]।
दुक्खाणं[5] दुहनिहाणं पहुवयणासायणाकरणं ॥ १५४ ॥

[सो.] बंधण० बाधिवउं[6], मारिवउं[7] अनेराइ भय एहवा जि[8] तीव्र दुख ते दुख न कहीइं। ते थोडेसी[9] वेला[10] सहिया अनइ

---

१ विवेकनुं २ जाणिवु ३ भयाई ४ मे दुक्खाई ५ जि. मे. पहुवयणासायण करणं ६ बाधिवु ७ 'मारिवउ' नथी. ८ जे. ९ थोडिसी. १० वेलां.

फीटी[1] जाइं। **दुक्खाण॰** पुण प्रभु तीर्थंकरदेवना वचननी आशातनानु फरिवुं ते सर्व दुःखनउं निधान। अनंता संसारमाहि अनंते भवे अनंता दुःख दिइ। वीतरागना वचन जे ऊथापइं ते घणुं आगलि दुःखिया थाइं ॥ १५४ ॥

[जि.] बंधनमरणभयप्रमुख दुःख तीव्रइं हूंता पुण दुःख न कहीइं। स्वल्प नान्हपणातउ। जइ बधनमरणादिक दुःख नही, जिन वचन आशातना करिवउं किसउं दुःख ? **पहुवयणा॰** प्रभु स्वामी जिन तेहनी आशातनानउं दुःखनिधान दुःखस्थानक। अतिउत्कृष्टपणातउ। जिनवचन आशातना करिवउ तउ अणंता मोटा गाढा दुःख ऊपजइ। तेह भणी जिनवचन आशातना न करिवी। किन्तु मानिवउं करिवउ पुण जिनवचन, जिम नानाविध मनोज्ञ सुख हुइं ॥ १५४ ॥

[मे.] बधणमरणभयादिक जे दुक्ख ते तीव्र[1] दुक्ख कहीइं ते थोडीसी वेरा सह्या पछी विलइ जाइं। पणि प्रभु तीर्थंकरदेवना वचननी आशातनानउं करिवउं ते सर्व दुक्खनउं निधान, जेह लगी अनंता दुक्ख पामीइ ॥ १५४ ॥

[सो.] हिव कवि आपणी निन्दा करइ छइ।

[जि.] अथ सुश्रावकत्व आजन्म पालिवउं। इसुं कहइ।

पहुवयणविहिरहस्सं नाऊणं[2] जाव दीसए अप्पा।
ता कह सुसावगत्तं[3] जं चित्तं धीरपुरिसेहिं ॥ १५५ ॥

[सो॰] पहु॰ प्रभु तीर्थंकरदेव तेहने वचने,

सुनिणिच्छिअएगमई धम्मम्मि अनन्नदेवओ अ पुणो।
न य कुसमए सु रज्जइ पुन्नावरवाहयत्थेसु ॥
दट्ठूण कुलिंगीण तसथावरभूअमद्दणं विविहं।
धम्माओ न चालिज्जइ देवेहिं सइंदएहि वि ॥
(उपदेशमाला, गा. २३१-३२)

१ फीटी २ जि मे नाऊण वि ३ मे सुसावयत्त.

दढसीलव्वयनियमो पोसहआवस्सएसु अक्खलिओ० ।
(उपदेशमाला, गा. २३४)

इत्यादिके जे श्रावकनउं रहस्य बोलिउं छइ ते जाणीनइ जेती वारइं आपणपउं जोईइ **ता कह०** तु किहा आपणपामाहि सुश्रावकपणुं ? **जं चिन्नं०** जे आगलि धीर पुरिषे **आनंद कामदेवादिके** समाचरिउं तेहनु लवलेश आपणपामाहि नथी ॥ १५५ ॥

[जि.] प्रभु परमेश्वर तेहनउं वचन विधि रहस्य **नाऊण** विजाणई अनइ **जाव** जां लगइ आत्मा ब्रह्मस्वरूप दीसइं ता लगइ किमु सुश्रावकपणउं ? जे सुश्रावकपणउं धीरपुरुषे आचीर्ण आचरिउं ॥ १५५॥

[मे०] प्रभुरतन वीतरागदेव तेहनी भाषी विधि तेहनउं रहस्य जाणीनइ जउ आपणउं आत्मानउं स्वरूप जोईइ तउ किहां सुश्रावकपणउं ? काइं ? आगइ जे **आनंद कामदेवादिक** धीर पुरुष श्रावक हूआ तेहनउ तउ लवलेश मात्र आपणपामाहि नहीं दीसता ॥ १५५ ॥

[सो.] हिव आपणु मनोरथ निहु[1] गाहे कवि[2] कहइ छइ ।

[जि०] अथ श्री**नेमिचंद्र भंडारी** पाचे गाथाइं आपणा मनोरथ प्रकासइ ।

जइवि हु उत्तमसावयपयडीए चडणकरणअसमत्थो ।
तह वि पहुवयणकरणे मणोरहो मज्झ हिअअम्मि ॥१५६॥

[सो.] जइ **वि०** यद्यपि[3] उत्तम श्रावकनी पगथीइं चडवूं करी न सकुं, तीणइं वहिरइ[4] असमर्थ छउं **तह वि०** तउ प्रभु तीर्थंकरना वचन आराधिवानइ विषइ[5] माहरइ हिअइ मनोरथइ[6] छइ । किमइ[7] वीतरागनी आज्ञा आराधाइ तु रूडउं ॥ १५६ ॥

---

१ विहु २ 'कवि' नथी ३ यद्यपिइ ४ वहरइ. ५ विषय ६ मनोर्थ. ७ किमइइ.

[जि०] **जइवि** यद्यपि हु निश्चइं **उत्तमसावयपयडीए** सुजाण श्रावकनइ पावडियालइ हूतउ चरणकरणि चारित्रपालनइ विषइ असमर्थ, दीक्षा पाली न सकउं **तह वि** तथापिहिं **मज्झ हिअअम्मि** माहरा हियामाहे प्रभुवचन करिवानइ विषइ यतिधर्म पालिवानउ विषइ मनोरथ होज्यो ॥ १५६ ॥

[मे०] जउ किमइ उत्तम श्रावकनी पगथीइं चडिवानइ विषइ असमर्थ छउं, पणि तउ ही प्रभु वीतराग तेहना वचननउं करिवउ तेहनइ विषइ मनोरथ माहरइ हियइ छइ ॥ १५६ ॥

ता पहु पणमिअ चलणे इक्कं पत्थेमि[1] परमभावेणं ।
तुह वयणरयणगहणे अइलोहो मज्झ हुज्ज[2] सया ॥१५७॥

[सो.] **ता पहु०** तेह भणी प्रभु परमेश्वर वीतरागना चलण[3] नमस्करीनइ एक वानउं प्रार्थउं मागउं साचइं भाविइं । **तुह०** हे स्वामी ! ताहरा वचन रूपिया रत्न लेवानइ विषइ मूहरइ सदैव अतिलोभ हुज्यो । श्रीसिद्धातवचन उपरि आस्था आदर आवियो । एतलइ काज सरइसिं[4] ॥ १५७ ॥

[जि.] **ता** तउ पछइ **पहु** प्रभु जिन तेहना प्रणमित नमस्करिया चरण पद्मकमलि जिणइ मइं एतावता प्रभु तणा चरणकमल नमस्करी प्रभु कन्हा परम भावि मोटी भक्तिइ करी एक वस्तु प्रार्थउ । हे प्रभो ! ताहरां वचनरूपिया रत्न तेह लेवा सर्वदैव मूहूई अतिलोभ होज्ज हुउ ॥ १५७ ॥

[मे.] तउ तेह भणी प्रभु वीतरागना चरण नमीनइ परम भावि करीनइ एक वानू मागउ । ताहरा वचनरूपीया रत्न लेवानइ विषइ मूरहइ सदैव अतिलोभ हुज्यउ ॥ १५७ ॥

---

१ पिरथेमि २ जि होज्ज ३ चरण ४ सरिसिइ

[जि.] इसुं प्रभु आगलि प्रार्थी आपणी मनोगतं चिंती कहइ ।

अइमिच्छवास निकिट्ठ भावओ गलिअगुरुविवेआणं ।
अम्हाण कह सुहाइं संभाविज्जंति सुविणे वि ॥ १५८॥

[सो.] अति गाढउ[4] घणा कालनु मिथ्यात्वनु वास[5] संस्कार तीणइं करी जे अपनु निकृष्ट भाव मइलु परिमाण तीणं करी गलिउ गिउ गुरु विवेक छइ अम्हारउ एहवा अम्ह रहइं सुहणाइमाहि शुभ पुण्य किहां संभावीइ ? अथवा सुख मोक्षसुख किहां संभावीइ ? ते गाढउं दुर्लभ ॥ १५८ ॥

[जि.] इह संसारमाहे एवहां अम्हहूइं **सुमिणे वि** सुहणाई-माहि किसु सुख संभावीइ ? अपि तु न संभावीइ । अम्हे किसा छां ? **मिच्छवास** मिथ्यात्वनउ संस्कार तिणि करी निकृष्ट विरुउ भाव तेहतउ गलिउ **गुरु** गुरुउ विवेक तत्त्वातत्त्वविचार जेहनउ छइ ॥१५८॥

[मे.] इहां घणा कालनउ मिथ्यात्ववासनउ जे निकृष्टभाव तीणइ गलिउ गरुउ विवेक एवहा अम्हे तेहनइं सुइणाइमाहि परम सुख मोक्षसुख किम संभावीयइं ? ॥ १५८ ॥

[सो.] वली कवि कहइ छइ ।

[जि०] वली कांई मनोगत कहइ ।

जं जीविअमित्तं पि हु धरेमि नामं च सावयाणं पि ।
तं पि पहु महाचुज्जं अइविसमे दूसमे काले ॥ १५९ ॥

[सो.] जं इसिइ अतिविषमि दुःखमाकालि वर्त्तइ जीवितव्य-मात्रई धरीइ अनइ श्रावकनुं नामइ जं धरीइ तेहइ हे प्रभु ! महा आश्चर्य । जेह भणी ए काल अपार अनर्थबहुल अतिधर्मरहित तेह भणी ॥ १५९ ॥

---

१ जि. मे. इह मिच्छवास°. २ जि. °निकिट्ठ°. ३ जि. मे. सुमिणे, ४ गाढ.
५ 'वास संस्कार...अम्हारउ एहवा' एटलो पाठ सो.नी बीजी प्रतमांथी पडी गयो छे.

[जि.] हुं निश्चइं जे जीवितव्य मात्रइं **धरेमि** धरउं, **च** वली एहि विषमि दुःखदायकि दुःषमाकालि **सावयाणं पि** श्रावकई नाम धरउं, हे प्रभो जिन ! **तं पि** तेहइ **महाचुज्जं** महा आश्चर्य ॥ १५९ ॥

[मे.] ईणइं कालि जे जीवितव्यमात्र धरउं अनइ हउं वली श्रावकनउं नाममात्रइ वहउं, हे प्रभो ! हे स्वामी ! ते महाआश्चर्य जे अतिविषम दुक्खमाकालि ॥ १५९ ॥

[सो.] वली गुरु प्रति कवि कहइ छइ ।

[जि.] अथ तात्त्विकचिंता कहइ ।

परिभाविऊण एवं तह गुरु करिज्ज अम्ह सामित्तं ।
जह[1] सामग्गिमुजोगो[2] जह सुलहं[3] होइ मणुअत्तं[4] ॥१६०॥

[सो.] परिभाविऊण० इसिउं विमासीनइ सद्गुरु ! अम्हारउ स्वामीपणउं तिम अम्हारी सार करिजो, जिम आगलि अम्हे धर्मसामग्रीनु[5] रूडउ योग प्रामुं अनइ जिम मनुष्यपणउं सुलभ थाइ। जेह भणी सिद्धांतमाहे एह जि बोल गाढा दुर्लभ कहिया छइं—

चत्तारि परमंगाणि दुल्लहाणि अ जंतुणो ।
माणुसत्तं सुई सद्धा संजमम्मि अ वीरिअं ॥
(उत्तराध्ययन, अध्ययन ३, गा. १)

तथा—

धन्नाणं विहिजोगो विहिपक्खाराहगा सया धन्ना ।
विहिबहुमाणी धन्ना विहिपक्खअदूसगा धन्ना ॥ १६० ॥

[जि.] देव आगलि वीनती करी गुरु आगलि वीनती करइ। हे गुरो ! इसुं पूर्वोक्त गाथास्वरूप **परिभाविऊण** परिभावी विमासीनइं **तह** तिम **अम्ह सामित्तं** अम्हारी धणीप **करिज्ज** करिजो ।

---

१ पहु २ जि. ˚सुजोगे, मे. ˚सजोगे. ३ जि. सल्हं, मे. सहलं ४ जि. सम्मत ५ धर्मसामग्री

जइ जिम **पहुसामग्गि** जैन सामग्री तेहनइं संयोगि हूंतइ अम्हा रहइं सम्यक्त्व सुलभ हुइ ॥ १६० ॥

[मे.] इसिउं विमासीनइ हे सुगुरु ! अम्हारउं स्वामीपणउं तिम करउ, जिम स्वामीनी सामग्रीनइ जोगिइं अम्हारउं मनुष्यपणउं सफल सुलभ थाइ ॥ १६० ॥

[जि.] अथ श्री**नेमिचंद्र भंडारी** स्वनामांकित गाथा कहइ।

एवं भंडारिअनेमिचंदरइयाओ कइवि[1] गाहाओ।
विहिमग्गरया भव्वा पढंतु जाणंतु जंतु सिवं ॥ १६१ ॥

[सो.] **एवं०** इम इसी रहिइं[2] **नेमिचंद्र भंडारी**-रची कीधी ए केतलीइ १६० गाथा जे भव्य जीव खरा विधिमार्गनइ विषइ तत्पर छइं ते[3] ए पढउ। एहंनु अर्थ जाणउ। सम्यग् आराधीनइ मोक्षपदि जाउ। अनंत सुख लहउ ॥ १६१ ॥

[जि०] एवं इणि प्रकारि **भांडागारिक** श्रीनेमिचंद्रइं रचित कीधी केतलीएक गाथा विधिमार्गरत भव्य जीव पढउ। तेह गाथानउ अर्थ जाणउ। किम शिव मोक्षि निरुपद्रवि स्थानकि **जंतु** जाउ। भणहार जाणहार पुरुषहूइं महापुण्यफलप्राप्ति हुइ ॥ १६१ ॥

[मे.] इसी परिइं **भंडारी** श्रीनेमिचंद्रिइं केतलीएक गाथा रची। अनइ जे विधिमार्ग खरी विधि तेहनइ विषइ रत जे भव्य जीव छइं ते ए पढउ। एहनउ अर्थ जाणउ। अनइ आराधतां भणता जाणता शिवपद पामउ। अनंत सुख लहउ ॥ १६१ ॥

[सो.] इति[4] **षष्टिशतकबालावबोधः** समाप्तो विरचितः श्रीसोमसुन्दरसूरिपादैः सर्वजनोपकाराय।

---

१ जि. मे. कहवि. २ रहणई. ३ 'ते' नथी. ४ सो. नी बीजी प्रतमां मात्र आटली ज पुष्पिका छे—"इति षष्टिशतकबालावबोध समाप्त॥ छ॥ श्रीः॥ ग्रंथाग्र १०९६ श्लोकाः॥ श्री॥ श्री॥ छ॥"

क्ष्मासंटामृतकुंडनिष्टपमिते १४९६ संवत्सरे श्रीतपा-
गच्छेन्द्रैर्गुरु**सोमसुन्दर**वरैराचार्यधुर्यैरियम् ।
वार्ताभिर्विहिता हिताय कृतिना सम्यक्त्वबीजे सुधा-
वृष्टि **षष्टिशताह्वयप्रकरणव्याख्या** चिरं नन्दतु ॥

ए प्रशस्तिनउं काव्य महात्मानउं कीधउं । सवत्[र] १५१३ वर्षे ॥ ग्रन्थाग्र ९९८ श्लोका ॥ छ ॥ **मंडपदुर्गे**

[जि.] इति श्री**षष्टिशतकप्रकरण**वार्तारूपवृत्ति ॥ छ ॥ सवत् १५०१ वर्षे श्रावण वदि १० भौमदिने श्री**खरतरगच्छे** श्री**जिनराजसूरिपट्टे** श्री**जिनवर्द्धनसूरि**स्तत्पट्टे श्री**जिनचन्द्रसूरिपट्टे** भव्याम्भोजदिवामणिना सविग्नचूडामणिना वावाच्यार्थ (?) दानचिन्तामणिना सुविहितगुरुचक्रवर्तिना महापरोपकारिणा श्री**जिनसागरसूरिणा** बालानामवबोधाय श्री**नेमिचन्द्र भांडागारिक**कृतस्य **षष्टिशतकप्रकरणस्य** स्वरूपा वार्तारूपा वृत्ति कृता । सा च श्रीसघेन वाच्यमाना चिरं नन्द्यात् ॥ छ ॥ शुभं भवतु ॥ कल्याणमस्तु ॥ लिपितं ॥ छ ॥ श्री ॥ श्री ॥ छ ॥

[मे.] इति श्री**नेमिचन्द्र भंडारी**विरचित**षष्टिशतकविवरणं** । कृतिरियं श्रीवृद्धखरतरगच्छीय वाचकेन श्री**मेरुसुन्दरेण** ॥ छ ॥

शास्त्रं बालावबोधाख्य**ममरप्रभसूरि**भि ।
लिखितं निजपुण्याय शौघ्यसाहाय्यहेतवे ॥
यदत्र विहित कर्त्रा स्वबुद्ध्यार्थनिरूपणम् ।
प्राय प्राकृतबाहुल्यान्न दोपोऽस्माकमत्र च ॥

शुभ भूयात् श्रीसंघस्य ॥ छ ॥ द० ॥ ग्रथसख्या श्लोकशत ६०० ॥ छ ॥ छ ॥ श्रीजन..... ,

परिशिष्ट १

नेमिचन्द्र भंडारी-विरचित

जिनवल्लभसूरि गुरुगुणवर्णन

पणमवि सामिय[1] वीर जिण,[2] गणहर गोयम सामि ।
सुधर्म[3] सामिअ न[4] लगि सरणि[5] जुगप्रधान सिवगामि ॥ १ ॥
तित्थुधरणु[6] सु मुणिरयण,[7] जुगप्रधान क्रमि पत्तु ।
जिणवल्लहसूरि जुगपवरो,[8] जसु निम्मलउं चरित्तु ॥ २ ॥
तसु सुहगुरु[9] गुणकित्तणइ, सुरराउ[10] वि असमत्थु[11] ।
तो भत्तिब्भर[12] तरलियउ[13] कह[14] हंउ कहि[15] सकयत्थो[16] ॥ ३ ॥
कह भवसायर दुहपवर,[17] कह पत्तउ मणयत्तु ।
किह जिणवल्लहसूरि वयणु, जाणउ[18] समय पवित्तु[19] ॥ ४ ॥
कह सबोहि[20] मणु[21] उल्लसिउ,[22] कह सुद्धउ संमत्तु[23] ।
जुगसमला[24] नाएण मइं, पत्तउ जिणविह[25] तत्तु ॥ ५ ॥
जिणवल्लभसूरि सुहगुरह,[26] बलि किज्जिसु[27] गुरराय[28] ।
जसु वयणेण[29] विजाणीयए,[30] तुट्टइ कुमय[31] कसाय ॥ ६ ॥
मूढा मिल्हहु मूढ पहु, लग्गहु[32] सुद्धइ धम्मि ।
जो जिणवल्लहसूरि कहिउ,[33] गच्छउ[34] जिम सिवरंमि[35] ॥ ७ ॥

---

१ सामि. २ जिणु ३ सुधरम. ४ तुलनि ५ सरणु ६ तित्थु रणद्धु. ७ °रयणु. ८ जुगपवर. ९ सुहगुरु १० सुरराओ. ११ असमत्थो. १२ भत्तिभर. १३ तरलिओ. १४ कहिउ. १५ कहिसुं १६ हियत्थु. १७ °पवरु. १८ जाणिउं. १९ पवित्तओ. २० सुबोह. २१ मण. २२ उल्लसिय. २३ सामत्तु. २४ °समिला. २५ °विहि. २६ °गुरुहे. २७ किज्जउ. २८ सुरगुरुराय. २९ वयणे. ३० विजाणियइ. ३१ कमय. ३२ लगहु. ३३ कहिओ. ३४ गच्छहुं. ३५ सिवघरंमि.

अथिर[1] माइ पिय बंधवह,[2] अथीर[3] रिद्धि गिहवासु ।
जिणवल्लहसूरि पय नमउं,[4] तोडउ[5] भवदुह पासु ॥ ८ ॥

परमपणइ[6] न के वि गुरु निम्मल धम्मह हुंति ।
सव्वि[7] ति सुहगुरु[8] मन्नियहि,[9] जे जिणवयण मिलंति ॥ ९ ॥

'गुरु गुरु' गायवि[10] रंजियहि,[11] मूढउ[12] लोउ अयाणु ।
न मुणइ जं जिण आण विणु, गुरु हुइ[13] सत्तु समाणु ॥ १० ॥

जिम सरणाइय[14] माणुसहं, कोइ करइ सिरछेउ[15] ।
न मुणइ जं जिणभासियउ,[16] तिम कुगुरह संजोउ[17] ॥ ११ ॥

हुंड[18] "विसप्पिणि"[19] भसम गुहु,[20] दूसम कालु कलिट्ठु[21] ।
जिणवल्लहसूरि भडु नमहु, जिणिउ[22] सत्तु[23] निसिट्ठ[24] ॥ १२ ॥

जा[25] जहि[26] कुलगुरु आवियउ,[27] ते तहि भक्ति[28] करंत[29] ।
विरला जोइवि जिणवयण,[30] जहि[31] गुण तहि[32] रचंति[33] ॥ १३ ॥

हा हा दसम[34] कालमलु, खलवक्कत्तण जोइ ।
नामेणिइ[35] सुनिहिय तणइ, मित्तु वि वयरीय[36] होइ ॥ १४ ॥

तहि[37] चेडाहिव[38] हउं नमउ,[39] सुमणिय[40] परमत्थाह[41] ।
हीयडइ[42] जिणवर[43] इक्कपर, अनु सुद्धउ गुरु[44] जाह[45] ॥ १५ ॥

१ अथीर. २ बंधवह ३ अथिर ४ नमओ ५ तोडइ ६ परमप्पणय ७ सव्व ८ दसपुर ९ मन्नियइ १० गाइवि ११ रंजियइं १२ मूढा १३ होइ १४ सरणाईय १५ सिरछेओ १६ जिणभासिअओ १७ संजोओ १८ हुंडा. १९ अवसप्पणि २० गहु. २१ किलिट्ठु २२ जेणउ २३ सुतु २४ नसिद्धउ २५ जो २६ जिह २७ आइयउ २८ भत्ति २९ करंति ३० जिणवयणु. ३१ जहिं. ३२ तहिं ३३ रच्यति ३४ दुसम ३५ नामेणइ ३६ वयरिओ ३७ तिहि ३८ चेडाहिवि ३९ नमओ ४० सुमुणिय ४१ परम उद्याह ४२ हियडिइ ४३ शाहटाजीनी प्रतमां 'जिण विहिक्क पर' एवो पाठ छे, पण ए लहियानी भूल ज लागे छे ४४ गुण. ४५ जाह

जिणि[1] जिणवरि[2] पहु हीलियइ, जणु रंजियइ सहासु[3] ।
सो वि सुगुरु-पणमंतयह,[4] फूटि[5] न हिया[6] हयासु ॥ १६ ॥
मिरियमवे[7] जिउ[8] वीर जिण[9] इक[10] उसत्त[11] लवेण ।
कोडाकोडि सागर ममिउ,[12] किं न मणहु[13] मोहेण ? ॥ १७ ॥
तव संजम सुचिण्ण सहु,[14] सव्वु[15] वि सहलउ होइ ।
सो वि उसुत्तलवेण सह,[16] भवदुह-लक्खइं[17] देइ ॥ १८ ॥
माया मोह चएह[18] जण, दुलहउ[19] जिणविहि[20] धम्मु[21] ।
जो जिणवल्लहसूरि-कहिउ,[22] सिग्घ[23] देउ[24] सिवसंमु[25] ॥ १९ ॥
संसउ[26] कोइ म करहु मणि, संसइ होइ[27] मिच्छत्तु ।
जिणवल्लहसूरि जुगपवर,[28] नमहु सु तिजग-पवित्तु[29] ॥ २० ॥
जइ[30] जिणवल्लहसूरि गुरु, नह[31] दिट्ठउ[32] नयणेहिं ।
जुगपहाणु तउ[33] जाणीयइ,[34] निच्छइ[35] गुण-चरिएहिं ॥ २१ ॥
ते धन्ना सुकयत्थ नर,[36] ते संसारु[37] तरंति ।
जे जिणवल्लहसूरि तणीए,[38] आण[39] सिरेण[40] धरंति[41] ॥ २२ ॥
तहं[42] न रोगु,[43] दोहग्गु नह,[44] तह मंगल कल्लाण[45] ।
जे जिणवल्लह गुरु[46] नमइ,[47] तिन्नि संझ सुविहाण[48] ॥ २३ ॥

---

१ जे. २ जिणवरु. ३ हयासुं ४ पणमंतह ५ फुट्टिक. ६ हियइ. ७ मरिय°. भिओ. ९ जिणु. १० इक्कि. ११ उसुत्तलवेणु. १२ भमिओ. १३ सुणहु. ४ सउ १५ सव्व. १६ सउ. १७ लक्खइं. १८ चएउ. १९ दुलहउं. ० जिणविहि. २१ धम्मुं २२ कहिओ. २३ सिग्घं. २४ देइ. २५ शिवसंसुं. ६ संसओ. २७ हुइ. २८ जुगपवरु. २९ त्रिजग पवित्त. ३० जई. ३१ नय. २ दिठओ ३३ जुगपहाणउ. ३४ विजाणियए. ३५ निच्छइं. ३६ नरा. ३७ संसार. ८ तणिय. ३ आणा. ४० सिरेण. ४१ वहंति. ४२ तेहिं. ४३ रोगो. ४४ तहु. ५ कल्लाणु. ४६ सूरि. ४७ थुणिहि. ४८ सुविहाणु

सुविहिय मुणिचूडारयण,[1] जिणवल्लह वहु[2] राउ[3] ।
इक जीह किम संथुणउ,[4] भोलउ[5] भत्तिसहाउ[6] ॥ २४ ॥

संपइ ते मन्नावि[7], गुरु, उग्गइ उग्गइ सूरि[8] ।
जो जिणवल्लह पहु[9] कहइ,[10] गमइ उमग्गु[11] सुदूरि[12] ॥ २५ ॥

इकि[13] जिणवल्लह जाणीयइ, सञ्चु[14] मुणियइ धम्मु[15] ।
अनु[16] सुहगुरु[17] सवि मंनियइ,[18] तित्थु[19] जि[20] घरहिं[21] सुहम्मु[22] ॥२६॥

इय जिणवल्लह-थुइ भणिय, सुणियइ करइ कल्लाणु ।
देउ[23] बोहि चउवीस जिण, सासइ[24] सखनिहाणु[25] ॥ २७ ॥

जिणवल्लह[25-अ] कमि जाणियउ,[26] हिव मइ तासु[27] सुसीसु[28] ।
जिणदत्तसूरि जुगपवरो, उद्धरियउ गुरुवंसो ॥ २८ ॥

तिणि निय पइ पुण ठावियउ,[29] बालउ[30] सीहकिसोरु[31] ।
परमइ-[32]मइगल[33]-बलदलणु, जिणचंदसूरि मुणि सारु[34] ॥ २९ ॥

तसु[35] सुपट्टि हिव गुरु जयउ,[36] जिणपत्तिसूरि[37] मुणिराउ[38] ।
जिणमय-विहि-उज्जोयकरु, दिणयर जिम विक्खाउ[39] ॥ ३० ॥

पारतंतु विहि विसयसुहु, वीरजिणेसर वयणु ।
जिणवइसूरि गुरु हिव कहइ,[40] निच्छइ[41] अंनु[42] न कवणु ॥ ३१ ॥

---

१ चूडारयणु. २ वुह. ३ गुणराओ. ४ संथुणेउं. ५ भोलओ. ६ भक्तिसुहाओ. ७ मन्नामि. ८ सूर. ९ पढ १० कहहि. ११ अमग्गउ. १२ दूरि. १३ इक्क. १४ सञ्चु वि. १५ धम्मुं. १६ अन. १७ सुहगुर. १८ मनियइ. १९ तित्थ. २० जिम. २१ घरइ. २२ सुदंसु. २३ देओ. २४ सासय. २५ सोक्खु. २५-अ नाहटाजीनी प्रतमां 'जिणवल्लह' पछी 'गुरु' शब्द वधारानो छे. २६ जाणियइ. २७ तसु. २८ सुसीसु. २९ ठाविअओ. ३० बालओ. ३१ सीह-किसोर. ३२ पर. ३३ मयगल. ३४ मुणीसर. ३५ तास. ३६ जयओ. ३७ जिणपतिसूरि. ३८ मुणिराओ. ३९ विक्खाओ. ४० कहओ. ४१ निच्छर. ४२ अनुम.

धन्न ति[1] पुरवरपट्टणइं, धन्न ति देस[2] विचित्त ।
जिहि[3] विहरइ जिणवइ सुगुरु, देसण करइ पवित्त ॥ ३२ ॥
कवणु[4] सु होसइ दिवसडउ,[5] कवणु[6] सु तिहि सुमुहुत्तु[7] ।
जिहि[8] वंदिसु जिणवइ सुगुरु, निसुणिसु[9] धम्मह तत्तु[10] ॥ ३३ ॥
सद्धुद्धारु[11] करेसु हउ, पालिसु[12] दिढु समत्तु[13] ।
नेमिचंदु[14] इम वीनवइ,[15] सुहगुरु-गुणगण-रत्तु[16] ॥ ३४ ॥
नंदउ विहि जिणमंदिरइं,[17] नंदउ विहिसमुदाउ[18] ।
नंदउ जिणपत्तिसूरि गुरु, विहि जिणधम्म पसाउ[19] ॥ ३५ ॥

जिनेश्वरसूरि, जिनप्रबोधसूरि, जिनचन्द्रसूरि, जिनकुशलसूरि, जिनपद्मसूरि, जिनलब्धिसूरि, जिनचन्द्रसूरि, जिनोदयसूरि, जिनराजसूरि, जिनवर्द्धनसूरि, श्रीसागरचन्द्रसूरि । शुभमस्तु ॥ छ ॥

---

१ तई २ देश ३ जहिं ४ कवण ५ देसडओ ६ कवण. ७ सुमुहुत्त ८ जहीं ९ निसुणि १० तत्त. ११ सद्धुद्धार. १२ सुदड्ढ. १३ सम्मत्तो १४ नेमिचंद १५ विनवइए १६ °रत्त (रत्तो) १७ मंदिरहिं १८ °समुदाओ १९ पसाओ

परिशिष्ट २

नेमिचन्द्र भंडारी-विरचित

पार्श्वनाथ स्तोत्र

भवभयववणगणदहणं दरिद्दरोगारिदुरियनिद्दलणं ।
सिद्धिपुरकयनिवास सया वि सुमरामि जिणपासं ॥ १ ॥
इह संसारअरन्ने भीमे पडियाण मुद्धजंतूणं ।
तुज्झ विणा जयनंधन सरणं न हु को वि दुहियाणं ॥ २ ॥
तं माया तं च पिया तं सामी बंधवो गुरू देवो ।
तं चिय परमनिहाणं किं बहुणा मज्झ तं इक्को ॥ ३ ॥
न सरामि देवयाओ नो विज्जाओ न मंतमूलीओ ।
जं सामिय तं पत्तो अउव्वविप्फुरियमाहप्पो ॥ ४ ॥
तुह आणाभंगाओ दुहाइं बहुयाइं जाइं जायाइं ।
ताइं तुमं चिय निहणसु अन्नो कइया वि न समत्थो ॥ ५ ॥
जइ वि पराभवठाणं जइ दीणो दुत्थिओ अहं देव ।
तह वि तुह पय सरंतो मन्नामि न को वि अप्प समो ॥ ६ ॥
उल्लसियाइं सुहाइं दुहाइं खीणाइं ताण निब्भंतं ।
जाण मणम्मि विवसिओ विहिणा तं पासजिणनाह ॥ ७ ॥
ता हरसु मज्झ चिंता सतावं माणमम्मि संकंतं ।
विहिजिणसुहगुरुजोगं सिवसुहयं देहि अणवरयं ॥ ८ ॥
इय पासनाहदेवं सरियं सज्जणसुएण अप्पहियं ।
जो तं सरइ तिसझं सो पावइ वंछियसुहाइं ॥ ९ ॥

भां० नेमिचन्द्रसुश्रावककृतं श्रीपार्श्वनाथस्तोत्रं ॥

'षष्टिशतक'नी प्राकृत गाथाओनी सूचि

[गाथाओनां प्रतीको सामेनो अंक पृष्ठांक सूचवे छे.]

शब्दकोश

शब्दना अर्थ इत्यादिनी पछी नोंधेला अंको अनुक्रमे पृष्ठ अने पंक्ति सूचवे छे उदाहरण तरीके, अणलहतउ शब्द पछी २-१७ ए प्रमाणे अंकनिर्देश छे अर्थात् ए शब्द पृ २ उपर १७मी पंक्तिमां छे १५३-३-१३ ए प्रकारे एक करता वधु अंकनो निर्देश होय त्यां पहेलो अंक पृष्ठनो अने बीजा बधा अंक पंक्तिओना समजवाना छे एक ज पृष्ठ उपर कोई शब्द एक करतां वधु वार प्रयोजायानो निर्देश ए रीते करेलो छे.

संक्षेपसूचि नीचे मुजब छे:—

अ.	अव्यय
अनु.	अनुग
अप.	अपभ्रंश
ए. व.	एकवचन
अं. वि.	अंगविभक्ति
का.	काठियावाडी (बोली)
कृ.	कृदन्त
क्रि. वि.	क्रियाविशेषण
ग्रा. गुज.	ग्राम्य गुजराती
च.	चतुर्थी विभक्ति
जू. गुज.	जूनी गुजराती
तृ.	तृतीया विभक्ति
दे.	देश्य
द्वि.	द्वितीया विभक्ति
न.	नपुंसक लिंग
पा	पालि
पु.	पुरुष
पुं	पुंल्लिंग
पं.	पंचमी विभक्ति
प्र	प्रथमा विभक्ति

प्रा.	प्राकृत
फा.	फारसी
ब. व.	बहुवचन
भू. कृ.	भूत कृदन्त
म.	मराठी
मा.	मारवाडी
व. कृ.	वर्तमान कृदन्त
वि.	विशेषण
ष.	षष्ठी विभक्ति
स.	सप्तमी विभक्ति
सर्व.	सर्वनाम
सं.	संस्कृत
सं. कृ.	संबंधक कृदन्त
स्त्री.	स्त्री लिंग
हि.	हिन्दी
है. कृ.	हेत्वर्थ कृदन्त

अ निश्चयार्थ अव्यय. ७-३. [सं. च > प्रा. य > अप., जू. गुज. इ] जुओ आ शब्दकोशमां इ तथा ई. केटलीक वार पादपूरक तरीके पण प्रयोजाय छे. उदाहरण तरीके—'नयणडां विचि बिहु नीली अ टीली अ करी अ कस्तूरि, आपुं पान संयोगसुं सूटी अ फोफलचूरि; नैवेद आगलि नव करी पुत्री अ लागी अ पाइ, अदला आयस मागि अ मया म छंडेसि माई' (वीरसिंहकृत 'उषाहरण,' पं. २३०-३४); वहिली अ करी अ सजाई अ माइ अ धू सिणगारी (एज, पं. ९७०), इत्यादि.

अक्खइ 'कहे छे.' वर्तमान त्रीजो पु. ए. व. ४-११. [सं. आख्याति > प्रा. अक्खइ]

अक्खर 'अक्षर'. द्वि. ए. व. पुं. ४-११. [सं. अक्षर > प्रा. अक्खर]

अछेरुं 'अचरज.' प्र. ए. व. न. १४२-९. अंगरूप अच्छेरा १४३-१. [सं. आश्चर्य > प्रा. अच्छेरय]

अजयणावंत 'जयणा विनाना.' वि. प्र. ब. व. पुं. १३०-१२. जुओ जयणारहित.

अजाणिवउं 'अज्ञान.' प्र. ब. य. न. १५२-२, १५३-२-१३. जुओ जाणं.

अजूआलूं 'अजवाळुं.' प्र. ए. य. न. १०४-२१. [सं. उज्ज्वलायितम् > प्रा. उज्जलाइअं > अप. उज्जलाइउं > *उज्जुलाइउं > जू. गुज. उजुयालउं, अजुयालउं. सर० गुज. 'ऊजळुं.']

अणलहतउ 'नहि मेळवतो.' व. कृ. प्र. ए. व. पुं. २-१७. अंगरूप अणलहता १४३-४ [सं. अन + √लस् > प्रा. अणलह]

अणलहिवउं 'नहि मेळववुं ते, अप्राप्ति.' प्र. ए. व. न. १३-१५, १४-९.

अणलाधउ 'अणलाध्यो.' ६५-२. वि. प्र. ए. व. पुं. जुओ लाधउ.

अनइ उभयान्वयी. १-६ [सं. अन्यानि > प्रा. अण्णइं > जू. गुज. अनइं, अस्वरित प्रथमश्रुतिलोपथी नइं, अर्वाचीन गु. अनेने.]

अनीरा ११८-५. जुओ अनेरा

अनेथि 'बीजे.' अ. ९-२०. [सं. अन्यत्र > प्रा. अण्णत्थ].

अनेरउ 'बीजो.' वि. प्र. ए. व. पुं. १४-५, ४१-१६, ६०-१३-२०, ६९-७, १०३-१५-२१, १३१-२. **अनेरउं** द्वि. ए. व. न. ४८-१४, ५०-२. वळी जुओ **अनेरइं** तृ. ए. व. ६८-२१; **अनेरइ** स. ए. व. ४३-२२, ७५-११. [सं. अन्यतर > प्रा. अण्णयर] **अनेरउं**नुं उत्तरकालीन **अनेरुं** रूप पण छे. प्र. ए. व. न. ४८-१३, **अनेरे** स. ए. व. न. २८-७. वळी जुओ **अनेरा** १६-१०, २६-६-११, ४०-१, ९७-१३, १०६-११, १०७-४, ११८-२३, १५०-१९, १५३-२१; **अनेरानइ** १२७-९; **अनेराना** ११०-३.' अर्वाचीन गुजरातीमां 'अनेरो' शब्दमा 'अनन्य,' 'असाधारण' एवो अर्थ विकस्यो छे ए नोंधपात्र छे.

अभव्य 'मोक्षनो अनधिकारी.' वि. प्र. ब. व. पुं. ११०-१७. आ जैन धार्मिक परिभाषानो शब्द छे.

अभावडि 'अभाव, अणगमो.' द्वि. ए व. स्त्री. १३३-१९ [सं अभाव + अप. स्वार्थिक प्रत्यय डि].

अमकइ 'अमुकमां.' वि. स. ए. व. न. ९१-११. [सं. अमुके, अप. अमुकइं]

अमुनित 'अज्ञात'. भू. कृ. द्वि. ब. व. पुं १०५-४. [प्रा. मुण 'जाणवुं'].

अयाणु 'अजाण.' वि. प्र. ए. व. पुं. १६२-५. [सं. अज्ञानिन् > प्रा. अजाणि, अयाण].

अलगउ 'अलग, अळगो.' वि. प्र. ए. व. पुं. १४९-२-१३. [सं. अलग्नकः > प्रा. अलग्गओ].

असमरथु 'असमर्थ.' वि. प्र. ए. व. पुं. १६१-५. [सं. असमर्थ > प्रा. असमत्थ].

असमाधि 'अशान्ति, अस्वस्थता.' प्र. ए. व. स्त्री. ११४-२०.

अहिनाण 'एंधाण.' द्वि. ए. व. न. ९३-२३. अहिनाणि तृ. ए. व. न. ९३-४. [सं. अभिज्ञान > प्रा. अहिण्णाण]

अंधण 'अंधापो.' द्वि. ए. व. न. १०९-१९. 'अंधण'नुं पाठान्तर 'अंधपणउं' मळे छे, एटले एना अर्थ विषे संदेह रहेतो नथी.

आगि 'आग.' प्र. ए. व. पुं. ६५-१२. [सं. अग्नि > प्रा. अग्गि > जू. गुज. आगि, एनुं लघु प्रयत्न 'य'कारवाळुं रूप 'आग्य' थया पछी अर्वाचीन गुजराती 'आग' थाय छे.]

आचाम्ल 'व्रत विशेष, जेमां लूखुं सूकुं खावानुं होय छे,' गुज. 'आंबेल.' द्वि. ए. व. न. ५-८. [प्रा. आयंबिल]. आ जैन धार्मिक परिभाषानो शब्द छे.

आणिउ 'लावेलो, गुज. 'आण्यो.' भू. कृ. द्वि. ए. व. पुं. १३८-१४. [सं. आनीतः > प्रा. आणिओ]

आधाकर्मी 'साधु माटे खास तैयार करेलुं भोजन, जे जैन साधु माटे लेवानुं निषिद्ध छे.' १३८-१५. वि. प्र. ए. व. पुं. [आ शब्दनुं प्राकृत रूप आहाकम्मिय. ए जैन धार्मिक परिभाषानो शब्द छे.]

आनंद भगवान महावीरना दस सुप्रसिद्ध उपासक श्रावकोमानो एक. प्र. ए. व. पुं. १५५-५-१२.

आपण 'पोतानुं.' सर्व. द्वि. ए. व. न. ८१-२. आपणई तृ. ए. व. न., ७५-४, ७८-८, वळी जुओ आपणउ ६९-७, ११८-३-४. आपणउं ५५-३, ८९-१५, १०५-२१, ११७-१६, ११८-८; आपणा ७०-३, ११३-७, ११४-३, ११८-१६-१९, १५२-१, १५५-१५; आपणां ११९-१२; आपणी १३५-१८, १३६-१, १५४-१६; आपहणी ७३-१३-१४, ७८-६; आ छेल्ला शब्द साथे गुज.

'आफणी,' 'आफणिये' ('पोते') शब्द सरखावो. [सं. आत्मनः > प्रा. अप्पणो. अर्वाचीन गुजरातीमां थयेलो आ शब्दनो अर्थविस्तार नोंधपात्र छे, केम के 'आपणुं' एटले 'पोतानुं' तेम ज वक्ता समेत बीजां अनेकनुं.]

आपणपउ 'पोतानो.' सर्व. द्वि. ए. व. पुं. ११८-१९. आपणपउं 'पोतानी जात.' द्वि. ए. व. न. ५१-१-५, ६०-१६, ७६-९-११, १०६-१०, १११-२-९, ११२-६, १२६-१७, १४६-५-१९, १४७-२, १५५-४. आपणपइं तृ. ए. व. न. ६९-१२, ७३-१७, ७८-१-२. वळी जुओ आपणपा ९७-१३, ९९-१२; आपणपानइं १४०-११; आपणपामाहि १५५-४-६-१३; आपणपू १४६-१३; आपणपूं ७३-७ [सं. आत्मन्+आत्मन् > प्रा. अप्पण+अप्प. अथवा सं. आत्मत्व > प्रा. अप्पप्प]

आराधणहार 'आराधना करनार.' द्वि. ए. व. पुं. ५७-१९. [सं. आराधन+धार > प्रा. आराधण+आर > 'ह'ना प्रक्षेपथी आराधणहार, सर० सरजनहार, खेवनहार, तारणहार, इत्यादि. 'ह'नो लोप थतां 'आराधनार,' इत्यादि. आ ज ग्रन्थमा मूल पाठमां जुओ करणहार ६-१०, ९-१४, ६५-४, ८२-१६, ९२-१६, ११३-९, १३०-२३, इत्यादि. वळी करन्हार एवुं एमाथी व्युत्पन्न थयेलु रूप पण छे (८५-२०), जेमाथी अर्वाचीन गुजराती 'करनार' आवे. वळी जुओ 'कहणहार' (=कहेनार) ४-८, २९-४, ८४-९; कहिणहार ३७-१२, २२-१२. खाणहार (=खानार < प्रा. खाअणआर < सं. खादनकार) १८-७; एमाथी ज व्युत्पन्न थयेल खाण्हार १७-१७. चालणहार (=चालनार) ९-१५ जाणणहार (=जाणनार) ९३-१०. जाणहार (=जनार) ४७-२०, १५९-१६. दिण्हार (=देनार) १०३-१७, देणहार ३७-६, ८४-९, १०३-९; देनहार ५७-१३; देन्हार २४-४. नासणहार (=नासनार) ४१-१७. प्रकासण्हार (=प्रकाशनार) १०५-२० पालण्हार (=पाळनार) ११५-६. पूरण्हार (=पूरनार) १०३-१३. प्रेरण्हार (=प्रेरण करनार) १०३-१८. बोलणहार (=बोलनार) २४-११, ६१-८ भणहार (=भणनार) १५९-१६. लेणहार (=लेनार) ३७-५. सांभलणहार (=सांभळनार) ३७-११, २९-१६. सेवणहार (=सेवनार) ८६-१९. हउणहार (=होनार, थनार) ६०-१९.

आलोइ 'आलोचना करे छे' वर्तमान त्रीजो पु. ए. व ६९-४. [सं. आलोच् > प्रा. आलोअ प्रायश्चित्त करवा माटे पोताना अपराध गुरुने कहेवा ते, आलोचना] आ जैन पारिभाषिक शब्द छे

आसोजी 'आसो मासनी.' ष. ए. व. स्त्री. ७९-४. [सं. अश्वयुक् > प्रा. अस्सोअ > गुज. आसो.] 'जी' अहीं, कच्छी अने सिन्धीनी जेम, षष्ठीना प्रत्यय तरीके छे ए नोंधपात्र छे.

आस्ता 'आस्था, श्रद्धा.' प्र. ए. व. स्त्री. १४०-५-७, ३८-८. द्वि. ए. व. स्त्री. ३८-८. [सं. आस्था]

आहणतउ 'घा करतो.' व. कृ. प्र. ए. व. पुं. १००-१. [सं. आहन् > प्रा. आहण]

आहणिउ 'घा करवामां आवेलो.' भू. कृ. प्र. ए. व. पुं. ११२-४ [सं. आहन् > प्रा. आहण].

आंग 'अंग, जैन आगमसाहित्यनो एक विभाग.' द्वि. ए. व. न. ५-९-११. [सं. अङ्ग > (अनुनासिक कोमल थवाथी) आंग]. आगमसाहित्यमां 'अंग' तरीके ओळखाता बार ग्रन्थो हता, पण एमांनुं बारमुं अंग 'दृष्टिवाद' लुप्त थयुं छे; अगियार अंगो विद्यमान छे.

आंगमइ 'स्वीकारे छे, भोगवे छे.' वर्तमान त्रीजो पु. ए. व. ८९-४. आंगमी सं. कृ. १२४-१. आंगमीनइ सं. कृ. १२३-७-८. [सं. अङ्ग + √ गम् उपरथी. जुओ आंगीगमइ.]

आंगीगमई 'स्वीकारे छे, भोगवे छे' वर्तमान त्रीजो पु. ए. व. ८९-१६. आ रुप 'आगी' (अंगमां) अने 'गमइ' (जाय छे) एवा बे शब्दोनुं बनेलुं छे, अने ते उपर सूचवेली व्युत्पत्तिनुं समर्थन करे छे. जुओ आंगमइ.

आंगे 'अंगो वडे.' तृ. ब. व. न. ११६-६. [सं. अङ्ग > प्रा. आंग].

इ निश्चयार्थ अव्यय. केटलीक वार पादपूरक तरीके पण प्रयोजाय छे. ६-७, ७-१६, ८-१२-१३-१५, ९-११-१७, १०-९-१५-१८-१९-२१, १५-९, १६-५, १७-२, १८-१०-२२, १९-१५-१७-१८, २०-५, २१-१-५-१९, २२-३-५-९-१३-२०, २३-२-५-८, २४-१-७-१२, २६-१२, २७-१-४-९-१८, २८-६, २९-६, ३३-३, ३९-१, ४३-१७, ४६-१८, ४९-१९-२१, ५७-७-२०, ५९-८, ६४-१२, ६५-२-१२-१९, ६७-४, ६८-८, ७१-८-१०, ७४-५-२०, ७७-१२, ८१-१-१३-२०, ८२-१६, ८४-३-७, ८५-४, ८७-१, ८९-११, ९०-६-७-८-१५-२०, ९१-१-३-४-१३-१४, ९२-१, ९३-९, ९५-५-८, ९६-१८-२३, ९८-३, १०२-११, १०४-१७, १०७-७, १०८-७-८, १०९-१-६, १११-५, ११२-१८, ११३-७,

११४-३, ११५-६, ११७-६-१२, १२९-१०, १४२-४, १४३-१२-१४, १४४-३, १४५-१५, १४७-१२, १४९-१४, १५५-२१, १५७-२१, इत्यादि. जुओ जं.

इकि 'एक.' वि. प्र. ए. व. पुं. १६४-५. [सं. एक]

इक 'एक.' वि. तृ. ए. व. पुं. १६३-३, १६४-२. [सं. एक]

इस्यउ 'आ प्रकारनो.' वि. प्र. ए. व. पुं. ७३-१०. द्वि. ए. व. १४०-२२. वळी जुओ इसी २४-६; इसुं ६५-६, ६६-३, १५७-१. [सं. ईदृशिक > पा. ईदिस > प्रा. ईइस > जू. गुज. इसिउ]

इं निश्चयार्थ अव्यय. केटलीक वार पादपूरक तरीके पण प्रयोजाय छे ५-८-१२, १८-१४-१५, ७६-४, ८१-२२, ८४-४, ८६-१२, ८७-६. जुओ अं.

ईं निश्चयार्थ अव्यय. केटलीक वार पादपूरक तरीके पण प्रयोजाय छे. ८-२-२०, १९-८-९-११, २३-५-७-१६, २४-८, २८-१८, ३४-२२, ५०-५, ६४-१७-१८, ६६-१३, ६७-१७, ६९-७, ७४-११, ७५-१३, ७६-८-११, ८७-१६, ८८-१६, ९०-१५-१७-१९, ९७-९, ९८-१०-१४, ९९-१९, १०१-१६, १०३-१, १०७-२-४, १०८-२, ११५-१, ११७-१२, ११८-१८, १२९-१६-१८-२०, १३३-३, १३७-१५, १३९-९, १४१-१०, १४२-१८-२१, १४५-१९, १४७-१४, १५४-५, १५७-२१, १५८-१-२, इत्यादि. जुओ अं.

ईणं 'एनाथी.' सर्व. तृ. ए. व. नं. ९१-१४, ९९-१३, १३०-१७ [सं. एतेन > प्रा. एएण > जू. ईण. पछी जू. गुज. मां 'ईणइं' एवुं रूप पण मळे छे, जेनो आ 'ईणं' संक्षेप छे. अर्वाचीन. 'गुज. 'एणे,' लोकबोलीमां (खास करी उत्तर गुजरातमां) 'एण.' आ छेल्ला शब्दनां अंतिम 'ण'नो अकार प्लुत छे.]

ईहइ 'इच्छे छे.' वर्तमान त्रीजो पु. ए. व. ४-११. [सं. √ ईह्]

उखाणउ 'कहेवत.' द्वि. ए व. पुं. १४६-१४. दीर्घ 'ऊ' वाळुं रूप ऊखाणउ पण मळे छे-प्र. ए. व. १०३-१. [सं. उपाख्यान > प्रा. उवक्खाण. अर्वाचीन गुज. 'उखाणुं,' म. 'उखाणा.' सोळमी शतकमां थयेलो गुजराती कवि मांडण पोतानी 'प्रबोधबत्रीसी'मां प्रयोजेली बहुसंख्य कहेवतोने 'उखाणा' कहे छे. जेमके–'उखाणा बहु आदर करी, जोयो अर्थ विधि विस्तरी' (पं. ६४१). वळी हाथप्रतमां ए काव्यनो 'मांडण बंधारामां उखाणा' तरीके निर्देश छे. अर्वाचीन गुज. मां 'उखाणुं'नो 'समस्या' एवो अर्थ वधारे प्रचलित छे]

उज्जोयकरु 'प्रकाश करनार.' वि. प्र. ए. व. पुं. १६४-१४. [सं. उद्योतकर]

उदासन 'तटस्थ.' वि. प्र. ए. व. पुं. १४१-५. [सं. उदासीन]

उपायनां 'मानता, आखडी.' प्र. ब. व. न. ६-१७. [सं. उपायन]

उमग्गु 'आडो मार्ग.' द्वि. ए. व. पुं. १६४-४. [सं. उन्मार्ग > प्रा. उम्मग्ग]

उलपी 'ओळखीने.' सं. कृ. १४१-२०. [सं. उपलक्षयति > प्रा. उवलक्खइ उपरथी]

उल्हिइ 'पेलामां,' का. 'ओल्यामां.' सर्व. स. ए. व. १५०-२०. [व्युत्पत्ति निश्चित थई शकी नथी.] जुओ ओल्या.

ऊकांटउ 'रोमांच.' द्वि. ए. व. पुं. ९८-४-१८. [सं. उत्कण्टकः > प्रा. उक्कंडउ]

ऊखेलीं 'उखेडीने.' सं. कृ. १२५-४. [प्रा. उक्खाल < सं. उत्क्षाल्]

ऊतारणउं 'ऊतारणुं, ऊतारीने फेंकी देवुं ते.' द्वि. ए. व. न. १०८-१४. ऊतारणइं तृ. ए. व. १०८-२२. [सं. उत्तारणकम्].

ऊपद्दरउं 'अलग,' गुज. 'ऊफरुं.' अनुग. ६-१८. [जू. गुज. उपर + हरउं ? जो एम होय तो आ 'हरउं'ने चतुर्थी अने षष्ठीना अनुग 'रहइं'नुं रूपान्तर गणवुं जोईए.]

ऊभति 'खराब भात-चित्रामण.' स. ए. व. स्त्री. ४६-३. [सं. उद् + भक्ति > प्रा. ऊभत्ति. सर० गुज. 'भाल्य,' 'भात.']

ऊलखतउ 'ओळखतो.' व. कृ. प्र. ए. व. पुं. १४०-३. जुओ ऊलपी.

ओठंभ 'आलंबन.' द्वि. ए. व. न. १४४-२. [सं. अवष्टम्भ > प्रा. अवट्ठंभ]

ओलंभउ 'उपालंभ,' गुज. 'ओळंभो.' द्वि. ए. व. पुं. १४६-८, १४८-११. [सं. उपालम्भ > प्रा. उवालंभ].

ओल्या 'पेला.' अंगरूप. १५०-२०. जुओ उल्हिइ.

कइजिनइ 'कोइकना ज.' सर्व. स. ए. व. न. ४-१. निश्चयार्थ अव्यय 'जि' अहीं 'कइ' सर्वनाम अने 'नइ' प्रत्ययनी वचमां आवेलो छे ए नोंधपात्र छे. खास करी जूना गुजराती गद्यमां आ प्रकारना संख्याबंध प्रयोगो मळे छे

कउतिग 'आश्चर्य.' प्र. ए. व. न. ८५-१४. [सं. कौतुक]

कडकडता 'शुद्ध, निर्दोष.' व. कृ प्र. ब व. पुं. १०६-१४. आ ज अर्थमां जुओ **कडकडा** १०६-१४.

कन्हइ 'पासे,' गुज. 'कने.' सप्तमीनो अनुग. २७-१५, २८-१२-१३, ५२-२२, ५३-६, ६५-१८. **कन्हइं** ३६-१५, ३०-१२, १२२-११. **कन्हलि** ११-१५, २८-१४-१७, २६-११. **कन्हां** १५६-१८. [सं. *कर्णस्मिन् > अप. कण्णहिं > कन्हइ. कन्ह + ल (स्वार्थिक प्रत्यय) + इ = कन्हलि. 'कन्हां'मां सप्तमीनो 'आं' प्रत्यय छे. अर्वाचीन गुजराती 'कने' अथवा 'कणे' = पासे सं. कर्णे > प्रा. कण्णे उपरथी छे.]

कर्मइजिनइ 'कर्मने ज.' द्वि. ए व. न. ६५-१. **कर्मइजिनउं** 'कर्मनुं ज.' ष ए. व. न. ११०-१०. 'कर्म' नाम अने एना प्रत्ययनी वचमां 'इ' अने 'जि' एवा बे अव्ययो आवे छे ए नोंधपात्र छे. जुओ **कइजिनइ**.

कलिट्ठ 'क्लिष्ट, हलको.' वि. प्र. ए. व. पुं १६२-९. [सं. क्लिष्ट > प्रा. किलिट्ठ]

कहइं 'तुं कहे (छे).' वर्तमान बीजो. पु. ए. व. १४६-१३.

कादम° 'कादव' स. ए व. पुं. ८१-२. [सं. कर्दम > प्रा. कद्दम. गुजरातीनी केटलीक बोलीओमां हजी 'कादम' बोलाय छे.]

कुउण 'कोण,' प्रा गुज. 'कुण.' सर्व. प्र. ए. व. पुं. १५०-८. [सं. कः पुनः > प्रा. कवण > अर्वाचीन गुज. 'कोण.'] 'कउण' एवुं जू. गुज.मां व्यापक रीते प्रचलित रूप पण वारंवार मळे छे—४५-७, ५६-५-९, ५७-४, ६४-७-२१, १५०-१२, इत्यादि. कुण पण छे–१०८-२, १३५-१४, १५०-३, इत्यादि.

कुतिरउ 'कूतरो.' द्वि. ए व पुं. १८-७. **कुतिरानइ** 'कूतराने (सुखे).' स ए व पुं. १८-२. [सं कुकुर > प्रा. *कुत्तुर. जो के कुकुर शब्द ज आर्येतर मूळनो होय ए संभवे छे. अहीं 'क'नुं 'त'मां परिवर्तन थाय छे ए साथे सरखावो 'कुकु,' 'तुतु' जेवा गुज. शब्दो. साहित्यिक प्राकृतमां पण 'कुत्त' शब्द छे]

कुमति 'खराब भातचित्रामण.' द्वि. ए. व. स्त्री. ४५-१८. [सं. कुभक्ति > प्रा. कुभत्ति] जुओ ऊभति.

कूकर 'कूतरो.' द्वि. ए. व. पुं. १७-१७. [सं. कुकुर] सोमसुन्दरसूरि आ शब्दनो 'भुंडीउ' (भुंड) एवो अर्थ करे छे, एटले ए अर्थ पण प्रचलित हशे एम गणवुं जोईए.

केडाइतपणउं 'अनुयायीपणुं.' द्वि. ए. व. न. ७५-१३. वळी जुओ केडिलु 'पाछलनो,' द्वि. ए. व. पुं. ७९-१२. ['केड,' 'केडी,' 'केडो' वगेरे शब्दोनी व्युत्पत्तिने सं. कटि साथे संबंध हशे ?]

कोडि 'करोड.' द्वि. ए. व. स्त्री. ९१-१०. [सं. कोटि > प्रा. कोडि, एमां 'र'नो प्रक्षेप थतां जू. गुज. 'क्रोडि' अने अर्वाचीन गुज. 'क्रोड' अने 'करोड.'] वळी जुओ कोडाकोडि 'एक करोडने एक करोडे गुणवाथी थाय एटली संख्या.' द्वि. ए. व. स्त्री. १२१-२१, १२२-१३-१६, १६३-४.

क्षप 'श्रम.' द्वि. ए. व. स्त्री. १२६-२०. क्षपइ 'खपावे छे, दूर करे छे.' वर्तमान त्रीजो पु. ए. व. १२७-१५. क्षपीनइ 'खपावीने.' सं. कृ. ८७-९. [सं. √ क्षप् उपरथी] जुओ खप.

खइर 'खेरनुं झाड.' प्र. ए. व. पुं. १०३-१५. [सं. खदिर > प्रा. खइर.]

खप 'श्रम, प्रयत्न.' द्वि. ए. व. स्त्री. १२६-८-९, १३४-१८. 'खप'नो 'उपयोग, जरूर' एवो तुलनाए अर्वाचीन अर्थ आमांथी निष्पन्न थयेलो छे. जुओ क्षप.

खरड तृ. ए. व. पुं. ५४-१४. [मात्र एक ज प्रयोग उपरथी आ शब्दनो स्पष्ट अर्थ समजातो नथी, पण सन्दर्भ जोतां 'खरड'मां निकृष्ट कोटिनी व्यक्तिनो भाव रहेलो छे.]

खाणहार 'खानार.' प्र. ए. व. पुं. १८-७. [सं. खादन + कार > प्रा. खाअणआर.] आ प्रकारना अन्य प्रयोगो माटे जुओ आराधणहार शब्द नीचे.

खुंट 'निरंकुश माणस.' तृ. ए. व. पुं. ५४-१३. ['सांढ' ए अर्वाचीन अर्थ लक्षणाथी आव्यो जणाय छे.]

षेपइं 'फेंके छे.' वर्तमान त्रीजो पु. ब. व. ४५-९. [सं. क्षेप > खेप. जूनी हाथप्रतोमां लखेला 'ष'नो उच्चार घणुं खरुं 'ख' करवानो होय छे.]

गणहर 'गणधर, महावीरना मुख्यशिष्य.' द्वि. ए. व. पुं. १६१-१. [सं. गणधर]

गरुड 'मोटो,' गुज. 'गरवो.' वि. प्र. ए. व. पुं. १५७-१४. गुरुड प्र. ए. व. पुं. १५७-१२. गुरया प्र. ब. व. पुं. ७१-२१. गरुयाईना 'मोटाओना पण.' ष. ब. व. पुं. ७२-६. [सं. गुरुकः > प्रा. गुरुओ, गरुओ]

गरूयडि 'मोटाई.' द्वि. ए. व. स्त्री. ५६-१२. [सं. गुरुक > प्रा. गरुअ + (अप. स्वार्थिक प्रत्यय) डि]

गाह 'गाथा.' द्वि. ब. व. स्त्री. ६०-३-५. गाहइं 'गाथामां' स. ए. व. स्त्री. १-१०. गाहे 'गाथाओ वडे' तृ. ब. व. स्त्री. ५२-१३-१६, १५५-१४. गाहां 'गाथामां.' स. ए. व. स्त्री. १३०-१७. [सं. गाथा > प्रा. गाहा]

गुणता 'पुनरावृत्ति करता, भणतां,' अर्वाचीन गुज. 'गणता.' व. कृ. प्र. ब. व. पुं. ५-१२. गुणतां व. कृ. प्र. ए व. पुं. ३-९. गुणिवउं 'गणवुं-भणवुं.' द्वि. ए. व. न. ५-२०.

गुरां 'गुरुओने.' द्वि. ब. व. पुं. १४५-८-२०.

ग्यउ 'गयेलो.' भू. कृ. प्र. ए. व. पुं. ६०-११. [सं. गतः > प्रा. गओ > अप. गिउ. का. 'गियो,' अर्वाचीन गुज. 'ग्यो.'] वळी जुओ गओ 'गयो.' भू. कृ. प्र. ए. व. पुं. ८२-१९. गिउ 'गयो.' प्र. ए. व. पुं. ८२-१३. द्वि ए. व. पुं. ८-१५.

ग्रहणा 'घराणुं, अडाणुं.' अं. वि ए व. न. १६-१२. [सं. ग्रहणकम्]

घालइं 'नाखे छे.' गुज. 'घाले छे' वर्तमान त्रीजो पु ब. व. १७-१८, १८-८, २५-७-८, ४५-५, ११९-२०. घातिउ 'नाख्यो, घाल्यो.' भू. कृ. प्र ए. व पुं. ७९-१३-१९. [प्रा. घत्त 'फेंकवुं']

चउगगइ 'देव, मानव, नारक अने तिर्यंच ए प्रमाणे चार प्रकारनी गति.' प. ए. व. स्त्री ४-११. [सं. चतुर्गति > प्रा. चउग्गइ]

चडवाइजिनी 'चडवानी.' ष. ए. व. स्त्री. १४३-१२. 'इ' अने 'जि' ए बे अव्ययो नाम अने प्रत्ययनी वचमा आवी गया छे.ए नोंधपात्र छे [प्रा. √ चड. संस्कृतमां एक चट् क्रियापदनो प्रयोग छे खरो, पण ए प्राकृत उपरथी लेवायुं होवानो संभव वधारे छे.]

चलुइइ 'चांगळाथी.' तृ. ए. व. न. ७६-६. [सं. चुलुकेन > अप. चुलुअइ]

चाड 'दुर्जन, कपटी.' प्र. ए. व. पुं. ६५-१३. [दे. चाड]

चाही 'जोईने.' सं. कृ. १३८-१४. [प्रा. चाहृ 'इच्छवुं.' जूनी गुजरातीमां 'चाह'नो प्रयोग 'जोवा'ना अर्थमां छे—'अखा आणी मंदिरिमाहि, चित्रसालि परि परिनि चाहि' (वीरसिंहकृत 'उपाहरण,' पंक्ति ३३८); चतुरपणूं अति चाहवा नारि जंपिइ-नाह' (ए ज, पंक्ति ६००). सरखावो अर्वाचीन गुजराती 'चाहन' (सौ जुए तेम, खुल्ली रीते), 'चाहीने' (जाणी जोईने), इत्यादि. अलबत, 'चाहवुं'नो 'इच्छवुं' ए अर्थ पण जूनी गुजरातीमां छे ('सम चाहु सारुं ए हाथ, दीइ न जां को दूजण बाथ'—वीरसिंहकृत 'उपाहरण,' पंक्ति १०५), अने अर्वाचीन गुजरातीमां तो ए अर्थ सामान्य छे.]

चिणी 'चणेली' (भींत.) भू. कृ. प्र. ए. व. स्त्री. १२५-१०. [सं. चिनोति > प्रा. चिणइ उपरथी चिण > चण क्रियापद व्युत्पन्न थयेल छे.]

छद्मस्थ 'असर्वज्ञ.' प्र. ए. व. पुं. ६०-२१. [सं. छद्मस्थ. केवली-सर्वज्ञ न होय ते बधा छद्मस्थ कहेवाय. आ जैन पारिभाषिक शब्द छे.]

छाला 'बकरा.' अं. वि. ब. व. पुं. ७८-२०, ७९-४. [सं. छागल > प्रा. छाअल.]

छेहडइ 'छेडे.' स. ए. व. पुं. १४०-१. [सं. छेद > प्रा. छेअ > अप. छेह. स्वार्थिक प्रत्यय 'ड' तथा सप्तमी प्रत्यय 'इ' लागतां छेहडइ, व्यत्ययथी छेडहइ. एवुं पाठान्तर 'छेहूडइ' मळे छे ए नोंधपात्र छे.]

छेहनउं 'नुकसाननुं.' ष. ए. व. न. २१-१८. [व्युत्पत्ति माटे जुओ छेहडइ. बन्ने शब्दोनी व्युत्पत्ति एक ज मूळमांथी होवा छतां बन्नेनो विभिन्न अर्थ-विकास ध्यान खेंचे छे.]

छोह° 'चूनानी छो.' प्र. ए. व. स्त्री. १२५-७, छोहि प्र. ए. व. स्त्री. १२४-११, १२५-११. छोहि° तृ. ए. व. स्त्री. १२५-१०. [सं. सुधा > प्रा. छुहा, छोहा.]

जमलउ 'साथे.' अ. १०२-४. [सं. यमल > प्रा. जमल. जूनी गुजरातीमां अढारमा सैका सुधी 'जमलउ-जमलो'नो प्रयोग छे. सर० म. 'जवळ' = पासे.]

जमारउ 'जन्मारो.' द्वि. ए. व. पुं. ७-१५. [सं. जन्म + कार > प्रा. जम्मआर]

जयणारहित 'हिंसा टाळवाना प्रयत्नथी रहित.' वि प्र. ए. व. पुं. १३१-४. [सं. यतनारहित] जुओ अजयणावंत.

जापल° 'यक्ष.' प. ए. व. पुं. ८३-९. स. ए. व. पुं ८३-१६. [सं. यक्ष > प्रा. जक्ख > अप. जख (प) + स्वार्थिक 'ल.' जुओ पाल्हण कविकृत 'आबुरास' (सं. १२८९) नैं अंते—'राखइ जासु जु आखइ खेत्रु, रासइ मुझसंति मुँदेरइ.'] जू. गुज.मां अन्यत्र थाय छे तेम, अहीं पण 'ष'नो उच्चार 'ख' करवानो छे.

जाण 'ज्ञानी.' प्र. ए. व. पुं. ९३-१० जाणनी ष. ए. व. पुं. ८०-१८. [सं. जानन् > प्रा. जाणं. सर० गुज. 'अजाण.']

जाणं ('हुं) जाणे छे.' वर्तमान बीजो पु. ए. व. १४९-१.

जाणिवउ 'जाणवो.' विध्यर्थ कृ प्र. ए. व. पुं. ६९-६-१५. जाणिवउं विध्यर्थ कृ. प्र. ए. व. न. ८०-६, ८६-६. [सं. जानाति > प्रा. जाणेइ, जाणइ]

जान 'वाहन.' द्वि. ए. व. न. ३-७ [सं. यान. सर० गुज. (वरनी) 'जान.' आ ग्रन्थमां प्रयोजायेल 'जान' शब्दमां केवळ 'वाहन' ए अर्थ उपरात समारंभपूर्वक समूहनां जवानो अर्थ पण छे ए स्पष्ट जणाय छे.]

जि निश्चयार्थ अव्यय. अर्वाचीन गुज. 'ज.' ६-१४, ७-३-१६, ९-२०, १०-९-१५-१८, १५-९, १६-१, १८-२२, १९-१५, २०-५-९, २१-२-१९, २५-१७, २६-९, २७-२ ११, २८-७-११-१२, २९-४, ३१-१-१२-२०, ३४-१०-११-१७, ४६-१८, ४९ १४-१७-१९-२०-२१, ५०-८-९-२१, ५३-१८, ५७ १२, ५९-८, ६०-१२, ६२-२१, ६३-१, ६५-१, ६७-४, ७०-४-५-१७-१९, ७३-७, ७७-४, ८१-१, ८३-१, ८४ ७, ८६-११, ९१-१३, ९२-२-४-११, ९३-९, ९४-१३, ९५-५-८, १०१ ४, १०४-१७, १०७-७-९, १०८-८, १०९-१७, ११४-३, ११५-६, ११७-६, १२६-३, १३५-१६, १३६-९, १३७-१७, १३९-११, १४०-७, १४१-१०, १४७-११, १४९-१६, १५०-१३, १५१-१, इत्यादि. [सं. एव; प्रा. य्येव, जेव, जे, अप. जि]

जिणिउ 'जीत्यो.' भू. कृ. तृ. ए. व. पुं. १६२-१०. [सं. * जिनाति > जिणइ. सर० जिन (तीर्थंकर)]

जिमइ 'जमे.' वर्तमान त्रीजो पु. ए. व. १२८-१५. **जिमण** 'भोजन, जमण.' द्वि. ए. व. न. ८३-१७. **जिमिवउं** 'भोजन, जमवुं.' द्वि. ए. व. न. ७४-१९. **जीमवउं** प्र. ए. व. न. ७४-१४. **जीमिवा** 'जमवा.' हे. कृ. ७४-१३. [प्रा. जिमइ, जेमइ. म. जेवणें. केटलाक विद्वानो आ माटे *जेमति एवुं संस्कृत रूप कल्पे छे. पण खरुं जोतां, कोई अजाण्या मूळमांथी आ शब्द 'भोजन करवा'ना अर्थना संस्कृत √ भुज् ने स्थानभ्रष्ट करीने प्रचलित थयो एम मानवुं वधारे योग्य छे.]

झाइ 'न्याय वडे.' तृ. ए. व. पुं. १२७-२१. **झाइं** तृ. ए. व. पुं. १३५-७. [सं. न्यायेन]

ठउडवा 'अपमान करवा माटे.' हे. कृ. १०२-१४. [व्युत्पत्ति अनिश्चित]

डली 'लचको.' द्वि. ए. व. स्त्री. १२४-२२, १२५-४. प्र. ए. व. स्त्री. १२५-१. [दे.] दयारामे आ ज अर्थमां आ शब्दनो प्रयोग कर्यो छे–'मन थयुं माटीनी डली' ('रसिकवल्लभ,' पद ३, कडी ५.)

डाहउ 'डाह्यो.' वि. प्र. ए. व. पुं. ४८-८, ४९-६. **डाहपण** 'डहापण.' प्र. ए. व. न. ४८-२०. वळी जुओ **डाहा** ५१-१७; १२१-२, १४२-१२, १४२-२१, १४३-२. **डाहाइनइ** ५२-१०. **डाहाईनउ** ५२-६. **डाहु** ४८-१७. [सं. दक्षः > प्रा. दक्खो, दाखो, *दाहो. श्री नरसिंहराव दिवेटिया सं. दक्षिणकः > प्रा. दाहिणउ उपरथी ('ण'नो लोप करीने) 'डाह्यो'नी व्युत्पत्ति बतावे छे. डॉ. टी. एन. दवे सं. दग्ध > प्रा. दग्घ उपरथी सूचवे छे.]

डाहीयार 'डाह्या.' वि. प्र. ब. व. पुं. ११७-१४. [सं. दक्ष+कार > *दाहआर. जुओ उपर **डाहउ**.]

डीलि 'जात वडे, गुज. डिले.' तृ. ए. व. न. ७८-९. [प्रा. डिल्ल. जो के प्राकृतमां एनो प्रयोग एक प्रकारना जळजंतु माटे छे, पण जूनी गुजरातीमां 'डील' शब्द 'जात-शरीर'ना अर्थमां सुप्रचलित छे.]

ढिग 'ढग, ढगलो.' द्वि. ए. व. पुं. ९४-१-२-३-१८-१९-२०. **ढिगला** 'ढगला.' द्वि. ब. व. पुं. ९४-९. [दे.]

°तउ पं. ए. व. नो प्रत्यय. ७-१२, ८-४, १५-१५-१६, २०-११, ३१-२१, ३४-३-१८-१९, ३६-६-७, ५९-३, ६०-२०-२२, ८०-१६, ११०-३ ११९-२, १२३-१२, १२५-१७, १३२-४-९, १३४-३, १३८-२१, १३९-२, १५४-६, १५७-१२, इत्यादि. [सं. °तः]

थडइ 'थडा उपर, दुकानना अग्रभाग उपर.' स. ए. व. न. २-१६. [प्रा. थुड]

थाकतउ 'बाकीनो' वि. द्वि. ए. व. पुं. ९४-७. थाकतउं 'बाकीनुं' द्वि. ए. व. न. ९३-१४, ९४-११, १०६-५. थाकता 'बाकीना.' द्वि. ब. व. पुं. १०६-९, १०७-४-८. [सं. *स्थकित > प्रा. थक्कित, थाकित]

थाकी 'रही.' भू. कृ. प्र. ए. व. स्त्री. १०-५. [सं. *स्थकिता > प्रा. थक्किआ] जुओ थाकतउ.

थिकु पंचमीनो अनुग, गुज. 'थको.' २७-१८. [सं. *स्थकितः > प्रा. थक्किओ > अप. थक्किउ] जुओ थाकतउ, थाकी.

थुइ 'स्तुति.' प्र. ए. व. स्त्री. १६४-७. [सं. स्तुति]

दुकर 'दुष्कर.' वि. प्र. ए. व. पुं. १५-१०-२१. [सं. दुष्कर]

देवां 'देवोने.' द्वि. ब. व. पुं १४५-१८-२०

देसण 'उपदेश.' द्वि. ए. व. स्त्री. १६५-२. [सं. देशना > देसणा]

दोहग्ग 'दुर्भाग्य, गुज. दोहग.' प्र. ए. व. न. १६३-१५. [स दौर्भाग्य > दोहग्ग]

धणीप 'स्वामित्व.' द्वि. ए. व. स्त्री. १५८-२४. [स. धनित्व > प्रा. धणित्त-प्प]

धीरठ्ठ 'धीट.' वि. प्र. ब व. पुं. ९५-१९. वळी जुओ धीरठपणइ ९५-२०; धीरठपणुं ६३-१०; धीरष्टपणा १११-४; धेठपणानइं १११-११; धेठा ९५-१२, ९६-१०; धेठानइं ४५-७. [सं. धृष्ट > प्रा. *धरट्ठ > धिरट्ठ- ए ज प्रमाणे सं. धृष्ट > प्रा. धिट्ठ.]

न भारदर्शक अव्यय, अर्वाचीन गुज. 'ने' (जेम के कहो नें, बोलो नें, इत्यादि). १२-४, ५६-९.

नह निषेधार्थ अव्यय. १६३-११-१५ [सं नहि]

नात्रा 'संबंध, गुज. नातरां.' द्वि. व. व. न. २४-२१. [सं. ज्ञात्र. आ शब्द तथा एना तद्‌भवोनां रूपान्तरो अने अर्थान्तरो माटे जुओ 'संस्कृति', जान्युआरी १९५० मां मारो लेख 'नातरुं अने नात.']

नापइं 'न आपे.' वर्तमान त्रीजो पु. ब. व. ४४-१३. [सं. न + अर्पयति > प्रा. न + अप्पइ]

नाराधइ 'न आराधे.' वर्तमान त्रीजो पु. ए. व. ३१-३. [सं. न + आराधयति]

नावइं 'न आवे.' वर्तमान त्रीजो पु. ए. व. १२४-३. ब. व. ६५-१२, ७७-२१. [छेल्ला बे प्रयोगोमां 'न करी शके' एवी अर्थच्छाया पण छे. जेम के 'करिवा नावइं' एटले 'नथी करी शकता.' सं. न + आयाति > अप. न + आवइ.]

निकाचित कर्म 'अत्यंत निबिड कर्म.' प्र. ए. व. न. १२५-१२-१४. वळी जुओ निकाचित १२४-११. निकाचित कर्मनउं १२४-१९-२०. निकाचित-कर्मी १२४-५. [आ जैन धार्मिक परिभाषानो शब्द छे.]

निधत्त कर्म 'एक प्रकारनुं बंधायेलुं कर्म.' प्र. ए. व. न. १२४-२१, १२५-८.

पइं 'करतां.' अ. ५७-१८. [सं. प्रति > प्रा. पइ. प्रस्तुत स्थळे पइंनुं पाठान्तर पाइइं छे; आथी नीचे प्रमाणे व्युत्पत्ति पण शक्य लागे छे—सं. पक्षे > प्रा. पक्खे > अप. पाखइं-पाहइं > पाइं-पइं.]

पट्टणइं 'नगरो.' प्र. ब. व. न. १६५-१. जुओ पाटणि.

पणि 'पण, वळी.' अ. २४-११-१३, ७०-१६, ८२-६, ८६-१५, १०९-३, ११३-१४, ११६-२, १४०-१३, १४२-२, १४६-७, १५६-७, इत्यादि. [सं. पुनः अपि > प्रा. पुणवि > जू. गुज. पुणि. सर० हिं. पुनि.] जुओ पुण.

परहउ 'दूर.' वि. प्र. ए. व. पुं. २४-५. परहउं प्र. ए. व. न. ११७-९-१०-११. परहुं प्र. ए. व. न. २२-१२. [सं. परस्मिन् > अप. परहिं. सर० गुज. 'अरुं परुं.']

परीखियउ 'परखवो.' विध्यर्थ कृ. प्र. ए. व. पुं. १४१-१०. परीक्षिवउ विध्यर्थ कृ. प्र. ए. व. पुं. १४०-१०. परीषतउ 'परीक्षा करतो, परखतो.' वर्तमान कृ. प्र. ए. व. पुं. १३५-१५. परीषी 'परखीने.' सं. कृ. १३४-८, १४२-१. परीपीनइ सं. कृ. १३५-८. [सं. परीक्ष् > प्रा. परिक्ख] जुओ परीछी.

परीछी 'परीक्षा करीने, गुज. प्रीछीने.' सं. कृ. ९५-१९. परीछीइ 'परखाय छे.' कर्मणि प्रयोग, वर्तमान त्रीजो पु. ए. व. २२-८. [सं. परीक्ष् > प्रा. परिच्छ] जुओ परीछियउ.

प्रभ 'मालिक.' प्र. ए. व. पुं. १०१-२ [सं. प्रभु]

प्रमुख 'इत्यादि, वगेरे.' अ. १-७, ३-१२, ४-५, ५-११, ६-३-१७, ३२-८, ३३-८, ८०-४, ८३-१६, १२९-१८, १५४-४, इत्यादि.

पाखइ 'सिवाय.' अ १५-११, ३७ १७, ४०-२०, १२१-५. [सं पक्षे > प्रा. पक्खे > अप. पक्खइ-पाखइ-पाहइ. गुज. 'पाखे-पखे.'] जुओ पाहइ.

पापइ 'सिवाय.' अ. १६-१२, ४५-१८, ७०-३, १२१-९. उच्चारणमा 'पाख्इ' अने 'पापइ' अभिन्न छे. जुओ पाखइ.

पाटणि 'शहेरमा.' स. ए. व. न. २५-७. [सं. पत्तन > प्रा पट्टण. सामान्य नगरवाचक आ शब्द पाछळथी विशिष्ट नगरवाचक बन्यो छे ए नोंधपात्र छे.] जुओ पट्टणइं.

पाडूइ 'अशुभ.' वि. प्र ए. व. स्त्री. १८-१५. पाडूउं प्र. ए व. न. ३३-३; द्वि. ए. व. न. ८४-१६. [स. * पातुकम् > प्रा. पाडुअं. आ प्रयोग जूनी गुजरातीमा आ अर्थमां व्यापक छे]

पाधरा 'सादासीधा, सामान्य.' वि. अं. वि. ब. व. पुं १५-१२, १००-१९. पाधरां 'सीधा' ('अवळा'थी ऊलटां) द्वि. ब. व. न. ५-१२. पाधरी 'सीधी'. स. ए. व. स्त्री. १०-१४. [दे पद्धर. गुज. 'पाधरुं' सर० 'अद्धर पद्धर.']

पापइजिमइ 'पापने ज (विषे).' स. ए. व. न. ३४-१६. 'पाप' ए नाम अने 'नइ' प्रत्ययनी वच्चे बे अव्ययो दाखल थई गया छे ए नोंधपात्र छे.

पाहइ 'करतां.' अ. १०२-११. पाहइं ४२-५, ५८-४, ९७-१३, १४८-१०. पाहति 'करतां.' १२१-९. पाहि ९१-३. पाहिइं ४२-६. पाहंति 'पासे, द्वारा'. ६९-१२, १०३-४. पाहिं १४८-३, १२०-१९. पांहति १४८-१३. [स. पक्षे > प्रा. पक्खे > अप. पक्खइ-पाखइ-पाहइ. 'पाहति' इत्यादि प्रयोगोनी व्युत्पत्ति सं. पक्षतः > अप. पक्खतउ-पाहतउ-पाहतइ ए रीते संभवित छे] जुओ पाखइ.

मामइ 'पामे छे' वर्तमान त्रीजो पु ए व. १३-१४, ५३-१८, ७२-१४, १००-१८. मामइं वर्तमान त्रीजो पु. ब. व. १२-१५, २७-६-९, ३८-२०,

८७-१०-१२, ९८-५. **प्रामई** वर्तमान त्रीजो पु. ए. व. २५-२०. वळी जुओ **प्रामिउ** १३६-८. **प्रामिसिइ** ६७-६. **प्रामिस्यडं** ९९-१४, ११८-९. **प्रामी** ९६-१७, ९७-४. **प्रामीइ** १००-१५. **प्रामुं** १५८-१४. [सं. प्राप्नोति > पा. *प्रापुणति > प्रा. *प्राउणइ, प्रावइ > जू. गुज. प्रामइ.] 'र'कार विनानुं रूप जे अर्वाचीन भाषामां व्यापक छे ते पण मळे छे–**पामइ** २६-११. **पामई** ५४-१, ७४-१५, ९७-१९. **पामउ** १५९-२०. **पामिउ** १३६-१३-१९. **पामिस्यइ** ६७-१४, ७७-१४. **पांमीइ** ९२-२, ११३-१४. **पांमीस्यइ** ९८-१८. [सं. प्राप्नोति > पा. पापुणति > प्रा. पाउणइ, पावइ > जू. गुज. पामइ].

प्राहइं 'घणुं करीने, मोटे भागे' अ. २४-१४-१५. **प्राहि** १४७-९. **प्राहिइं** २३-१८. [सं. प्रायः]

प्रियागत 'वंशपरंपरागत.' वि. द्वि. ए. व. पुं. ४४-१४. [सं. प्रजागत > परजागत, परयागत. सर० अर्वाचीन गुज. परियागत.' गुजरातीनी केटलीक बोलीओमां 'परिया' शब्द 'प्रजा'ना अर्थमां वपराय छे. 'प्रजा' शब्दनां आ 'परिया' अने 'प्रिया' रूपान्तरो नोंधपात्र छे.]

पुण 'पण, वळी.'. अ. २३-२१, ३३-२०, ४१-१६, ५५-२३, ७८-२; ९८-२०, १२७-१७, १२९-१०, १३७-९-१२, १३९-२२, १४०-५-७, १४१-२१, १४५-२०, १४७-१५, १५०-१९, १५४-१-५, १६४-११, इत्यादि. [सं. पुनः > प्रा. पुणो > अप. पुण] जुओ **पणि**.

पूजइ 'पहोंचे.' वर्तमान त्रीजो पु. ए. व. १४०-५. [सं. पूर्यते > प्रा. पुज्जइ. 'ज' नो 'ग' थवाथी जूनी गुज. मां 'पूगई,' अर्वाचीन गुज. मां 'पूगे.']

पूर्व 'जैन शास्त्रोनो एक विभाग.' द्वि. ब. व. न. ५-९-११. [आगम-साहित्यना अंगविभागमां बारमुं अंग 'दृष्टिवाद' नामे हतुं, एमां चौद 'पूर्व' हतां. दृष्टिवाद तेम ज पूर्वो घणा समय पहेलां लुप्त थई गयां होवानी परंपरा छे.]

फलदायन 'फलदायक.' वि. प्र. ए. व. पुं. ११६-१४.

बईग 'मूर्ख. वि. प्र. ए. व. पुं. ५४-१९.

बइडूल 'गाडानी धरीनी अंदरनो खीलो.' प्र. ए. व. स्त्री. ११६-६. वळी जुओ **बइडिल** ११६-१२.

बंदोर 'बंदीवान, केदी.' प्र. ब. व. पुं. ११८-१४. [सं. तेम ज फा.मां 'बंदी' शब्द 'केदी'ना अर्थमां छे. 'बंदोर' शब्द सं. बन्दी + कार > प्रा. बंदियार-मांथी उच्चारणभेदे थयो हशे ? जू. गुज.मां अन्यत्र पण क्वचित् आ शब्द मळे छे, जेम के 'कान्हडदेप्रबन्ध' (सं. १५१२)मां—'एक लूस्या दीसइ बंदोर' (खंड २, कडी ७). जो के अहीं ए काव्यना संपादक श्री. डाह्याभाई देरासरीए 'बंदोर'नो अर्थ 'बंदर' एवो आप्यो छे ए बंधबेसतो नथी. जिनसागरसूरिना बालावबोधमां 'बंदी बंदोर वांदि झाल्या लोक' एवो अर्थ समजाव्यो छे, तेम ज सन्दर्भ उपरथी पण 'बंदोर'नो 'केदी' ए अर्थ देखीतो छे.]

बांदि 'केदीपणामां.' स. ए. व. स्त्री. ११८-१४. [सं. बन्दि].

भट्ट 'भाट.' द्वि. ब. व. पुं. ८३-१५-१८. [सं.]

भणो 'कहुं.' वर्तमान पहेलो पु. ए. व. ४५-४, ६८-१. [सं. √भण्]

'भणी' 'माटे, तरफ.' अनुग. १-८, ४-१७, १९-१-१५, २४-३-४, ४८-१६, ८३-३, ८५-११, ८७-१०-१४, ९७-१५, १०२-१७, १०७-२१, १०९-७, १४०-१२, १४१-२१-२२, १४९-१५, १५६-२१, १५७-२२. ['भण' क्रियापदनुं आ संबंधक कृदन्त छे. एनो अनुग तरीकेनो प्रयोग एक विशिष्ट अर्थविकासनुं उदाहरण छे. 'भणी' एटले 'बोलीने' अर्थात् 'माटे, खातर.']

भवाविवडं 'शोभा देखाडवी ते.' द्वि. ए. व. न. १२७-११. [आ प्रयोगनुं अर्वाचीन गुज. रूपान्तर 'भवाडवुं' एवुं थाय. पण अर्वाचीन काळमां एनो अर्थ नीचे ऊतर्यो छे; 'भवाडो' (फजेतो) शब्द एनुं उदाहरण छे. 'कान्हडदेप्रबन्ध'मां 'भवाड' क्रियापद सारा अर्थमां छे—'बहूआणनूं गिरूउं राज, हडूं अह्मे भवाडूं आज' (खंड २, कडी १४८) सं. भू (भव्) धातुमांथी एनी व्युत्पत्ति हशे. गुजराती लोकनाट्यना वाचक 'भवाई' शब्दनो व्युत्पत्तिगत संबंध आ बधा प्रयोगो साथे होय ए असंभवित नथी.]

मइगल° 'हाथी.' प. ब. व. पुं. १६४-१२. [सं. मदकल > प्रा. मयगल. सर० गुज. 'मेगळ.' 'मेगळ' विशेष नाम पण छे 'ध्रुवाख्यान'नो कर्ता मेगळ नामे एक गुजराती कवि विक्रमना १७मा सैकामां थई गयो छे]

महूंता 'मंत्री, गुज. महेता.' अ. बि. ब. व पुं. ५३-१. [सं. महत्, प्रा. महंत, अप. महंतउ. जूनी गुज मां महंतउ, महतउ, महुतउ, महितउ, महितु आदि एनां स्वरूपान्तरो छे. सर० हिं. महता, मा गुंना. चौलुक्ययुगीन गुजरातना

शिलालेखो, ग्रन्थपुष्पिकाओ आदिमां व्यक्तिविशेषोनां नामो पूर्वे 'मह.' पदवी मूकेली होय छे एने अप. 'महंतउ'नो संक्षेप गणवी जोईए.]

मानअं '(हुं) माने छे.' वर्तमान त्रीजो पु. ए. व. १४९-५. [सर० उत्तर गुजरातनी अर्वाचीन बोलीमांनुं कोमल अनुस्वार सहित 'मानँ' एवुं उच्चारण.] जुओ सकअं.

मुहिमां 'व्यर्थ, निरर्थक.' अ. ८२-१६. [सं. मुधा > प्रा. मुहा, देश्य प्राकृतमां 'मुधिका' ('विना मूल्य') शब्द छे, एमांथी अवान्तर रूप 'मुहिआ' द्वारा आ वधारे सारी रीते व्युत्पन्न थई शके.]

मूलगा 'मुख्य.' प्र. ब. व. पुं. ८१-१-५. [सं. मूलगतः > प्रा. मूलगओ. सर० 'मूळगो' शब्दनां अर्वाचीन अर्थान्तरो.]

°रहं द्वितीया, चतुर्थी अने षष्ठीनो अनुग, जे घसाईने प्रत्ययनुं रूप पामे छे. ५२-२१, ८७-११. जुओ रहइं अने हूइं.

रहइ द्वितीया, चतुर्थी अने षष्ठीनो अनुग, जे घसाइने प्रत्ययनुं रूप पामे छे. ४२-१०, ४४-२१, ६३-८, ६५-५, ६६-६, ८३-१८, १३३-१५, १३६-८. रहइं एवुं अनुस्वार सहित रूप पण मळे छेः १६-८, २५-१०, २६-९, २८-९, ३२-१, ३३-१३, ४१-१७, ४५-१८, ४७-१४, ४९-५-१५, ५१-१७, ५५-१-१८, ६३-७, ६४-८, ६५-१-१३, ६६-९, ७६-१५ ८२-१६, ८४-४-८-९, ८५-१६, १३३-२०, १३५-१६, १३६-३, १४२-११, १५६-२३, १५७-६, १५९-२, इत्यादि. [सं. अपरस्मिन् > अप. अवरहिं. श्री. टी. एन. दवे एनी व्युत्पत्ति सं. गृहे > प्रा. घरम्मि > अप. घरहिं, °हरहिं ए प्रमाणे आपे छे. जूनी गुजरातीमां 'हूइं' ए अनुग आ 'रहइ-रहइं'नो संक्षेप छे. सत्तरमा सैकाथी आ तरफना जूना गुजराती साहित्यमां आ अनुगोनो प्रयोग भाग्ये ज नजरे पडशे. अर्वाचीन गुजरातीमां, 'अमारे, तमारे' जेवां सार्वनामिक रूपोना अंत्याक्षरोने गणतरीमां न लईए तो, आ अनुगोना अवशेष रह्या नथी, ज्यारे अर्वाचीन मारवाडीमां षष्ठीना 'रो' प्रत्यय-रूपे ए चालु छे. आ ग्रन्थमां छापेला सोमसुन्दरसूरिकृत बालावबोधमां, पंदरमा शतक जेटला प्राचीन काळमां 'लोकरा' (= लोकना) एवुं रूप मळे छे ए नोंधपात्र छे.] जुओ °रहं अने हूइ.

रामति 'रमत.' प्र. ए. व. स्त्री. ६३-१६ [सं. * रम्याति > प्रा. रम्मति]

रलइ 'रखडे.' वर्तमान त्रीजो पु. ए. व. ११८-५, १२२-१. रलइं वर्तमान त्रीजो पु. ए. व. १२-१८, ३५-२१; ब. व. ३७-३, ८७-१४. वळी जुओ

रुलिसिइं १२१-३. रुलिस्यइ १२-१४. रुलिस्यइं ९१-२. रुलिसुं ९९-१४. रुलीस्यइ १००-९. रुलुं ६३-९. [सं. *लुटति > प्रा. रुलइ]

कुंटकई 'टुकडो पण.' द्वि. ए व. पुं. ४४-९. [सं कृत्तक > प्रा कुट्टक] कटकउ पण छे. ४४-९.

हूइ द्वितीया, चतुर्थी अने षष्ठीनो अनुग, जे पाछळथी घसाईने प्रत्ययनुं रूप पामे छे. ५-१, ३०-१०, ३४-२०, ३५-१३, ४४-२१, १२६-८. हूइं ४-१६, ५-३, ६-१०-१७, ८-१२, ९-१५, १०-१०, ११-१३-१५-१६-१८, १२-७-११, १३-२१, १४-१४, १६-१०-१२, १७-३-८-१५-१७-२१, १८-३-४, १९-८-१०, २०-८-९, २५-१२-१७-१८, २६-६-७, २७ १०-१२-१३, २८-६-१८, २९-१६, ३०-१२, ३२-५, ३३-९-१०, ३९-१९, ४१-१८, ४५-४-५-११, ४६-३-७, ४७-२-१५, ४८-१-३, ५०-१३, ५३-४, ५५-६, ५६-३-६-१२, ५७ १३, ५८-३-६, ५९-१७-२१, ६०-२०-२१-२२, ६१-१२, ६४-१८, ६५-१६, ६६-११-१२-१३, ६७-९-१७-१८, ६८-९-१०, ७१ ४, ७२-१६, ७३-३, ७८-१६, ८०-६, ८१-२२, ८३-१७, ८५-२, ८६-२-३-१८, ८७-७-१६-१९, ८८-५-९-१३-१५-१६, ८९-२०, ९१-८-१२, ९२-१३-१५, ९५-१६, ९७-१२-१३, ९८-२-८-१७, ९९-१२, १०१-९-११-१२-१६-२०, १०३-१३-१८-१९, १०४-९-१२-१३-१७, १०५-१-६-८, १०६-१७, १०७-२, १०८-१-२-१३, १०९-१७-१९, ११०-५-१९, १११-३-८, ११२-७, ११३-७-२०, ११४-१-२-६, ११७ ४-११, ११८-५-७-११-१२-१७, १२१-१-७-१४-१९, १२३-१५, १२४-३-५-१९, १२५-५-८-१८, १२७-१, १२८-९-१२, १३०-१८-२१, १३१-३-१९, १३२-१-४-११, १३५-१९-२०, १३६-१५, १३८-२०, १३९-१-३-८-९-१०-१२, १४२-१७, १४५-८-१३-१८-२०, १४६-७-१८, १४८-३-६-१०-११-१८, १५०-३, १५२-१०, १५६-१९, १५७-९, १५९-१६, इत्यादि. हिइं १२४-१२. जुओ °रइं अने रहइ.

लउडइं 'लाकडी वडे' तृ ए व. पुं. १२१-२२. लउडानउ 'लाकडीनो' ष ए व. पुं ११२-१०. [सं. लगुड > प्रा. लउड]

लगइ 'ने कारणे, त्यांथी मांडीने.' पूर्वमर्यादासूचक अनुग. ३६-१, ६८-२२, ६९-३, १४०-१, १४८-६ 'सुधी' एवो उत्तरमर्यादासूचक अर्थ पण एमां केटलीक वार आवे छे १४०-७, १५५-८. आनुं ज रूपान्तर लगी आ ग्रन्थमां वारंवार मळे छे, पण एना बधा ज प्रयोगो पूर्वमर्यादासूचक छेः ११-२१, १२-१, १३-८, १५-२१, २३-८, ३३-१, ३४-३-७, ३५-२०, ३९-२०, ५०-१०,

५१-७, ६४-१८, ६९-१२, ९२-१, १३२-९; १५४-१४. [सं. *लग्नस्मिन् > अप. लग्गहिं. भाषाना जूना थरमां आ अनुगनो पूर्वमर्यादासूचक अर्थ व्यापक छे —व्युत्पत्ति पण ए ज अर्थ सूचवे छे—पण जेम अर्वाचीन काळ तरफ आवीए तेम उत्तरमर्यादासूचक अर्थ वधारे प्रचलित थतो देखाय छे, ते एटले सुधी के अनेक सैकाथी भाषामां 'लगी'नो अर्थ 'सुधी' एटलो ज समजाय छे.]

लींब 'लींबु.' प्र. ए. व. न. १०४-२१. [सं. निम्बु > प्रा. लिंबु]

लोला 'समज विनाना, अज्ञानी.' वि. द्वि. ब. व. पुं. ४५-१-५, ६२-६, १०२-१८. [सं. लोल 'चपळ, अस्थिर.' आ शब्दमां थयेलो अर्थपलटो नोंधपात्र छे. 'षष्टिशतक'ना बालावबोधकारोए 'मुग्धजन'नो अर्थ 'लोला लोक' एवो आप्यो होई ए विशे कशो संदेह रहेतो नथी.]

लांषइ 'नाखे छे.' वर्तमान त्रीजो पु. ए. व. १७-१९, १२५-५. लांखीइ 'नंखाय.' कर्मणि वर्तमान त्रीजो पु. ए. व. १२५-४. [सं. निक्षिपति > प्रा. निक्खिवइ > जू. गुज. नाखइ. डॉ. टर्नर एनी व्युत्पत्ति जुदी रीते आपे छे— *नेक्षति > प्रा. नेखइ > ज. गुज. नांखइ. 'न'नो 'ल' थवाथी 'लांखवुं.' 'न'नुं आ प्रकारे 'ल'मां परिवर्तन ए हाल्मां दक्षिण गुजरातनी बोलीनी लाक्षणिकता गणाय छे, पण उपर निर्देशेला प्रयोगो बतावे छे के एक काळे उत्तर गुजरात तथा मारवाडनी बोलीमां पण ए प्रचलित हती.]

वक्रत्तण 'वक्रता, वांकापणुं.' द्वि. ए. व. न. १६२-१३. [सं. वक्रत्वन > प्रा. वक्कत्तण. आ साथे सर० पुरुषातन, अहेवातण, शूरातन, वीरातन (जू. गुज.) आदि शब्दोनो अंत्य प्रत्यय.]

वर्णवां '(हुं) वर्णवुं.' वर्तमान पहेलो पु. ए. व. ९८-१४.

वीतरागइजिनुं 'वीतरागनुं ज.' ष. ए. व. पुं. १४७-७. प्रत्यय अने नामनी वच्चे बे अव्ययो दाखल थई गया छे ए ध्यान खेंचे छे.

विरुउ 'हलको, गुज. वरवो.' वि. प्र. ए. व. पुं. १५७-११. विरुइ 'हलकी.' प्र. ए. व. स्त्री. १८-११, १९-३-१८; द्वि. ए. व. स्त्री. १८-२२. वळी जुओ विरुअइ १३३-१६. विरुअउं ४२-२-४. विरूआ १११-२०, ११३-७. विरूआं ३२-२०. विरुइ ८५-२. विरुईं १२२-२. विरुउं ४६-७, ६५-१२, १०६-१८. विरूउं ४१-१३-१५, ८७-२, १०५-१, ११७-३, ११८-१७, १५३-१७. विरूऊ ४०-१०. विरूया ७८-४. [सं. विरूप > प्रा. विरूअ > अप. विरुउ]

पिसमाणि 'आलंबन.' द्वि. ए. व. स्त्री. १४४-३.

पेचइ 'व्यय करे छे.' वर्तमान त्रीजो पु. ए. व. १६-११, १५०-२१ वेचई १५०-२०, १५१-६. [प्रा. वेच 'व्यय करवो.' जैनोमां धार्मिक परिभाषामां आ शब्द आजे पण आ अर्थमां चालु छे]

सइ 'सो, गुज. से सैं.' द्वि. व. व. न. ७-१५. सईं प्र. ब. व. न. ८५-२१. स. व. व. ११-१५. [सं. शत > प्रा. सय]

सकअं '(तुं) शके.' वर्तमान बीजो पु. ए. व. ५-१०-१५. [सर० उत्तर गुजरातनी बोलीमांनुं कोमल अनुस्वार सहितनुं 'सकैं' एवुं उच्चारण.] जुओ मानअं.

सकयत्थो 'कृतार्थ.' वि. प्र. ए. पुं. १६१-६. [सं. सकृतार्थ > प्रा. सकयत्थ.]

सणीजा 'स्नेहीओ.' प्र. ब. व. पुं. १०३-१२. [सं. स्निग्धकः > प्रा. सिणिज्झओ. सर० गुज. 'सणेजो.']

सयर 'शरीर.' प्र. ए. व. न. ६८-५. सयरनां 'शरीरनां.' प. ब. व. न. ३७-२०. [सं. शरीर > जू. गुज. सइर. असंयुक्त 'र'नो आ प्रकारे लोप गुज. मां अन्यत्र पण थाय छे: परिमल > पीमळ, सरिजल > सइजल > सेजळ, करीर > कइर > केर, इत्यादि.]

सल्लुद्धार '(अधर्मरूपी) शल्य दूर करवुं ते.' द्वि. ए. व. पुं. १६५५. [सं. शल्योद्धार.]

संझ 'संध्याए.' स. ए. व. स्त्री. १६३-१६. [सं. संध्या > प्रा. संझा]

सुंथुणउ 'स्तुति करुं.' वर्तमान पहेलो पु ए व. १६४-२. [सं. संस्तुनोति > प्रा. सथुणइ]

संतानीइ 'वंशजे' तृ. ए. व. पुं. ९-२१. संतानीअइं तृ. ए. व. पुं. ९-२२. [सं. संतानिक > प्रा. संताणिअ]

साठिसउ 'एकसो साठ (गाथावाळो ग्रन्थ).' द्वि. ए. व. पुं. २-२, ३-१४ [सं. षष्टिशत > प्रा. सट्ठिसअ]

सातिउं - संताड्युं.' भूत त्रीजो पु. ए. व. ९३-२३. [सं. √ सिन्व् उपरथी हशे? सांध्युं (सात्युं)-सपड्युं, ए-अर्थमां? जूना साहित्यमां अन्यत्र पण आ

क्रियापदनो आ ज अर्थमा प्रयोग छे जेम के फुटकृत 'पाडवावेधि' (स १६७७)मा —'जेहय शाल्यो भोएरे, कोरवे दीधु तालु' (प ४४८) सविता टाक्यो चालणी, उट ऐड शालु ओटि' (प ४५४)]

साधम्मिय 'समान धर्मना अनुयायी' वि द्वि त व पु ४ १२ **साधर्म** द्वि ब व व १४८ १३ जुओ साहम्मीनउ

साहम्मीनउ 'समान धर्मना अनुयायीना' वि प ए व पु १४८ १५ जुओ—**साहम्मीमाहे** ५३ ६, **साहम्मी पाहइ** १४८ १८, **साहम्मी पाहि** १४८ ३, इत्यादि [स सार्धर्मिन् > प्रा साहम्मी सर० अर्वाचीन गुज 'साहमी (सामी) भाई,' 'साहमीव छल' (साधर्मिकवात्सल्य) आ जैन परिभाषानो शब्द छे]

सिग्घ 'जल्दी' अ १६३ ८ [स शीघ्र > प्रा सिग्घ]

सिघ्याइ 'स्वाध्याय' द्वि ए व न २२४ [स स्वाध्याय एमाथी प्रा स्वाध्याय > गुज सज्झाय शब्द आवेलो छे]

सुलभ 'सुलभ' वि द्वि ए व न १५९ ५ [स सुलभ]

सुहेवलउ 'सहेलु' वि द्वि ए व न ३९ ३ [स √शुभ् > प्रा सुह उपरथी ?]

सुहेलउ 'सहेलुं, गुज सोह्यलु (सोह्यलु'थी ऊलटु) ' वि द्वि ए व न [स √शुभ् > प्रा सुह उपरथी ?] जुओ सोहिलउ

सेपल 'नागदेवता' स ए व पु ८३ १६ **सेपलनी** प ए व पु ८३ ९ [स शेष+ल जूनी गुजरातीमा ष'नो उच्चार घणुखरु 'ख' थाय छे ए ध्यानमा राखवा जेवु छे]

सोहिलउ 'सहेलु, गुज सोह्यलो वि प्र ए व पु १४१ ७ द्वि ए व पु २० ९ **सोहिलउ** प्र ए व न २१ १० १२ २२ ९ [स शोभ् > प्रा सोह उपरथी ?] जुओ सुहेलउ

हलुअकर्मउ 'जेना अल्प कर्म अवशिष्ट रह्यां होय एवो, शीघ्र मुक्तिगामी, गुज हलुकर्मी' वि प्र ए व पु १२७ १५ [स लघु > प्रा लहु, व्यत्ययथी हलु+कर्म आ पण जैन धार्मिक परिभाषानो शब्द छे]

हलुपण 'हळवापणु' द्वि ए व न ५४ ५ [स लघुत्वन > प्रा लहुत्तण प्पण > हलुप्पण]